वैदिक ऋषिकाओं (नारी ऋषियों) द्वारा प्रोक्त ऋग्वेद मन्त्र और उनकी व्याख्या

लेखक – डॉ० कृष्ण कुमार

विद्यामार्तण्ड, साहित्याचार्य,
एम.ए., पी–एच.डी., डी.लिट.
सेवानिवृत्त विभागाध्यक्ष, गढ़वाल वि.वि.

सम्पादक तथा प्रकाशक
महामण्डलेश्वर श्रीस्वामी कपिल मुनिः
श्री हरेराम आश्रम, कनखल–हरिद्वार (उत्तरांचल)

वैदिक ऋषिकाओं (नारी ऋषियों) द्वारा प्रोक्त ऋग्वेद मन्त्र और उनकी व्याख्या

लेखक - डॉ. कृष्ण कुमार
विद्यामार्तण्ड, साहित्याचार्य,
एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट.
सेवानिवृत्त विभागाध्यक्ष, गढ़वाल वि.वि

सम्पादक तथा प्रकाशक :
महामण्डलेश्वर श्रीस्वामी कपिल मुनिः
श्री हरेराम आश्रम, कनखल-हरिद्वार (उत्तरांचल)
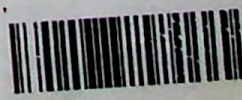
वैदिक ऋषिकायें (नारी ऋषि) द्वारा ऋग्वेद मन्त्रों की व्याख्या

प्रकाशक तथा सम्पादक
महामण्डलेश्वर
श्री स्वामी कपिलमुनि जी महाराज
श्री हरे राम आश्रम
कनखल-हरिद्वार

प्रथम संस्करण - 2006

मूल्य -

प्राप्ति स्थान - श्री हरे राम आश्रम, कनखल-हरिद्वार

अनुशंसा

सृष्टि की रचना और उसमें उदित हुई विश्व की सभ्यताओं के आदि परम प्रभु परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में मनुष्यों के उपकार के लिए वैदिक संहिताओं को लोक प्रकाशित किया था। यह ज्ञान अजर और अमर है। इस ज्ञान के सम्बन्ध में ऋषियों का वचन है-

'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'

विश्व की सभी समस्याओं का समाधान इन वैदिक संहिताओं में निहित है। वैदिक संहिताओं की किसने रचना की और लोक में किसने इनको प्रकाशित किया, यह कौन बता सकता है? तथापि भारतीय परम्पराओं के अनुसार चार ऋषि-अग्नि, वायु, सूर्य और अङ्गिरा ऋषि वैदिक संहिताओं के आदि प्रवर्तक थे। उत्तरवर्ती कालों में जिन ऋषियों ने वैदिक संहिताओं के जिन सूक्तों और मन्त्रों के अर्थों का दर्शन किया अर्थात् दर्शन प्राप्त किया और लोक में उनको प्रकाशित किया वे उन सूक्तों और मन्त्रों के ऋषि कहलाये। महर्षि यास्क का कथन है-

'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार:'

ऋणियों ने मन्त्रों के अर्थों का दर्शन किया था। ऋग्वेद के अनेक ऋषि हैं उनमें अधिक संख्या पुरुष ऋषियों की हैं, परन्तु उनके साथ नारी ऋषि (ऋषिका) भी मन्त्रार्थ द्रष्टा हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ऋग्वेद के मन्त्रों के दर्शन में अनेक नारी ऋषियों (ऋषिका) का भी योगदान रहा था। वृहददेवता ग्रन्थ में इन ऋषिकाओं को ब्रह्मवादिनी कहा गया है। अर्थात् वे ब्रह्म (परमेश्वर) की वेत्ता और प्रवचन करने वाली हैं। इनकी संख्या २७ बतायी गयी है। इससे स्पष्ट है कि अति प्राचीन काल में वैदिक युग में पुरुषों के समान महिलाओं को यज्ञों और कर्मकाण्डों को सम्पन्न करने के अधिकार प्राप्त थे। समाज में पुरुषों के समान नारियों को सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे और उनके प्रति किसी प्रकार का हीनभाव नहीं था।

वर्तमान समय में महिलाओं के सशक्तीकरण और अधिकारों के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया जाता है और यह आन्दोलन सशक्त हो गया है। महिलाओं के लिये जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनको निर्बल समझ कर आरक्षण का प्रावधान करने का प्रयास किया जा रहा है। परन्तु नारी का महत्व वैदिक युग में ही स्वीकार कर लिया गया था। इसका प्रमाण ऋग्वेद के ऋषिका सम्बन्धी सूक्त प्रस्तुत करते हैं।

ऋग्वेद के सूर्या सूक्त (१०.८५) की द्रष्ट्रा सूर्या है। उसके विवाह काल का मनोरंजक दृश्य है, जबकि विवाह में उसको अनुपम उपहार दिये जाते हैं तथा विवाह के बाद वह पत्नी बनकर सम्पूर्ण परिवार की स्वामिनी बनती है। ऋग्वेद का उर्वशी (१०.१२८) सूक्त स्पष्ट करता है कि नारी सभी प्रकार से आदर की पात्र है। अनादर होने पर वह परिवार का, त्याग भी करने की अधिकारिणी है। ऋग्वेद का वाक् सूक्त (१०.१२५) स्पष्ट करता है कि नारी परमशक्ति सम्पन्न है और देवताओं को भी वह ही शक्ति सम्पन्न करती है।

ऋग्वेद के एक सूक्त में राजा से रानी कहती है कि मैं आप से किसी भी प्रकार कम नहीं हूं। आप राष्ट्र का संचालन करते हैं, में राष्ट्र की सभी महिलाओं की सुरक्षा और कर्तव्यों का विचार करने का अधिकार रखती हूं।

ऋग्वेद के ऋषिका दृष्ट (नारी) सूक्तों का संग्रह और उनकी समुचित व्याख्या प्रस्तुत ग्रन्थ में की गयी है। इनकी संख्या ३० है। डा. कृष्णकुमार ने गहन परिश्रम, और अध्यवसाय से इस ग्रन्थ को तैयार करके विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत किया है। आशा है कि वेदों के विद्वान सुधीजन इस प्रयास का आदर करेंगे। महिला सशक्तीकरण की दिशा में जनसामान्य के लिये यह ग्रन्थ उद्‌बोधन का कार्य करेगा।

निवेदक

महामण्डलेश्वर कपिल मुनि जी महाराज

विषय सूची

प्रस्तावना

वैदिक सूक्तों और मन्त्रों की व्याख्या में उन सूक्तों के ऋषियों, देवताओं और छन्दों का निर्देश करना आवश्यक है। यह परम्परा वेद-मन्त्रों की व्याख्या के लिए अनिवार्य हो गई है। मन्त्रों का अन्य विवरण देने के साथ उनके ऋषियों, देवताओं और छन्दों पर अवश्य विचार किया जाता है। वैदिक सूक्तों और मन्त्रों के अर्थों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये और उनमें निहित अभिप्राय को जानने के लिये उनके ऋषियों आदि को अनिवार्य रूप से समझना चाहिए। प्राचीन भाष्यकारों ने, सायण आदि ने मन्त्रों की व्याख्या करने से पूर्व उनके ऋषियों, देवताओं और छन्दों पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

प्राचीन भाष्यकारों ने प्रायः पुरुष ऋषियों का ही विवरण दिया है। ये ऋषि मन्त्रों के द्वारा कहे गये हैं। परन्तु अनेक मन्त्रों की द्रष्टा (द्रष्ट्री) नारी हैं। पारिभाषिक रूप से इनको ऋषिका पद से भी सम्बोधित किया गया है। "बृहद्देवता" ग्रन्थ में इन ऋषिकाओं का विस्तार से उल्लेख है।

वैदिक संहिताओं की अनेक व्याख्यायें और भाष्य लिखे गये और प्रकाशित किये जाते रहे, परन्तु नारी ऋषियों (ऋषिकाओं) द्वारा अनेक सूक्तों और मन्त्रों का संग्रह और उनकी व्याख्या विद्वज्जनों के अवलोकनार्थ

प्रकाशित नहीं हुई। प्राचीन युग में पुरुषों के समान नारियों को भी वेदाध्ययन करने तथा यज्ञीय कर्मकाण्डों को सम्पन्न करने का अधिकार प्राप्त था। वैदिक युग की स्त्रियां पुरुषों के समान ही परिवार और समाज की गतिविधियों में सहभागिनी थीं। प्रस्तुत पुस्तक में नारी ऋषियों (ऋषिकाओं) द्वारा दृष्ट मन्त्रों का संग्रह करके उनकी व्याख्या प्रकाशित की जा रही है। इसके द्वारा वेदार्थों के सम्बन्ध में नारी का दृष्टिकोण भी स्पष्ट होगा और नारी की भावनाओं की जानकारी विद्वज्जनों को हो सकेगी।

१. वेदों का महत्व

आर्यों की सभ्यता, संस्कृति और साहित्य का आरम्भ वेदों की रचना से हुआ है। वेदों की रचना को जितना प्राचीन प्रतिपादित किया जा सकता है, आर्य जाति का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है। भारतीय धर्म, साहित्य, भाषा, सभ्यता, संस्कृति और कला, इन सभी के विकास और उन्नति में वेदों का सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। इन सबका मूल आधार वेदों को ही स्वीकार किया जाता है। भारतीय धर्म, संस्कृति और सभ्यता का भव्य प्रासाद वेदों की सुदृढ़ आधारशिला पर ही निर्मित किया गया था।

आर्यों या हिन्दूओं की वेदों के प्रति आस्था एवं श्रद्धा बहुत प्राचीन काल से रही है। पृथिवी के किसी स्थान पर निवास करने वाला हिन्दू अपने धर्म

और संस्कृति के मूल तत्व वेदों में ही मानता रहा है। धार्मिक पर्वों और सामाजिक समारोहों पर हिन्दुओं के घरों में आज भी वेदमन्त्रों का उच्चारण अत्यधिक आस्था और श्रद्धा के साथ किया जाता है। भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से ही धर्म, दर्शन और सदाचार के सम्बन्ध में विविध मत-मतान्तर प्रचलित रहे। परन्तु उन सभी ने अपने मत का आधार वेदों को माना और आचार्यो ने अपने मतों की पुष्टि वेद-मन्त्रों के आधार पर की।

भारतीय साहित्य में वेदों के गुणों का गौरवगान सदा से किया जाता रहा है। वेदोत्तरकालीन साहेत्य में ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग, स्मृति, दर्शन आदि ग्रन्थों में वेदों को ईश्वरकृत एवं अपौरुषेय मान कर इनकी प्रामाणिकता स्वीकार की गई है। वस्तुतः यह सभी साहित्य वेद-मन्त्रों की व्याख्या के रूप में ही है।

मनु ने यहां तक लिखा है कि वेदों की निन्दा करने वाला नास्तिक है। अर्थात् आस्तिकता के लिए ईश्वर के प्रति निष्ठा उतनी आवश्यक नहीं है, जितनी वेदों के प्रति है। भारतीय दर्शनों में प्रतिपादित विभिन्न सिद्धान्त वेदों से प्रतिपादित किये गये हैं। यहां तक कि ईश्वर की सत्ता को असंदिग्ध रूप से स्वीकार न करने वाले सांख्य आचार्य वेदों को प्रमाण मान कर ही अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हैं।

वेदों का महत्व केवल भारतवर्ष तक ही सीमित नहीं था, अनेक देशों के विद्वान् वेदों में सन्निहित ज्ञान एवं उनके गुणों से प्रभावित हुये। इस देश में समय-समय पर आने वाले पाश्चात्य विद्वान् वैदिक साहित्य की विशालता एवं इनमें निहित ज्ञान-विज्ञान से अत्यधिक प्रभावित हुये।

इन्होंने वेदों के अध्ययन को मानव-मात्र के लिये उपयोगी तथा हितकर बताया था। इन विद्वानों के अनुसार वेद मानव के प्राचीनतम साहित्यिक ग्रन्थ हैं एवं इनमें आर्य जाति का हजारों वर्ष पुराना इतिहास भरा हुआ है। इनमें विज्ञान का वह आलोक सम्भृत है, जिसकी आवश्यकता आज भी मानव जाति को है।

अनेक पाश्चात्य विद्वानों-मैक्समूलर, विन्टरलिट्ज, राथ, कोलबुक, मैकाडानल आदि ने वैदिक साहित्य के अध्ययन के लिये अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया। वेदों के सम्पादन और प्रकाशन का श्रेय भी उन पाश्चात्य विद्वानों को दिया जाना चाहिए।

वेदों का महत्व न केवल उनकी प्राचीनता के कारण ही है, अपितु वेदों में निहित ज्ञान-विज्ञान के कारण भी है। वेदों के अध्ययन ने अनेक नवीन शोधों की ओर विद्वानों को प्रवर्तित किया है।

वेदों की और लौकिक संस्कृत भाषा की आश्चर्यजनक समानता,

लैटिन, ग्रीक, फारसी आदि भाषाओं में दृष्टिगोचर हुई है। इससे प्राचीन इतिहास पर तो महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा ही है, आधुनिक भाषा विज्ञान का भी इससे जन्म हुआ।

२. वेदों के द्रष्टा और कर्ता ऋषि

वैदिक सूक्तों और मन्त्रों के साथ ऋषि, देवता और छन्दः सम्बद्ध हैं। जिस ऋषि ने जिस सूक्त का प्रवचन किया या जो उसका द्रष्टा है, वह उस सूक्त का ऋषि है। मन्त्र का वर्ण्य विषय देवता है और वर्णो का संगठन छन्दः है। वैदिक संहिताओं के अधिकांश ऋषि पुरुष हैं। परन्तु कुछ ऋचायें नारी ऋषियों द्वारा भी दृष्ट हैं और प्रोक्त हैं।

इस प्रकरण में मुख्य रूप से ऋग्वेद की नारी ऋषियों के सम्बन्ध में विचार करना है। परन्तु इस भूमिका में ऋग्वेद के रचयिता पर विचार करते हुये अन्य ऋषियों के सम्बन्ध में भी कुछ विचार करना उचित होगा।

३. वेदों के रचयिता

भारतीय परम्पराओं और विश्वासों के अनुसार वेद अपौरुषेय हैं, ईश्वरीय ज्ञान हैं। वे नित्य हैं। प्रत्येक सृष्टि के आदि में ईश्वर द्वारा इस ज्ञान का आविर्भाव किया जाता है। ईश्वर के समान यह ईश्वरीय ज्ञान भी अनादि, अनन्त और अनिश्वर है। यह प्रलय काल में भी

अस्तित्व में रहता है। सृष्टि की रचना होने पर ईश्वर इस ज्ञान को ऋषियों के हृदयों में प्रकाशित करते हैं और गुरु शिष्य परम्परा से यह ज्ञान लोक में प्रवर्तित होता रहता है। प्रलय होने पर यह वेद ज्ञान ईश्वर में ही विलीन हो जाता है।

इस सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर ने अग्नि को ऋग्वेद का, वायु को यजुर्वेद का, सूर्य को सामवेद का[१] और अंगिरा ऋषि को अथर्ववेद का[२] ज्ञान दिया था। इनके अनन्तर जिन ऋषियों ने वेदों के जिन मन्त्रों का प्रकाश प्राप्त किया, वे मन्त्र उन ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हो गये। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार अग्नि, वायु और सूर्य ऋषि थे।

ऋषि दयानन्द का कथन है कि वेद अपौरुषेय हैं और ईश्वरीय कृति हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर ने मनुष्यों के कल्याण के लिए वेदों को ऋषियों के हृदयों में प्रकाशित किया था। सृष्टि की रचना १९६०८५२९७६ वर्ष पूर्व हुई थी। ईश्वरीय ज्ञान वेद भी उतने ही प्राचीन हैं।[३]

वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने के प्रमाण स्वयं वेदों में तथा उसके पश्चात् ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, दर्शन ग्रंथ, सूत्र ग्रन्थ, स्मृति और पुराण साहित्य में उपलब्ध होते हैं। यह विषय अति दीर्घ है, तथापि दिग्दर्शनमात्र यहां किया जाता है।

वैदिक संहिताओं के निम्न मन्त्र इनके अपौरुषेय तथा ईश्वरीय ज्ञान होने को प्रमाणित करते हैं-

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।[४]
तस्मादृचो अपातक्षन् यजुस्तस्यादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङि्गरसो मुखम्।[५]

इस प्रकार वेद स्पष्ट रूप से स्वयं ही वेदों को ईश्वरीय ज्ञान प्रमाणित करते हैं। 'श्वेताश्वर उपनिषद्' के अनुसार सृष्टि की रचना के प्रारम्भ में परमेश्वर ने ब्रह्म को उत्पन्न कर उसके द्वारा वेदों का आविर्भाव किया था।[६]

'वृहदारण्यक उपनिषद्' में वेदों को ईश्वर का निःश्वास बताया गया है।[७] तैत्तिरीय आरण्यक के भाष्य में सायण मिलते हैं कि वेद अपौरुषेय हैं। उनका कोई अन्य कर्ता नहीं है। सृष्टि के आदि में ईश्वर की कृपा से जिनको मन्त्र प्राप्त हुये, वे मन्त्रकृत् कहलाये।[८] 'शतपथ ब्राह्मण' के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में अग्नि, वायु और आदित्य ने तप करके तीनों वेदों को प्राप्त किया। मनु का कथन है कि 'ऋग्वेद' को अग्नि ने, 'सामवेद' को वायु ने, यजुर्वेद को सूर्य ने और अथर्ववेद को अंगिरा ने प्राप्त किया था।[९]

ऊपर के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय परम्पराओं के अनुसार वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं। ईश्वर ने इनका ज्ञान ऋषियों को दिया। अग्नि ने 'ऋग्वेद' का वायु ने यजुर्वेद का आरित्य ने सामवेद का और अंगिरा ने अथर्ववेद का ज्ञान प्राप्त किया और इनको लोक में प्रकाशित किया। ऋषि दयानन्द ने इनको युगपुरुष बताया है।[१०]

अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा द्वारा वैदिक ज्ञान को लोक में प्रकाशित करने के बाद जिन ऋषियों ने वेदों के जिन सूक्तों का मन्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया, अर्थात् मन्त्रों में निहित अर्थ का, रहस्य का दर्शन कर लोक में प्रकाशन किया था, वे मन्त्र उनके नाम से प्रसिद्ध हो गये। प्राचीन साहित्य के अनुसार ऋषि पद का निर्वचन है-'ऋषिदर्शनात्''। उनका मन्तव्य है मन्त्र (धर्म) का साक्षात्कार करने वाले ऋषि हैं। उन्होंने मन्त्र का साक्षात्कार न करने वाले अन्य जनों को उन मन्त्रों का उपदेश किया।''[११]

परन्तु वेदों का अध्ययन करने वाले पाश्चात्य विद्वानों तथा उनका अनुसरण करने वाले कुछ आधुनिक समालोचकों ने वेदों के अपौरुषेय, ईश्वरीय और नित्यत्व के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् जिमरमैन का कथन है-

वेद अनादि हैं, ईश्वरकृत हैं तथा किसी विशेष समय में किन्हीं

विशेष ऋषियों ने इनका ज्ञान प्राप्त करके उन्हें प्रकाशित किया था, इस सिद्धान्त को स्वीकार करना बहुत कष्टदायक है।

जिमरमैन, बेबर, मैक्समूलर, मैकडानल, जैकोबी आदि पाश्चात्य विद्वान् ऋषियों को वेदों का द्रष्टा न मानकर कर्ता ही मानते रहे। परन्तु उनकी युक्तियां सारहीन हैं तथा उनको स्वीकार नहीं किया जा सकता।

अब यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि ऋषियों के लिए मन्त्रकृत् पद का जो प्रायः प्रयोग हुआ है, उसका क्या अभिप्राय है? सायण ने इसका उत्तर दिया है। वे लिखते हैं- ''यद्यपि वेद अपौरुषेय हैं तथा ऋषि इनके कर्ता नहीं हैं, तथापि सृष्टि के आदि में, ईश्वर के अनुग्रह से मन्त्रों को प्राप्त करने के कारण वे मन्त्रकर्ता कहे गये हैं। अतीन्द्रिय अर्थ का दर्शन करने के कारण ऋषि को मन्त्रकृत् कहा गया।[१२] 'कृ' धातु का प्रयोग यहां दर्शन करने के अर्थ में है।[१३]

इस विवेचन के आधार पर हमें वेदमन्त्रों से सम्बद्ध ऋषियों को मन्त्रकर्ता न मान कर मन्त्रार्थद्रष्टा ही मानना चाहिये।

४. ऋग्वेद के ऋषि

ऋग्वेद का संगठन मण्डल और अष्टक क्रम से किया गया है। इनमें भी मण्डल क्रम अधिक प्रसिद्ध है। मण्डलों का विभाजन सूक्तों में

है तथा एक सूक्त में अनेक मन्त्र हैं। सामान्यतः एक सूक्त का एक ऋषि है। परन्तु कहीं-कहीं एक के एक से अधिक ऋषि भी है। मण्डलों का संगठन ऋषियों के आधार पर हैं। इनमें प्रथम, नवम और दशम मण्डलों के अनेक ऋषि हैं, परन्तु द्वितीय मण्डल से अष्टम मण्डल तक के ऋषि एक-एक मण्डल के एक हैं। ये इस क्रम से हैं-

द्वितीय मण्डल - गृत्समद तथा उनके वंशज

तृतीय मण्डल - विश्वामित्र तथा उनके वंशज

चतुर्थ मण्डल - वामदेव तथा उनके वंशज

पंचम मण्डल - अत्रि तथा उनके वंशज

षष्ठ मण्डल - भारद्वाज तथा उनके वंशज

सप्तम मण्डल - वसिष्ठ तथा उनके वंशज

अष्टम मण्डल - कण्व तथा उनके वंशज

ऋग्वेद में इन सूक्तों के ऋषि अधिकतर ब्रह्मर्षि हैं। परन्तु कुछ अन्य वर्णों के ऋषियों के नाम भी मिलते हैं। विश्वामित्र पहले क्षत्रिय थे। इन्होंने तपोबल से ब्रह्मर्षि पद प्राप्त किया। दशम मण्डल के 31वें सूक्त के ऋषि कवष ऐलूष, 91वें सूक्त के ऋषि वीतहव्य आरुण, 134वें सूक्त के ऋषि मान्धाता यौवनाश्व तथा 175वें सूक्त के ऋषि ऊर्ध्वग्रावा अनार्य थे।

५. ऋग्वेद की नारी ऋषि

'ऋग्वेद' के अनेक सूक्तों की ऋषि नारी हैं। 'बृहद्देवता' में उनकी संख्या 27 कही गई है। इनको तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। नौ नारी ऋषियों ने देवताओं की स्तुति की है। नौ नारी ऋषियों ने संवादों में ऋषियों और देवताओं के साथ वार्तालाप किया है और नौ नारी ऋषियों ने स्वयं अपने गुणों का गान किया है। 'वृहद्देवता' ग्रन्थ के अनुसार नारी ऋषि निम्न हैं-

घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, अपनिषद्, निषत्, ब्रह्मजाया, जुहू, अगस्त्यभगिनी, अदिति, इन्द्राणी, इन्द्रमाता, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, नदियां, यमी, शश्वती, श्री, लाक्षा, सार्पराज्ञी, वाक्, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्री और सूर्या सावित्री।[१४]

वर्गों के क्रम के अनुसार नारी, ऋषियों (ऋषिकाओं) को निम्न क्रम से प्रस्तुत किया जा सकता है।

१. देवतास्तुति परक सूक्तों की नारी ऋषि

महर्षि शौनक के अनुसार इन ९ नारी ऋषियों ने देवताओं की स्तुति करके उनको तुष्ट किया था-[१५]

	नाम ऋषिका	मण्डल	सूक्त
(१)	घोषा	१०	३९, ४०

(२)	गोधा	१०	१३४ (६-७)
(३)	विश्ववारा	५	२८
(४)	अपाला	८	२८
(५)	उपनिषत्	प्रसारयन्तु मधुनो घृतस्य से प्रारम्भ	
(६)	निषत्	करने सात खिल ऋचाओं की ऋषि	
(७)	ब्रह्मजाया जुहू	१०	१०९
(८)	अगस्त्यभगिनी	१०	६० (छठा मंत्र)
(९)	अदिति	१०	७२

२. संवादात्मक सूक्तों की नारी ऋषि-

ऋग्वेद में अनेक संवादात्मक सूक्त हैं। इनमें ऋषि अन्य ऋषियों या देवताओं से वार्ता करते हैं। इन संवाद सूक्तों में जो ऋषि जिस वाक्य को बोलता है, वह उस सूक्त का तथा मन्त्र का ऋषि है। वह जिससे संवाद करता है, वह उसका देवता है। 'ऋक्सर्वानुक्रमणी' में लिखा है- यस्य वाक्यं स ऋषिः या तेनोच्यते सा देवता।[१६] ऋग्वेद के इन संवाद सूक्तों में नौ नारी ऋषि कह गये हैं।

सूक्त क्रम से उनके नाम इस प्रकार हैं-

	नाम ऋषि	मण्डल	सूक्त	मन्त्र
(१)	इन्द्राणी	१०	८६	७, ७, ९, १०

		१०	१४५	१५, १८, २२, २३
(२)	इन्द्रमाता	१०	१५१, १५३	
(३)	सरमा	१०	१०८	
(४)	रोमशा	१	१२६	६, ७
(५)	उर्वशी	१०	९५	
(६)	लोपामुद्रा	१	१७९	
(७)	नद्यः	३	३३	
(८)	यमी	१०	१०, १५४	
(९)	शश्वती	८	१	३४

३. आत्मस्तुतिपरक सूक्तों की नारी ऋषि

'ऋग्वेद' में अनेक सूक्त इस प्रकार के हैं, जिनमें ऋषि अपने भावों या गुणों की स्तुति करते हैं। इन सूक्तों के जो ऋषि हैं, वे ही उन सूक्तों के देवता है।[१७]

इन सूक्तों को आत्मस्तुतिपरक कहा जाता है। आत्मस्तुति में जो ऋषि होता है, वही देवता होता है। इनमें स्तुति का विषय वह ऋषि स्वयं है, जो आत्मा की स्तुति करता है।[१८] इन सूक्तों में भी नौ नारी ऋषि ऋग्वेद में हैं। सूक्त क्रम से वे इस प्रकार हैं–

नाम ऋषि		मण्डल	सूक्त मन्त्र
(१	श्री	५	८७ के बाद के रिवल मन्त्र
(२)	लाक्षा	८	५१ के बाद के रिवल मन्त्र
(३)	सार्पराज्ञी	१०	१८९
(४)	वाक्	१०	१२५
(५)	श्रद्धा	१०	१५१
(६)	मेधा	१०	१५१ के बाद का रिवल सूक्त (मेधा सूक्त)
(७)	दक्षिणा	१०	१०७
(८)	रात्री	१०	१२७
(९)	सूर्या सावित्री	१०	८५

६. ऋषिकायें

ऋषिका पद का प्रयोग बहुधा नारी ऋषि के वाचक पद के रूप में कुछ विद्वान् करते हैं। परन्तु किसी शास्त्रीय प्रमाण से यह कथन पुष्ट नहीं होता। 'बृहद्देवता' ग्रन्थ में, जहां नारी ऋषियों के कुछ नाम गिनाये गये हैं, वहां उनको ऋषिका नहीं कहा गया, परन्तु ब्रह्मवादिनी पद का प्रयोग हुआ है। सायण ने भी नारी ऋषियों के लिए सामान्य रूप से

ऋषि पद का प्रयोग किया है। परन्तु कहीं-कहीं ऋषिका पद का भी व्यवहार है। जैसे १०, १८९ सूक्त में सार्पराज्ञी (नाम ऋषिका) पद व्यवहृत है। पं. वाचस्पति गैरोला ने 'चरक संहिता' सूत्र स्थान के प्रमाण को उद्धृत कर कहा कि मुनियों के चार भेद होते हैं-महर्षि, ऋषि, ऋषिका और ऋषिपुत्र। यहां ऋषिका पद का अर्थ है- ऋषियों के शिष्य-शिष्यायें।

लेखक के कथन का अभिप्राय है कि औरस वंश परम्परा से जो सन्तानें हुई, वे ऋषिपुत्र थे। किन्तु विद्या की वंश परम्परा से जो शिष्य-शिष्यायें थे, वे ऋषिका कहलाये। अतः ऋषिका पद का अर्थ है- ऋषियों के शिष्य और शिष्यायें। वस्तुतः इन शिष्य-शिष्याओं ने गुरुओं की परम्परा को बनाये रखा।

मोनियर विलियम्स ने अपने शब्दकोष में ऋषिका पद का अर्थ किया है-A Rishi of lower degree, the wife of a inferior Rishi। परन्तु लोक में ऋषिका पद का व्यवहार नारी ऋषियों के लिए होता रहा।

७. ऋग्वेद की नारी ऋषियों का सामान्य परिचय

'ऋग्वेद' में सामान्यतः २७ ऋषिकाओं के नामों तथा उनके द्वारा

दृष्ट एवं प्रोक्त मन्त्रों का उल्लेख किया गया है। यद्यपि इन ऋषियों का विस्तृत परिचय प्राचीन साहित्य से हमको प्राप्त नहीं होता। तथापि जो सूक्ष्म विवरण उनके सम्बन्ध में प्राप्त होता है, उसको प्रस्तुत करना उचित होगा। ऋषिकाओं का स्वल्प परिचय क्रमशः प्रस्तुत किया जाता है-

१. लोपामुद्रा -

प्राचीन साहित्य में ऋषि अगस्त्य की पत्नी लोपमुद्रा का वर्णन प्रचूर है। ऋग्वेद में उनके सम्बन्ध में मन्त्र मिलते हैं।

लोपामुद्रा की गणना उन तीन महा पतिव्रताओं में की जाती है जिन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन महादेवताओं को भी अपने गर्भ में धारण किया था। वे महर्षि अगस्त्य की पत्नी थीं। वे विदर्भनगर की राजकुमारी थीं और उन्होंने महर्षि अगस्त्य का वरण किया था।

पौराणिक कथाओं के अनुसार ब्रह्मनिष्ठ महर्षि अगस्त्य ने विवाह करके सन्तानोत्पत्ति की कामना की। उन्होंने विश्व की सुन्दर श्रेष्ठ वस्तुओं के सारांश को लेकर एक बालिका की रचना की। बालिका का पालन करने के लिए उसे उन्होंने विदर्भनगर के राजप्रासाद में पहुंचा दिया। वहां के राजा-रानी ने उस कन्या का सम्यक् प्रकार से पा़लन किया। बालिका का नाम लोपामुद्रा रखा गया। युवती होने पर वह

कन्या अनन्य सुन्दरी और गुणवती थी। अनेक राजकुमारों ने उस कन्या से विवाह की कामना की। परन्तु उस कन्या ने अगस्त्य ऋषि से विवाह करने की कामना की और उसी का पति के रूप में वरण किया। तदनन्तर पत्नी के अनुरोध से अगस्त्य ने प्रचूर धन लाकर उसको दिया।

प्राचीन साहित्य के अनुसार दक्षिण भारत में आर्य संस्कृति के प्रसार का श्रेय अगस्त्य मुनि को दिया जाता है। विन्ध्य पर्वत को पार करके दक्षिण भारत से, समुद्रों को पार करके भी द्वीप-द्वीपान्तरों में उन्होंने भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रचार किया। 'रामायण' में राम के वनवास के वर्णनों में अगस्त्य और लोपामुद्रा का प्रचुर वर्णन है। अगस्त्य ने राम को दिव्य आयुध दिये थे। तमिल साहित्य के अनुसार अगस्त्य मुनि आर्य संस्कृति का प्रसार करने के लिये लोपामुद्रा के साथ दक्षिण भारत पहुंचे थे और वहीं रहने लगे। कावेल के अनुसार सातवीं आठवीं शताब्दी ईपू में अगस्त्य मुनि दक्षिण भारत गये थे।[१९] 'महाभारत के वनपर्व में अगस्त्य के गुणों और सेवा के कार्यों की प्रशंसा है।[२०]

अगस्त्य के नाम से प्रसिद्ध अनेक आश्रम सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं। उत्तर में हिमालय और दक्षिण में कुमारी अन्तरीप के समीप अगस्त्य के आश्रम हैं। वहां वे अपनी पत्नी लोपामुद्रा के साथ रहते थे।

'ऋग्वेद' प्रथम मण्डल के १७९वें सूक्त के १-२ मन्त्रों की ऋषि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा हैं। मन्त्रों में पति-पत्नी के सम्बन्धों का ज्ञान परम प्रभु ने लोक को दिया है। वे मन्त्र निम्न हैं:-

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्ती।
मिनाति श्रियं गरिमा तनूनामूप्यू नु पत्नीर्वृषणोजगम्युः॥
येचिद्धि पूर्वे ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि।
ते चिदवापुर्नह्यन्तमापुः समू नुपत्नीर्वृषभिर्जगम्युः॥

सायण और दयानन्द ने इन मन्त्रों की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। इनको उद्धृत करना ज्ञानवर्धक होगा-

सायण- हे मेरे पति अगस्त्य! मुझ लोपमुद्रा ने अपने अनेक वर्षों को, महीनों को और दिनों को अपने शरीर को जीर्ण करते हुए बिताया है। प्रभात बेलाओं में श्रम करती हुई मैं थक गई हूँ। अब यह वृद्धावस्था मेरे अंगों के सौंदर्य को नष्ट करने में लगी है। अतः अब आप भी मुझ पर अनुग्रह क्यों नहीं करते क्योंकि इस संसार में पत्नियां वीर्य का सिंचन करने वाले पति के साथ संगम को प्राप्त होती ही हैं।

हे मेरे पति अगस्त्य! जो भी प्राचीन समय के सत्य व्यवहार से दूसरों को शिक्षा देने वाले महर्षि थे, उन्होंने देवताओं के साथ मिलकर सत्य वाक्यों को कहा- जो इस प्रकार अपनी पत्नियों में वीर्य सिंचन

करते हैं, उनका ब्रह्मचर्य खंडित नहीं होता तथा पत्नियां अपने वीर्यशाली पतियों के साथ संगम प्राप्त करती ही हैं।

सायण ने इन मन्त्रों का जो अर्थ किया है, वह व्यक्ति वाचक अधिक है। इससे प्रतीत होता है कि स्वयं ऋषि अगस्त्य और पत्नी लोपामुद्रा सन्तानोत्पत्ति के लिए एक-दूसरे की कामना कर रहे हैं।

ऋषि दयानन्द ने मन्त्रों के मूल भाव तो वही लिये हैं परन्तु इन्होंने मन्त्रों को व्यक्तिवाचक न मानकर सामान्यवाचक माना है। ये मन्त्र सामान्य स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी के सम्बन्ध को अभिव्यक्त करते हैं। उनके अनुसार मन्त्रों का भाव यह है-

पत्नियों को अनेक वर्षों तक दिन और रात, प्रातःकाल से रात्रि प्रारम्भ होने तक, वृद्धावस्था को प्राप्त करने तक घर के कार्यों में परिश्रम करना चाहिए, वे पति के संगम को प्राप्त करके सांसारिक सुखों का उपभोग करने के लिये तभी योग्य होती हैं। सत्य व्यवहार का उपदेश देने वाले प्राचीन ऋषियों ने और श्रेष्ठ पुरुषों ने इन्हीं सत्य वाक्यों को कहा है। जो पुरुष धर्म के अनुसार अपनी पत्नियों के साथ संगम करते हैं, उनका ब्रह्मचर्य खंडित नहीं होता। पत्नियों को धर्म के अनुसार पतियों के साथ संगम प्राप्त होता है।

इन मन्त्रों के भाव के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द का कथन है-

सदाचारी पुरुष को विद्वान् और सदाचारी गुरु से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए तथा इसके बाद अपने समान गुणशील ब्रह्मचारिणी कन्या से विवाह करना चाहिए।

'वृहद्देवता' के अनुसार ऋषि अगस्त्य ने अपनी ऋतुस्नाता पत्नी लोपामुद्रा से एकान्त में संभोग की कामना से वार्ता करनी प्रारम्भ की। तदनन्तर लोपामुद्रा ने दो ऋचाओं (१, १७९, १-२) को कहकर उनके समक्ष अपने अभिप्राय को व्यक्त किया।[२१] तदनन्तर.... आनन्द को प्राप्त करने की इच्छा से ऋषि ने अगली दो ऋचाओं को कहकर (१. १७९, ३-४) अपनी पत्नी लोपामुद्रा को संतुष्ट किया।[२२] अगस्त्य ऋषि के शिष्य ने तप के प्रभाव से गुरु के और गुरु-पत्नी के भाव को जान लिया। परन्तु इस प्रकार की बातों को सुनकर, मैंने पाप किया है,[२३] यह विचार कर उसने सूक्त की अंतिम ऋचा (१, १७०.५) का गान किया। शिष्य के इन भावों को जान गुरु और गुरुपत्नी दोनों ने शिष्य की प्रशंसा की। उन्होंने उसका आलिंगन कर मस्तक का चुम्बन किया और कहा कि हे पुत्र! तुम निष्पाप हो।[२४] इसके बाद ऋषि अगस्त्य ने अगले पांच सूक्तों (१८०-१८४) में अनेक देवताओं की स्तुति की।

वैदिक साहित्य में मन्त्रों की द्रष्ट्री अनेक नारी ऋषियों, ब्रह्मवादिनियों के नाम दिये गये हैं। इससे विदित होता है कि इस वैदिक युग में नारियां विदूषी तथा प्रतिभाशालिनी होती थीं। पुरुषों के समान उनको

भी वेदों के अध्ययन-मनन-चिंतन के अधिकार प्राप्त थे।

लोपामुद्रा का विचार है कि गृहस्थ जीवन में दम्पत्ति को संयम का पालन करना चाहिए। इससे दाम्पत्य जीवन सुखी और सफल होता है और श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न होती हैं।

२. रोमशा -

ऋग्वेद के १.१२६ सूक्त के ६-७ मन्त्र की ऋषि रोमशा हैं। इस सूक्त का देवता स्वनय है। इस सूक्त की वैज्ञानिक व्याख्या के अनुसार रोमशा पृथ्वी का नाम है। यह सघन रोमों से आवृत होने के कारण रोमशा नाम से अभिहित हुई। पृथ्वी के चारों ओर का वायुमण्डल, अणु-परमाणु ही इसके रोम हैं। स्वनय सूर्य का नाम है। सौरमण्डल के नीहारिका केन्द्र की परिक्रमा सूर्य करता है। सूर्य के आकर्षण के कारण पृथ्वी उसके साथ खिंची चली जाती है परन्तु सूर्य को ले जाने वाला वह स्वयं ही है। अतः वह स्वनय है। सूर्य से ग्रहों के निष्कासन के कारण उसका विकिरण कम हो जाता है।

इस सूक्त में पृथ्वी सूर्य से कहती है-हे सूर्य! तुम मुझे पास से स्पर्श करो, क्योंकि मैं सघन रोमों वाली हूँ। तुम्हारा स्पर्श मुझको नहीं पहुंच रहा। उस समय सूर्य के विकिरण को कम करने के लिए सूर्य द्वारा चन्द्रमा का आधान किया जाता है। इससे पृथ्वी के वत्स चन्द्रमा का

जन्म होता है। ऋग्वेद (१.१६४.३३) में चन्द्रमा स्वयं अपने माता-पिता का परिचय देता है। वह सूर्य को अपना पिता और पृथ्वी को अपनी माता कहता है-

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र
बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।

इस प्रकार वेद में स्पष्ट रूप से सृष्टि प्रक्रिया को प्रदर्शित करने वाले मन्त्र हैं। वेद सृष्टि के रहस्यों को प्रदर्शित करते हैं और सृष्टि की व्याख्या करते हैं।

सायण ने ऋग्वेद (१.१२६) में रोमशा को बहुत रोमों वाली कहा है। बृहस्पति उसका पिता है, उसका पति भवगव्य है। सूक्त में दोनों का संवाद होता है। बहुत रोमों वाली रोमशा प्रौढ़ आयु की है। संयोग के लिए पति से प्रार्थना करती है। भवगव्य उसका उपहास करता है। के.एम. मुन्शी द्वारा सम्पादित वैदिक एज ग्रन्थ में, सायण द्वारा रचित भाष्य को दृष्टि में रखकर इसके निकृष्टतम रूप को प्रकट किया गया है।

ऋषि दयानन्द इन मन्त्रों को दूसरे रूपों में देखते हैं। उनके अनुसार रोमशा ब्रह्मवादिनी ऋषि थी जो राजनीति का उपदेश करती है। वह कहती है कि जिस नीति से राज्य में असंख्य सुखों का सम्पादन होता है, वही सबको स्थापित करनी चाहिए। दयानन्द मन्त्रों का व्यक्तिपरक

अर्थ नहीं करते। रोमशा राजरानी है, वह राजा से कहती है कि वह उससे कम नहीं है। जैसे राजा पुरुषों का न्यायाधीश है, वैसे ही वह स्त्रियों का न्याय करने वाली होती है।

३. नद्यः –

ऋग्वेद में नद्य भी नारी ऋषि के रूप में मन्त्रद्रष्ट्री है। 'ऋग्वेद' के तीसरे मण्डल का ३३ वां सूक्त नद्यः और ऋषि विश्वामित्र के संवाद के रूप में है जबकि विश्वामित्र अपने शिष्यों को विपाशा और शुतुद्री नदियों को पार कराने का प्रयत्न करते हैं। इस सूक्त के २, ६ और ८ मन्त्रों का उच्चारण नद्यः द्वारा हुआ है और वे उन मन्त्रों की द्रष्टा ऋषि (ऋषिका) है।

ऋग्वेद ३, ३३ सूक्त में विपाशा और शुतुद्री नदियों से एकात्म भाव का अनुभव करने से ऋषिकायें नदियों के माध्यम से ऋषि विश्वामित्र से संवाद करती हैं। विश्वामित्र द्वारा प्रोक्त स्तुति को सुनकर नदियां उनसे कहती हैं कि वजबाहु इन्द्र ने वृत्र का वध करके उनको मुक्त किया है। सविता देवता उनका मार्गदर्शन करते हैं। अतः वे निर्भय होकर आगे और आगे बढ़ती हैं।

नदियां विश्वामित्र से कहती हैं कि आज वे जो नदियों की महिमा का गान कर रहे हैं, उसको वह भूला नहीं है। विश्वामित्र भी उनको 'स्वसारः' कहकर उनसे अपना प्रवाह नीचा करने की प्रार्थना करते हैं,

जिससे कि वे सरलता से पार जा सकें। वे निवेदन करते हैं-

वे दूध से भरे स्तनों वाली युवती के समान तथा युवा प्रियतम के समक्ष झुक जाने वाली युवती के समान आप झुक जायेंगी।

तदनन्तर नदियों के प्रत्युत्तर को सुनकर विश्वामित्र नदियों को पार करके चले जाते हैं।

४. शश्वती आंगिरसी -

शश्वती को अंगिरस ऋषि की पुत्री कहा गया है। अतः इस ऋषिका का पूरा नाम शश्वती आंगिरसी है। यह ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के प्रथम सूक्त के ३४वें मन्त्र की ऋषिका है। इस मन्त्र का देवता आसंग कहा गया है। इस मन्त्र में शश्वती पद का प्रयोग किया गया है।

५. अपाला आत्रेयी -

अत्रि ऋषि की पुत्री अपाला ब्रह्मवादिनी ऋषि थी। शांरवायन ब्राह्मण के आधार पर सायण ने अपाला विषयक एक कथा उद्घृत की है, जो अलौकिक, तत्त्वों से भरी है।

अपाला ने ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ९१वे सूक्त का दर्शन किया था। इस सूक्त का देवता इन्द्र है। पतिंवरा होने पर भी वह त्वचा के रोग से ग्रस्त होने के कारण पति को प्राप्त नहीं कर सकी थी।

मनोवैज्ञानिक रूप से वह अपने अभिप्राय को अन्य पुरुष इन्द्र के समक्ष प्रकट करती है।

अपाला के पिता अत्रि असहाय और वृद्ध हैं। वे स्वल्प अनुपजाऊ भूमि के स्वामी हैं। अतः कन्या की देखभाल करने में असमर्थ हैं। अपाला निराश होकर इन्द्र की शरण में जाती है। वह नदी की ओर जा रही थी कि उसे सोमवल्ली का एक टुकड़ा मिलता है। इसको वह इन्द्र को देने का संकल्प करती है। परन्तु उसके पास तो यज्ञ में उसे देने का साधन भी नहीं है। वह दांतों से ही सोमवल्ली का रस निकालती है। इसको वह आटे के बने यव के अपूप के साथ स्तुति करते हुए इन्द्र को अर्पित करती है। उसकी इन्द्र के प्रति अत्यधिक भक्ति और श्रद्धा है। इससे वह अपने को इन्द्र के घर जाता अनुभव करती है।

अपनी तुच्छ अवस्था का ध्यान कर अपाला के मन में विचार होता है कि इन्द्र इस पर कृपा करेगा। पतिवरा न बन सकने के कारण और दुरवस्था के कारण विवाह न हो सकने के कारण उसकी मानसिक स्थिति पतिद्रोहिणी जैसी है। यदि किसी को अभीष्ट वस्तु प्राप्त न हो तो वह उससे द्वेष करने लगता है। अपाला की भक्ति से प्रसन्न होकर इन्द्र उसकी त्वचा को स्वस्थ करके सूर्य के समान दीप्तिशाली बना देता है।

६. सिकता विभावरी -

ऋग्वेद के नवम मण्डल का विषय सोम है। इस मण्डल के ८६वें सूक्त के ११-२० मन्त्रों की द्रष्ट्री ऋषिका सिकता विभावरी है। वह सोमवल्ली का अभिषव कर सोम रस का निष्पादन करने में कुशल है।

७. सूर्या सावित्री -

ऋग्वेद के दशम मण्डल के ८५ वें सूक्त की दृष्ट्री ऋषिका सूर्या है। सवितृ देवता की वह पुत्री है। अतः सूर्या सावित्री कहलाती है।

सूर्या सूक्त नाम से प्रसिद्ध इस सूक्त में विवाह संस्कार का विस्तृत वर्णन हुआ है। विवाह संस्कार के अतिरिक्त भी अनेक विषय इस सूक्त में वर्णित हुए हैं। प्रारम्भ के पांच मन्त्रों में सोम का वर्णन है। इनमें सोम के औषधि विषयक और आध्यात्मिक मूल्यों की चर्चा है। सोमपान के लिए इसमें निर्देश है-

सोमं मन्यते पपिवान् यत्संपिषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्मणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन॥ ८५.३

सोम का पान करने वाले उसी को सोम मानते हैं, जिस सोम का औषधि रूप में कूट कर, पीस कर पान किया जाता है। परन्तु जिस सोम को ब्रह्मवित् ब्राह्मण जानता है, उसका कोई भक्षण नहीं कर

सकता। इस सूक्त के अनेक मंत्र वैवाहिक जीवन से, विवाह संस्कार से सम्बन्धित हैं।

ऋषि दयानन्द का कथन है कि इस सूक्त के अनेक मन्त्रों में विधवा विवाह का समर्थन किया गया है।

सूर्या का विवाह सोम से किस प्रकार हुआ, विवाह संस्कार के समय दहेज (यौतुक) में कौन सी सामग्री दी जाती है, विवाह संस्कार के अनन्तर वर-वधू के प्रस्थान के समय किस-किसको कौन सी वस्तु दी जानी चाहिये, इसका निर्देश इस सूक्त में है। जब नव वधू सूर्या अपने पति सोम के साथ प्रस्थान करती है, उसके शुभ कर्म ही उसका दहेज होते हैं। इस विवाह में भूमि, स्वर्ण, रजत आदि बहुमूल्य वस्तुओं का दहेज न होने पर भी सोम केवल वधू की कामना करता हुआ ही विवाह करता है।

८. घोषा काक्षावती -

ऋग्वेद के दशम मण्डल के ३९-४० सूक्तों की द्रष्ट्री ऋषिका घोषा काक्षीवती है। कक्षीवान् ऋषि की पुत्री होने के कारण उसको काक्षावती कहा गया।

घोषा काक्षावती के सम्बन्ध में 'वृहद्देवता' ग्रन्थ में कथा है- कुष्ठ रोग से ग्रसित होने के कारण घोषा अविवाहित रहकर अपने पिता के

घर रह गई। इसके बाद बहुत समय तक उसने देवताओं की आराधना की। प्रसन्न होकर देवताओं ने उसे स्वस्थ कर दिया। तदनन्तर उसने पति को प्राप्त किया।

इन सूक्तों के देवता अश्विनी हैं। वे चिकित्सा शास्त्र के प्रवर्तक देवता हैं। इन देवताओं से प्रार्थना की गई है कि वे गृहस्थ जनों को सुशिक्षित और स्वस्थ संतानों से संयुक्त करें।

ऋषि दयानन्द की मान्यता है कि इस सूक्त में विधवा द्वारा देवर से नियोग का समर्थन किया गया है और उससे सन्तान प्राप्त करने का निर्देश दिया है।

९. इन्द्रस्नुषा वसुक्रपत्नी -

ऋग्वेद के दशम मण्डल के २९ वें सूक्त की ऋषि इन्द्रस्नुषा वसुक्रपत्नी है। वसुक्र इन्द्र का पुत्र था। यज्ञ का आयोजन करके वसुक्र ने इन्द्र का आह्वान किया था। इस यज्ञ में वसुक्र की पत्नी सहभागिनी थी। इन्द्र उसका श्वसुर था। श्वसुर को देखकर वसुक्रपत्नी ने वहां से जाना चाहा। उसको प्रसन्न करने के लिए इन्द्र ने उससे वार्ता की। तब प्रसन्न होकर इन्द्र ने उसके द्वारा अर्पित लाजा और सोम को स्वीकार कर उसे अपने स्थान पर जाने का निर्देश किया। अतः यह सूक्त वसुक्रपत्नी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ऋषिका का कथन है कि पति का प्रेम पाने वाली स्त्री ही भाग्यशालिनी होती है। पति को भी वीर्यशाली, कर्मठ और संघर्षशील होना चाहिए। इस ऋषिका का ठीक-ठीक अभिधान नहीं मिलता।

१०. यमी वैवस्वती -

ऋग्वेद के १०वें और १५४वें सूक्तों की ऋषि यमी है। प्राचीन आख्यानों के अनुसार यम और यमी दोनों सूर्य की संतानें थीं। इस प्रकार यमी, यम की सहोदरा भगिनी थी। वह अपने भाई यम के प्रति आसक्त हो गई और उससे संभोग करने की कामना की। परन्तु इस सम्बन्ध को अनुचित समझकर यम ने इसका निषेध किया।

भारतीय आलोचकों का कथन है कि इस सूक्त के यम-यमी संवाद के माध्यम से परमेश्वर ने एक ही कुल के समान माता-पिता से उत्पन्न हुये भाई-बहन के यौन सम्बन्ध को अनुचित माना है। इस सम्बन्ध को अनुचित मानकर ही यम ने इसका निषेध किया था। वह अपनी बहन यमी को शिक्षा देता है कि भाई-बहन के मध्य यौन सम्बन्ध स्थापित होना अनुचित है।

ऋषि दयानन्द ने यम और यमी को भौतिक तत्त्वों का प्रतीक मानकर इन सूक्तों की आधिभौतिक व्याख्या की है। यम-यमी के संवाद द्वारा ऋषि दयानन्द ने नियोग के विधान का भी समर्थन किया है।

११. अगस्त्यभगिनी -

ऋग्वेद के दशम मण्डल ६० वें सूक्त के छठे मन्त्र की ऋषि अगस्त्य भगिनी है। वह राजा की स्तुति कर उससे प्रार्थना करती है कि अपराधी, दान न देने वाले और यज्ञ न करने वाले पापी जनों का वे अभिभव करें। इस ऋषिका का नाम प्राप्त नहीं होता।

१२. अदिति दाक्षायणी -

ऋग्वेद के दशम मण्डल ७२ वें सूक्त की द्रष्टा ऋषि अदिति दाक्षायणी हैं। वैदिक साहित्य में अदिति का बहुधा उल्लेख है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार अदिति देवताओं की माता है, अतः देवताओं को आदित्य कहा गया है।

१०.७२ सूक्त में अदिति के सम्बन्ध में अनेक रहस्यमय आख्यान हैं। वस्तुतः अदिति का अर्थ है- अखण्डनीया प्रकृति। इस सूक्त के चतुर्थ मन्त्र में कहा गया है-अदितेर्दक्षो अजायत। अदिति से दक्ष उत्पन्न हुआ। पंचम मन्त्र में अदिति को दक्ष की पुत्री कहा गया है।

यहां दक्ष का अर्थ अग्नि है (दक्ष=दग्ध करने वाला अग्नि)। नवें मन्त्र के अनुसार अदिति ने आठ पुत्रों को उत्पन्न किया था। अदिति के आठ पुत्र हैं-प्रकृति, महत्, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल

और पृथ्वी। अदिति का नवम पुत्र मार्तण्ड भी है। अदिति का उल्लेख अन्य संहिताओं-यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी अनेक बार हुआ है।

१३. उर्वशी -

ऋग्वेद के दशम मण्डल का ९५ वां सूक्त उर्वशी सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। १८ मन्त्रों के इस सूक्त की ऋषि उर्वशी है और उसमें पुरूरवा औ!र उर्वशी का संवाद है। पुरूरवा-उर्वशी की मूल कथा का ऋग्वेद के इसी सूक्त से प्रादुर्भाव होकर इसका कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक में विकास हुआ।

ऋषि दयानन्द के अनुसार इस सूक्त में सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया सम्बन्धी वैज्ञानिक तथ्य निहित हैं। उर्वशी पद की रचना उरू+वशी से निष्पन्न होती है। इसका अर्थ है-विस्तृत तथा व्यापक। उर्वशी पद उस विस्तृत व्यापक मन्दाकिनी का द्योतक है, जो आकाश के अति व्यापक आयतन के अणुओं और परमाणुओं के, सृष्टि के मूल रूपों से एकत्रित होने से निहित होती हैं। इस मन्दाकिनी का केन्द्रीय भाग जब घनीभूत हुआ तो इसमें से विष्णु देवता की शक्ति से अनेक सूर्यों का निष्कासन हुआ। अधिक भौतिक रूप से कहा जावे तो यह शक्ति ही उर्वशी है।

सायण के अनुसार उर्वशी सूक्त में पुरूरवा-उर्वशी की प्रणय कथा निहित है। इस कथा का ही ब्राह्मण ग्रन्थों और काव्य साहित्य में

अवतरण हुआ है। उसके अनुसार प्रतिष्ठानपुर के राजा पुरूरवा उर्वशी अप्सरा के सौंदर्य को देखकर उस पर आसक्त हो गये और उसे अपनी रानी बनाकर अन्तःपुर में ले आये। उर्वशी का सम्बन्ध गन्धर्वों से है। गन्धर्व उसको वापिस ले जाने का प्रयत्न करते हैं और उर्वशी उनके साथ चली जाती है। व्याकुल होकर पुरूरवा उसको खोजते हैं। एक स्थान (नदी) पर उर्वशी को पाकर वे उसे ले जाने का प्रयत्न करते हैं। तब उर्वशी उनको समझाती है-

उसका और पुरूरवा का कोई स्थिर सम्बन्ध नहीं है। पुरूरवा के लिये उर्वशी अप्राप्य है। स्त्रियों की मित्रता स्थायी नहीं होती और उनका हृदय भेड़ियों तथा शिकारी कुत्तों के समान होता है। अतः पुरूरवा को चाहिये कि वह उर्वशी के प्रति आसक्ति न रखे।

ऋषि दयानन्द ने उर्वशी सूक्त की आध्यात्मिक व्याख्या की है और इसको प्राकृतिक शक्ति के रूप में लिया है। वे इसमें राजनीतिक संकेत भी ग्रहण करते हैं। उन्होंने उर्वशी का अर्थ विद्युत भी ग्रहण किया है।

१४. इन्द्राणी -

ऋग्वेद के दशम मण्डल के ८६ और १४५ सूक्तों की द्रष्टा ऋषिका इन्द्राणी है। कहा जाता है कि इन्द्र की अनेक पत्नियां थीं और सभी को इन्द्राणी कहा गया है। यह भी प्रसिद्ध है कि पुलोमन् असुर की

पुत्री इन्द्र की पत्नी बनी थी और उसका नाम पौलोमी था। अतः उसको इन्द्राणी पौलोमी और राची पौलोमी भी कहा गया था। ये दोनों पृथक-पृथक भी कही गई हैं। अतः इनके मन में सपत्नीजन्य दुर्भावना भी विद्यमान थी।

इन सूक्तों का अभियोजन सपत्नीबाधन के लिये किया जाता है। इस सूक्त से परिवार में वैदिक स्त्रियों की स्थिति का भी बोध होता है।

१५. शची पौलोमी -

ऋग्वेद के दशम मण्डल के १५९ वें सूक्त की द्रष्ट्री ऋषिका शची है। वह पुलोमन् नामक असुर की पुत्री थी और उसका नाम शची था। अतः वह शची पौलोमी के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस सूक्त में शची स्वयं अपनी स्तुति करती है। इस सूक्त का नियोजन सपत्नीबाधन के लिये होता है।

इस शची सूक्त में नारी की अस्मिता, तेजस्विता, ओजस्विता तथा गरिमा को प्रभावशाली रूप में व्यक्त किया गया है। सायण आदि आचार्यों ने इस सूक्त की व्याख्या की है। वे इसके अभिप्राय को ठीक प्रकार से समझ नहीं पाये और इस सूक्त के विनियोजन का निर्देश सपत्नी बाधन के लिए कर गये।

१६. इन्द्रमातरः -

ऋग्वेद दशम मण्डल के १५३वें सूक्त की ऋषि इन्द्रमातरः हैं। वे देवताओं की स्वसृभूत होकर इन्द्र के महान् कार्यों की स्तुति करके उसकी विजय की आशंसा करती है। इस सूक्त में पांच मन्त्र हैं तथा पांचों में इन्द्र के पराक्रमों का गान किया गया है।

१७. दक्षिणा प्राजापत्या –

दक्ष प्रजापति की पुत्री दक्षिणा बहुत महत्वशालिनी है। वह ऋग्वेद दशम मण्डल के १०७ वें सूक्त की द्रष्ट्री ऋषि है। इस सूक्त में दक्षिणा (दान) और (दक्षिणादाता) दानदाता जनों की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। विशेष रूप से यज्ञ में यज्ञमानों को चाहिये कि वे दक्षिणा अवश्य दें।

ऋग्वेद का मन्त्र है 'उरु पन्थाः दक्षिणायाः अदिर्श (१०७.१), दक्षिणावान् प्रथमो एति (१०७.५) दक्षिणा का महान मार्ग दिखा दिया गया है। दक्षिणा देने वाला सबसे आगे बढ़ कर आता है।

१८. सरमा देवशुनी –

ऋग्वेद दशम मण्डल के १०८वें सूक्त में सरमा और पणियों का संवाद है। ११ मन्त्रों के इस सूक्त की द्रष्ट्री ऋषि सरमा कही जाती हैं। (इस संवाद सूक्त) में २, ४, ६, ८ और १०वें मन्त्रों का उच्चारण सरमा करती हैं।

देवताओं की गौओं को पणि नामक असुर चुरा कर ले गये थे। उन्होंने इन गौओं को बहुत दूर ले जाकर पर्वतों की गुफाओं में छिपा दिया। गौओं को खोजने के लिये देवराज इन्द्र ने सरमा नाम की शुनी को दूत बनाकर भेजा। सरमा ने अनेक नदियों, मैदानों और पर्वतीय प्रदेशों को पार करके गौओं को खोज लिया। इन्द्र के पराक्रम का भय दिखाकर सरमा ने पणियों से कहा कि वे गौओं को वापिस कर दें। अन्यथा इन्द्र उन सबको नष्ट कर देगा।

पणियों ने सरमा को बहन कहा और प्रलोभन देने का प्रयत्न किया। परन्तु सरमा ने इस प्रलोभन को ठुकरा दिया और इन्द्र के पराक्रम का भय दिखाकर गौओं को वापिस करने का ही संदेश दिया। उसने कहा-

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वम्
इन्द्रो विदुराङ्गिरसश्च घोरा।। १०८.१०

हे पणियों! न तो मैं भाईपन की बात को जानती हूँ और बहन होने की बात को भी नहीं जानती हूँ। जबकि मैं इन्द्र के पास जाऊंगी तो इस बात को, तुम्हारी चोरी की बात को इन्द्र और भयानक आंगिरस सैनिकों को कहूंगी। गौओं को तुम वापिस कर दो।

१९. जुहू -

ऋग्वेद दशम मण्डल के १०९वें सूक्त की द्रष्ट्री ऋषिका जूहू हैं।

यह ब्रह्मवादिनी ऋषिका हैं। साहित्य में जुहू को बृहस्पति देवता की पत्नी कहा गया है। इसको ब्रह्म जुहू भी कहा जाता है। १०९ सूक्त में जुहू ने विश्वे देवता की स्तुति की है।

२०. वाग् आम्भृणी -

ऋग्वेद दशम मण्डल के १२ वें सूक्त की ऋषिका वाग् आम्भृणी ऋषिका ब्रह्मवादिनी है। आत्मस्तुति परक इस सूक्त मे वाग् ऋषिका ने ब्रह्म साक्षात्कार करके महान् महिमा को प्राप्त किया था। इस सूक्त में वह अपनी ही महिमा का वर्णन करती है। वाक् ही सब देवताओं का भरण-पोषण करती है। देवताओं ने सब वस्तुओं में वाक् का प्रवेश कराया था। वाक् से ही सब प्राणियों का जीवन है। जिस पर उसकी कृपा होती है, उसको वह उग्र, ब्रह्मा, ऋषि और सुमेधा बना देती है।

अहमेव स्वयमिदं वदामि। जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये त तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्। १२५५

सर्वत्र व्याप्त वाक् ही सब प्राणियों में वाक् शक्ति को विकसित करती है।

वाक् को अभ्भृण ऋषि की पुत्री कहा गया है। अतः उसका पूरा नाम वाग् आम्भृणी है। वह अपनी महिमा का स्वयं वर्णन करती है। सच्चिदानन्द स्वरूप सर्वव्यापक परमात्मा ही इस वाक् सूक्त का देवता

है। रुद्र, वसु, आदित्य, मित्र, वरुण आदि सब देवता उसके पुत्र ही हैं। वह ही इन सब देवताओं द्वारा विचरण करती है।

सूक्त द्रष्ट्री इस वाक् ने ही राष्ट्र विधायी शक्ति बन कर राष्ट्र पुरुष को शक्ति प्रदान की। उसने उनमें ब्रह्म तेज का वितरण किया और ब्रह्म विद्वेषी हिंसकों का विनाश करने के लिए क्षात्र तेज को उद्दीप्त किया।

वह स्वयं ही राष्ट्र की लक्ष्मी हैं और राष्ट्र की संरक्षा और संवर्धन कर रही है।

२१. रात्री -

ऋग्वेद दशम मण्डल के १२ वें सूक्त की ऋषिका रात्री ब्रह्मवादिनी है। वह रात्रि में नक्षत्रों की शोभा से प्रकाशित होकर विशेष रूप से सौंदर्य को धारण करती है।

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यभिः
विश्वा अधि धियोऽधित॥ १२७.१

यह मरण रहित विस्तृत अन्तरिक्ष को विशेष रूप से प्रकाशित किये हुये है। रात्रि में चन्द्रमा और नक्षत्रों का प्रकाश अन्धकार को बाधित करता है।

रात्री व्यतीत होने पर उषा की ज्योति जगत् को प्रकाशित करती

है। रात्रि आने पर जगत् के सभी प्राणी अपने घरों में सुख से शयन करते हैं। यह रात्रि प्रकाशमान सूर्य की पुत्री है। यह यजमानों की हवि और स्तोत्रों को स्वीकार करती है।

२२. श्रद्धा कामायनी -

ऋग्वेद दशम मण्डल १५१वें सूक्त की द्रष्ट्री श्रद्धा नाम की ऋषिका ब्रह्मवादिनी है। काम गोत्र में उत्पन्न होने के कारण उसका नाम श्रद्धा कामायनी प्रसिद्ध हुआ। इस सूक्त में श्रद्धा देवतात्मक भावों की अभिव्यक्ति होती है-

श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि श्रद्धया वेदयामसि। १०.१५१.१॥
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यं दिनं परि॥ १०.१५१.५॥

सायणाचार्य का कथन है कि पुरुषगत अभिलाषा विशेष श्रद्धा है। पुरुष की उन्नति करने में श्रद्धा के द्वारा ही मनुष्य सभी प्रकार के ऐश्वर्य और सम्पत्ति को प्राप्त करता है। श्रद्धा कामायनी ने श्रद्धा की भावना से अपने को अभिन्न मानकर श्रद्धा की भावना की महिमा का गान किया है। श्रद्धा जब मन में उपजती है तो ऐश्वर्य को प्रदान करती है। अतः श्रद्धा सूक्त में प्रार्थना की गई है-

श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥

हे श्रद्धे! हमारे अन्दर श्रद्धा (सत्य) का आधान करो।

२३. सर्पराज्ञी -

ऋग्वेद दशम मण्डल के १८९वें सूक्त की द्रष्ट्री सार्पराज्ञी नाम की ऋषिका ब्रह्मवादिनी हैं। ऋषि दयानन्द के अनुसार तीन मन्त्रों के इस सूक्त में आकाशस्थ लोकों और ज्योतिःपिण्डों का उल्लेख किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण, (५.२३.१.२) में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

यजुर्वेद के तीसरे अध्याय के ६-७-८ मन्त्रों में ऋषिका के रूप में सार्पराज्ञी कद्रू का उल्लेख है। इससे सम्बन्धित आख्यान इस प्रकार हैः-

दक्ष प्रजापति की दो कन्याये थी-विनता और कद्रू। कद्रू ने एक अण्डे को जन्म दिया। उस अण्डे से एक सहस्त्र सर्पों की उत्पत्ति हुई। विनता ने दो अण्डों को जन्म दिया। इन अण्डों से क्रमशः अरुण और गरुड की उत्पत्ति हुई। विनता की मूर्खता के कारण उसको कद्रू का दासत्व स्वीकार करना पड़ा। परन्तु गरुड के प्रभाव से उसे इस दासत्व से मुक्ति मिली। गरुड ने अमृत लाकर अपनी माता को दासत्व से मुक्त किया। इन्द्र को अमृत ले जाने का बोध हुआ तो कद्रू और सर्पों द्वारा इसको खाये जाने से पूर्व ही उसने उनसे अमृत को छीन लिया।

'महाभारत' में इस कथा को कुछ अन्य रूप से कहा गया है तथा यह कथा यथार्थ न होकर आलंकारिक ही है। ऋषि दयानन्द इस सूक्त

को नक्षत्रों द्वारा काल गणना के स्वरूप का माध्यम मानते हैं। मन्त्र में सूर्य के प्रकाश के सम्बन्ध में कहा गया है-

अन्तश्चरति रोचनाऽस्य प्राणादपानती।
व्यख्यन्महिषो दिवम्।। १८९.२।।

ऋषियों ने ज्योतिष के सूर्य सिद्धान्त आदि तत्वों की खोज इससे की है और इससे पंचांग आदि बनाने का कार्य सुगम हो गया। 'महाभारत' की कद्रू और सार्पराज्ञी ऋषिका के ऋग्वेद (१०.१८९) सूक्त के दर्शन में समानता की झलक स्पष्ट होती है।

(२४, २५, २६, २७)- निषद् उपनिषद्, श्री और लाक्षा

इन ऋषिकाओं, ब्रह्मवादिनियों द्वारा दृष्ट सूक्तों, मन्त्रों का उल्लेख ऋग्वेद में नहीं है। ऋग्वेद में कुछ खिल सूक्त इनके द्वारा दृष्ट कहे गये हैं, परन्तु ये सूक्त मूल ऋग्वेद से बाहर ही हैं। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में उनको नहीं लिया गया।

(२८) विश्ववारा आत्रेयी-

आंत्र ऋषि की पुत्री विश्ववारा ऋग्वेद पंचम मण्डल के १२८वें में सूक्त की ऋषि हैं। इस सूक्त का देवता अग्नि है, इसमें परमेश्वर ने अग्नि रूप का आह्वान किया है कि यज्ञ में अग्नि का हवन करो।

जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे।

वृणीध्व हव्यवाहनम्।। (५.२८.६)

सूक्त में छः मन्त्र हैं और इनमें अग्नि अन्य रूप देवताओं का वाहन है।

भूमिका सन्दर्भः

१. अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्।। मनुस्मृति ७.२१।।

२. अर्थर्वाङि्गरसो मुखम्।
अध्यापयामास पितृन् शिशुराङि्गरसः कविः।। मनुस्मृति २.१५१।।

३. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका। २००२ वि.पृ. २३।।

४. यजुर्वेद ३१.७।

५. अथर्ववेद १०.२.२०।।

६. यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वं यो वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
श्वेताश्वतर उपनिषद् ६.१८।।

७. एष एव वा उरे महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदोऽथर्वाऽङि्गरसः।
बृहदाण्यक उपनिषद् २.४.१० का सायण भाष्य।

८. यद्यप्यपौरुषेये वेदे वेदकर्तारो न सन्ति, तथापि कल्पा-

दावीश्वरानुग्रहेण मन्त्राणां लब्धारो मन्त्रकृदित्युच्यन्ते।

तैत्तिरीय आरण्यक ४.१.१ पर सायण भाष्य।

९. त्रयो वेदा अजायन्ताग्ने ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः।

शतपथ ब्राह्मण ११.५.३।

१०. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका। २००२ वि.पृ. ५००।

११. साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः। ते इतरेभ्योऽसाक्षात्कृमधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रानृ सम्प्रादुः। निरुक्त २.६.४॥

१२. यद्यप्यपौरुषेये वेदे कर्तारो न सन्ति तथापि कल्पादौ ईश्वरानुग्रहेण मन्त्राणां लब्धारो मन्त्रकृदित्युच्यन्ते।

तैत्तिरीय आरण्यक ४.१.१४ पर सायण भाष्य।

१३. ऋषिरित्यत्रार्थद्रष्टा मन्त्रकृत्। करोति धातुरस्य दर्शनार्थः।

१४. घोषा गोधा विश्ववारा अपालोपनिषत् निषत्।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती।
ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादिति।
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमारोमशोर्वशी॥
श्रीर्लाक्षा च सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः॥ बृहद्देवता २-८२-८४॥

१५. नवकः प्रथमस्त्वासां वर्गस्तुष्टाव देवताः। बृहद्देवता २.८५॥

१६. ऋषिभिर्देवताभिश्च समूहे मध्यमो गणः। बृहद्देवता २.८५॥

१७. आत्मनो भाववृत्तानि जगौ वर्गस्तथोत्तमः। बृहद्देवता २.८५॥

१८. आत्मानमस्तौद् वर्गस्तु देवता यस्तथोत्तमः।
तस्मादात्मस्तवेषु स्याद् य ऋषिः सैव देवता। बृहद्देवता २.८७॥

१९. कावेलः ग्रामर आफ दी द्रविडियन लैंग्वेज पृ० १०१, १०९।

२०. महाभारत वनपर्व अध्याय १०४।

२१. ऋतौ स्नातामृषिभार्यां लोपामुद्रां तपस्विनीम्।
उपजल्पितुमारेभे रहः संयोगकाम्यया॥ बृहद्देवता ४.५७।

२२. द्वाभ्यां सा त्वब्रवीद् ऋग्भ्यां पूर्वीरिति चिकित्सतम्।
रिंरसुस्तामथागस्त्य उत्तराभ्यामतोषयत्॥ बृहद्देवता ४.२८॥

२३. विदित्वा तपसा सर्वं तयोर्भावं रिरंसतोः।
श्रुत्वैव कृतवानस्मि ब्रह्मचार्युत्तमं जगौ। बृहद्देवता ४.५९।

२४. प्रशस्य तं परिष्वज्य गुरू मूर्धन्यजिघ्रतुः।
स्थिन्वैनमाहतुश्चोभावनागा असि पुत्रक॥ बृहद्देवता ४.९०।

ऋषिका (नारी-ऋषि) दृष्टानामृग्वेद मन्त्राणां व्याख्या

ऋषिका दृष्ट ऋग्वेद मन्त्र और उनकी व्याख्या

क.

ऋषिकादृष्ट ऋग्वेद मन्त्र और उनकी व्याख्या

१. लोपामुद्रा

प्रथम मण्डल १७९ सूक्त, मन्त्र १-६

ऋषि - लोपामुद्रा, अगस्त्य और उनका शिष्य
देवता - रति
छन्द - त्रिष्टुप्

सूक्त की सायणकृत भूमिका :

पूर्वीरहमिति षड्चं पंचदशं सूक्तं त्रैष्टुभं। उपांत्या बृहती। अत्र त्रयाणां ऋचानां लोपामुद्रागस्त्यतच्छिष्यैर्दृष्टत्वात्त एवर्षयः। सूक्तप्रतिपाद्योऽर्थो रतिर्देवता अन्नानुक्रमणिका। पूर्वीः षड्जायापत्योर्लोपामुद्राया अगस्त्यस्य च ऋचाभ्यां रत्यर्थ संवादं श्रुत्वांतेवासी ब्रह्मचार्यंत्ये बृहत्यादी अपश्यदिति।। विशेषविनियोगो लैंगिकः।।

लोपामुद्राह।।

संहिता पाठ -

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयंतीः।

मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ।।१।।

पद पाठ-

पूर्वीः। अहं। शरदः। शश्रमाणा। दोषाः।

वस्तोः। उषसः। जरयंतीः।

मि॒नाति॑। श्रियं॑। ज॒रि॒मा। त॒नूनां॑।
अपि॑। ऊं॒ इति॑। नु। पत्नीः॑। वृष॑णः। ज॒ग॒म्युः ॥१॥

सायण भाष्य –

हे अगस्त्य अहं लोपामुद्रा पूर्वीः शरदः पुरातनानसंख्यातान्संवत्सरान् दोषा रात्रीर्वस्तोरहानि तथा देहं जरयंतीरुषस्र उषःकालांश्च॥ सर्वत्रात्यंतकालसंयोगे द्वितीया॥ अद्यतनकालपर्यन्तं बहुसंवत्सरं कात्स्र्न्येन त्वच्छुश्रूषया शश्रमाणा श्रांताभूवं। इदानीं तु जरिमा जरा तनूनामंगानां श्रियं सौंदर्यं मिनाति। हिनस्ति। एवमपि नानुगृह्णासीत्यर्थः। अप्यू नु। अपिः संभावनायां। उ इत्यवधारणे। न्विति वितर्के। इदानीमपि किं संभावनीयं। लोके हि पत्नीः स्त्रियो वृषणः सेक्तारः पुरुषा जगम्युः। गच्छेयुः। संभोगं कुर्युः। अतो मां किमित्यवमन्यसे। इदानीमपि वा संभावयेत्यर्थः॥

अन्वयः –

अहं पूर्वी शरदः दोषाः वस्तोः जरयन्तीः उषसः शश्रमाणा अपि आ तनूनाम् जरिमा श्रियं मिनाति वृषणः पत्नीः नु जगम्युः।

हिन्दी अनुवाद –

(अहं) मैं लोपामुद्रा नाम की ऋषिका ब्रह्मवादिनी (पूर्वीः) पहले बीती हुई अनेक (शरदः) शरद् ऋतुओं अर्थात् वर्षों तक (दोषाः) रात्रियों और (वस्तोः) दिनों तक (जरयन्तीः) जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त करती हुई (उषसः) प्रभात बेलाओं में (शश्रमाणा)तप एवं श्रम करती हुई (अपि च) और भी (तनूनां) शरीरों की (जरिमा) जीर्ण अवस्था के काल की (श्रियं) सौन्दर्य को (मिनाति) प्राप्त होती हूं। (वृषणः) वीर्यशाली पुरुष (पत्नीः) पत्नियों को (नु) निश्चय से (जगम्युः) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ -

स्त्रियां विवाह होने के बाद पहले अनेक वर्षों तक दिन और रात प्रात:काल से लेकर श्रम करती हुई जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त करती हैं। अपने पति की सेवा और घर के कार्यों को करते हुए उनके शरीर जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, उनके शरीर का सौन्दर्य जीर्ण हो जाता है। तब उनके वीर्यशाली पति अपनी उन पत्नियों को प्राप्त करते हैं।

पत्नियों को चाहिये कि वे दिन-रात प्रात:काल से ही अनेक वर्षों तक पति की सेवा करती रहें, जब उनके शरीर जीर्ण-शीर्ण हो जावें, तभी उनके वीर्यशाली पति उनको प्राप्त करने में सक्षम होते हैं॥१॥

संहिता पाठ -

सा तमेवाह॥

ये चि॒द्धि पूर्व॑ ऋ॒त॒साप॒ आस॑न्त्सा॒कं दे॒वेभि॒रव॑दनृ॒तानि॑।

ते चि॒दवा॑सुर्न॒ह्यंत॑मा॒पुः समू॑ नु पत्नी॒र्वृष॑भिर्जगम्युः ॥२॥

पद पाठ -

ये। चि॒त्। हि। पूर्वे॑। ऋ॒त॒ऽसापः॑। आस॑न्।

सा॒कं। दे॒वेभिः॑। अव॑दन्। ऋ॒तानि॑।

ते। चि॒त्। अव॑। असुः॒। न॒हि। अंतं॑। आ॒पुः।

सं। ऊं॒ इति॑। नु। पत्नीः॑। वृष॑ऽभिः। ज॒ग॒म्युः॥२॥

सायण भाष्य -

हे पतेऽगस्त्य ये चिद्धि येऽपि तु पूर्वे पुरातना ऋतसापः सत्यस्यापयितारो व्याप्नुवाना महर्षय आसन् ते देवेभिर्देवैः साकं सहितानि सत्यवाक्यान्यवदन्। वदति। ये महत्तपो यज्ञं वानुतिष्ठंति ये च देववाक्यानि

देवस्मृतिरूपाणि वदंति ते चित्। चिदप्यर्थे। चे चिदवासुः। अवक्षिपंति रेतः॥ स्यतिरुपसृष्टो विमोचने वर्तते॥ ते नह्यंतमापुः। नहि ब्रह्मचर्यादिरंतं प्राप्नुवन्। ब्रह्मचर्यमनिषिद्धर्तुकालगमनमपि कुर्वंतीत्यर्थः। तथा पत्नीः पत्न्यश्च तपस्यमाना वृषभिर्भोगवर्षकैः पतिभिः सह समू नु जगम्युः। उ न्विति पूरणौ। संगच्छेरन्। अतस्त्वं कथं मां नानुभवसीत्यर्थः॥

अन्वय -

ये चित् हि ऋतसापः पूर्वे देवेभिः साकम् ऋतानि अवदन् ते चित् हि आसन् नु पत्नीः वृषभिः सम् जगम्युः अवासुः न अन्तम् आपुः।

हिन्दी अनुवाद-

(ये चित्) जो भी (हि) निश्चय से (ऋतसापः) सत्य व्यवहार में व्यापक रूप से सबको व्याप्त करने वाले (पूर्वे) पूर्व काल के (देवेभिः) देवताओं के (साकम्) साथ (ऋतानि) सत्य व्यवहारों को (अवदन्) कहते (आसन्) रहे थे, (ते चित्) वे भी (नु) शीघ्र ही (अव असुः) अपने दोषों को दूर करें और वृषभिः वीर्यशाली पुरुष (पत्नीः) अपनी पत्नियों को (सम् सगम्युः) निरन्तर प्राप्त होंवे, वे (अन्तम्) अन्त को विनाश को (न आपुः) नहीं प्राप्त होते हैं।

भावार्थ -

ऋषिका लोपामुद्रा कहती हैं जो पुरुष अपने पहले के विद्वान जनों के साथ सत्य व्यवहारों को कहते थे, वे अपने दोषों को दूर करके अपनी पत्नियों को प्राप्त करते हैं, वे कभी विनाश को प्राप्त नहीं करते।

पुरुष को मिथ्या आचरण करने वाले पुरुष का साथ नहीं करना चाहिये। उसे असत्य व्यवहार, दुराचरण व्यभिचार आदि दोषों को त्याग देना चाहिये। तभी वह सच्चरित्र सेवा करने वाली पत्नी को प्राप्त करता है और विनाश को प्राप्त नहीं होता ॥ २॥

संहिता पाठ –

अगस्त्यस्तामाह ॥

न मृषा श्रांतं यदवंति देवा विश्वा इत्स्पृधों अभ्यंश्नवाव।

जयावेदत्र शतनींथमाजिं यत्सम्यंचा मिथुनावभ्यजाव॥३॥

पद पाठ–

न। मृषा। श्रांतं। यत्। अवंति। देवाः।

विश्वाः। इत्। स्पृधः। अभि। अश्नवाव।

जयाव। इत्। अत्र। शतऽनींथं। आजिं।

यत्। सम्यंचा। मिथुनौ। अभि। अजाव ॥३॥

सायण भाष्य –

भोः पत्नि त्वया मया न मृषा श्रांतं। व्यर्थं नैव खिन्नमावाभ्यां। यद्यस्माद्देवा अवंति रक्षंति तपोभिः प्रीता देवाः। विश्वाः सर्वाः स्पृधोऽभ्यश्नवाव। अभितो व्याप्नुयाव। अत्रास्मिन्संसारे शतनीथमपरिमित-भोगप्राप्तिसाधनमाजिं प्राप्तिं परस्परं जयाव। जयलक्षणं सुरतसंग्रामं वा जयाव। यद्यस्मात्सम्यंचा सम्यक्परस्परं गच्छतौ प्रजयंतो वा मिथुना मिथुनौ स्त्रीपुरुषरूपौ संतावभ्यजाव। त्वं चाहमपि परस्परमभिजयावेत्येवं तयोक्तं संभोगं संभावयामास॥

अन्वय –

देवा यत् अत्र मृषा श्रान्तम् न अवन्ति, विश्वा इत् स्पृधः अभि अश्नवाव यत् सम्यञ्चा मिथुनौ अभि अजाव शतनीथम् आजिम् जयाव इत्।

हिन्दी अनुवाद –

(देवा) विद्वद्‌जन (यत्) जिस कारण से (अत्र) इस संसार में (मृषा) मिथ्या ही (श्रान्तम्) थकावट या खेद का अनुभव करते हुए (न अवन्ति) रक्षा नहीं करते हैं और (विश्वा इत्) सभी (स्पृधः) स्पर्धाओं को (अभि अश्नवाव) सभी ओर से सहन करते हैं और (यत्) जो (सम्यञ्चा) एक दूसरे की ओर अभिमुख होते हुए (मिथुनौ) परस्पर पति-पत्नी भाव से (अभि अजाव) संयुक्त होते हैं (शतनीथम्) सैकड़ों प्रकार से प्राप्त होने वाले (आजिम्) सूरतरूपी संग्राम यज्ञ को (जयाव इव) जीतते ही हैं।

भावार्थ –

विद्वान जन इस संसार में व्यर्थ ही अपने मूढ़ शिष्यों का अध्यापन करते हैं। वे व्यर्थ ही सब प्रकार की स्पर्धाओं को करते हैं। वे स्त्री-पुरुष भाव से संयुक्त होते हैं और प्रेम व्यवहार करके सूरतरूपी संग्राम में विजय प्राप्त करते हैं ।।३।।

संहिता पाठ–

अथ चतुर्थ्याप्यगस्त्य आह।।

नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित्।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसंतं।।४।।

पद पाठ –

नदस्य। मा। रुधतः। कामः। आ। अगन्।
इतः आऽजातः। अमुतः। कुतः। चित्।
लोपामुद्रा। वृषणं। निः। रिणाति।
धीरं। अधीरा। धयति। श्वसंतं।।४।।

सायण भाष्य –

हे जाये नदस्य नदनस्य जपशब्दयितुर्जपाध्ययनकर्तृ रुधतो रेतो निरोद्धुर्ब्रह्मचर्यमास्थितस्य।। उभे कर्मणि षष्ठ्यौ।। उक्तलक्षणं मां काम आगन्। आगमत्। नदनस्य मा रुधतः काम आगमदिति निरुक्तं। ४.२। कस्य हेतोरिति उच्यते। इतस्त्वत्संगमनिमित्तात् तथामुतो वसंतादिकालात् कुतश्चित्कारणादाजातः सर्वत उत्पन्नः। यद्वा। इत एतल्लोकजनितादमुतो लोकांतरजनिताद्वा कुतश्चिन्निमित्तात्कामात्। कथमिति उच्यते। इयं लोपामुद्रा वृषणं रेतसः प्रवर्तकं मां नी रिणाति। नितरां गच्छतु। किंच धीरं धीमंतं नियमादविचालिनं श्वसंतं महाप्राणं महाबलमधीरा कातरैषा योषिद्धयति उपभुंक्तां।।

अथानयोर्दपत्योः संभोगसंलापं श्रुत्वा तत्प्रायश्चितं चिकीर्षुरुत्तराभ्यामाह। अनयोर्विनियोगः शौनकेनोक्तेः। इमं नु सोममित्येते द्वे ऋचौ प्रयतो जपन्। सर्वान्कामानवाप्रीति पापेभ्यश्च प्रमुच्यते। ऋग्विं.१.२६। इति।।

अन्वय–

इतः अमुतः कुतश्चित् मे कामः आजातः। रुधतः नदस्य मा आगमन्। अधीरा लोपामुद्रा वृषणं धीरं श्वसन्तम् नी रिणाति धयति।

हिन्दी अनुवाद–

(इतः) इधर से अथवा (अमुतः) उधर से अथवा (कुतश्चित्) कहीं से भी (मे)मुझ लोपामुद्रा में (कामः) कामभावना या पति से संयोग की कामना (आजातः) आकर उत्पन्न हो गई है। (रु धतः) वीर्य को रोकते हुए और (नदस्य) अव्यक्त शब्द करते हुए काम भावना से ग्रस्त पुरुष में (आगमन्) वह वासना आ गई है। (अधीरा) धैर्य से रहित (लोपामुद्रा) लोपामुद्रा नाम की रमणी

लोपा अपगता मुद्रा धैर्य धारण शक्तिः यास्याः सा। (वृषणम्) वीर्यशाली और (धीरम्) धैर्य धारण करने वाले (श्वसन्तं)गहरी श्वांस लेने वाले युवक अगस्त्य को (नी रिणति) निरन्तर प्राप्त होती है और (धयति) समागम भी करती है।

भावार्थ-

जब स्त्री और पुरुष में काम-भावना का संचार होता है, तभी वे परस्पर एक दूसरे को प्राप्त करते हैं और समागम का सुख पाते हैं ।।४।।

संहिता-पाठ-

इमं नु सोममंतितो हृत्सु पीतमुपं ब्रुवे।

यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ।।५।।

पद पाठ -

इमं। नु। सोमं। अंतितः।

हृत्ऽसु। पीतं। उपं। ब्रुवे।

यत्। सीं। आगः। चकृम। तत्। सु।

मृळतु। पुलुऽकामः। हि। मर्त्यः ।। ५।।

सायण भाष्य-

.........उपेत्य मनसा प्राप्य प्रार्थयते। किं ब्रवीति उच्यते। यदागो गुर्वोः कामप्रलापश्रवणविषयं पापं चकृम कृतवंतो वयं तत्स्मादागसः स सोमः सम्यग्मृळतु। सुखयतु। पापजनितदुःखं मा करोत्वित्यर्थः। महत्पापनुभुज्यमानं प्रार्थनया कथं लुप्यत इति अत आह। हि यस्मान्मर्त्यो मनुष्यः पुलुकामो बहुकामनावान्। अल्पेनैव कर्मणा

बहुकामानाकालयति। यस्मादेवं तस्मात्परिहरेत्यर्थः। यद्वा। अयमपवर्जनीयतया प्राप्यत इवेत्याह। पुरुकामो हि खलु मर्त्यः कामहतः सन् कामेन निरुद्ध एव वर्तते। अतस्तयोरुत्सेकोऽयुक्तः तच्शब्दश्रवणदोषोऽपि प्रामादिकोऽस्माकं प्राप्तेन सोमेन परिहर्तव्य इत्यर्थः। यद्वा। अयं मंत्रश्चंद्रपरो व्याख्येयो मनसोऽभिमानित्वाच्च तस्य पापस्यापि मनस्येव संभावितत्वात्। अस्मिन्पक्षे हृत्सु पीतं हृदयस्थितमित्यर्थः शिष्टं स्पष्टं॥

अन्वय-

इयं मत् हृत्सु पीतम् सोमम् उपब्रुवे पुलुकामः हि सु मृळतु यत् आगः चकृम तत् न सीम् अंतितः।

हिन्दी अनुवाद-

(इमं) इस (यत्) जिस (हृत्सु) हृदयों में (पीतम्) पिये गए (सोमम्) सोम नामक औषधियों के रस का (उपब्रुवे) मैं उपदेश कर रहा हँ, उसका (पुलुकामः) बहुत अधिक कामना करता हुआ (मर्त्यः) मनुष्य (हि) निश्चय से (सुमुळतु) सुख पूर्वक संयोग करे। (तत्) उसको (नु) शीघ्र ही (सीम्) सब ओर (अन्तितः) समीप से अंत कर दें, छोड़ दें।

भावार्थ-

सोम रस आदि महोषधियों के रस का पान करने से सब कामनाएं पूरी होती है और शरीर बलिष्ठ होते हैं सब अपराध रूप पाप अन्तिम रूप से दूर हो जाते हैं ॥ ५॥

संहिता पाठ -

अथ विनियुक्तयोर्मध्ये द्वितीयया सूक्ते षष्ठ्यंतिवास्याह॥

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥६॥

पद पाठ –

अगस्त्यः। खनमानः। खनित्रैः।
प्रऽजां। अपत्यं। बलं। इच्छमानः।
उभौ। वर्णौ। ऋषिः। उग्रः। पुपोष।
सत्याः। देवेषु। आऽशिषः। जगाम ॥६॥

सायण भाष्य –

अयमगस्त्यो मद्गुरुः खनित्रैः फलस्योत्पादनसाधनैर्यज्ञस्तोत्रादिभिः खनमानः फलमभिमतमुत्पादयन प्रजां प्रकर्षेण पुनःपुनर्जायमानमपत्यं कुलस्यापतनसाधनं पुत्रादिकं बलं चेच्छमानः सन्। यद्वा। प्रजां भृत्यादिरूपां चेच्छन्। ऋषिरतींद्रियद्रष्टा महानुभाव उग्र उद्गूर्णः संसारे संचरन्नप्यपापः सन्नुभौ वर्णौ वर्णनीयावाकारौ कामं च तपश्च पुपोष। सत्या आशिषो देवेषु देवेभ्यो जगाम। प्राप्तवान्। यतोऽयं महानुभावस्तस्मादस्मान्पातीत्यर्थः।।

अन्वय –

खनित्रैः खनमानः प्रजाम् अपत्यम् बलम् इच्छमानः अगस्त्यः रुग्रः ऋषिः उभौ वर्णौ, पुपोष, देवेषु सत्याः आशिषः जगाम।

हिन्दी अनुवाद –

(खनित्रैः) भूमि को खोदने वाले फावड़े आदि उपकरणों के द्वारा (खनमानः) भूमि को खोदता हुआ कृषि आदि कार्यों को करके अनाज को

प्राप्त करता हुआ और इस प्रकार परिश्रम करके (प्रजाम्) प्रकर्ष रूप से पुनः-पुनः उत्पन्न होते हुए (अपत्यम्) सन्तान को और (बलम्) बल की सामर्थ्य की (इच्छमानः) इच्छा करता हुआ (उग्रः) तेजस्वी शक्तिशाली (ऋषिः) वेदार्थ को जानने वाला अतीन्द्रिय पदार्थ का द्रष्टा (अगस्त्यः) अपराधों पापों रहित अगस्त्य (पुपोष) पुष्ट होता है और (देवेषु) विद्वज्जनों के मध्य (सत्या) फलीभूत होने वाले सत्य (आशिषः) आशीर्वादों को (जगाम) प्राप्त होता है।

भावार्थ –

मनुष्य का कर्तव्य यह है कि वह खेती आदि कार्यों को करके प्रभूत अन्नों को प्राप्त करे, जिससे उसकी सन्तानें निरन्तर बनी रहें और उसके परिवार में सन्तति बनी रहे तथा सभी स्वस्थ और बल सम्पन्न होवें। वह तेजस्वी, प्रचण्ड, बलशाली और पुष्ट होवें तथा विद्वज्जनों के सत्य आशीर्वाद उसको प्राप्त होते हैं।

सायण का कथन है कि इस सूक्त की पहली और दूसरी ऋचा के द्वारा लोपामुद्रा अगस्त्य से रति की प्रार्थना करती है। तीसरी और चौथी ऋचा द्वारा अगस्त्य उसको उत्तर देता है। उन पति पत्नी के संवाद को सुनकर, अभिप्राय को समझकर अगस्त्य का शिष्य उनको उत्तर देता है।

ऋषि दयानन्द इस सूक्त का आदर्श विद्वान पति पत्नी के रूप में दर्शन करते है। परिवार में पत्नी का कर्त्तव्य है कि परिवार में पति की दिन और रात तक अनेक वर्षों तक सेवा करती रहे।

पति-पत्नी सद्व्यवहार करते हुए एक दूसरे के साथ सुखी रहते हैं, एक दूसरे के दोषों को दूर करते है और उनके दुःखों का इससे अन्त होता है। वीर्यशाली पुरुषों का संगम सदाचारिणी स्त्रियों को प्राप्त होता है। स्त्री पुरुष दोनों को मिथ्या आचरण को त्याग देना चाहिए और गृहस्थ आश्रम

को उत्कर्ष करने वाला आचरण करना चाहिए।

कामना करने वाले पुरुष को कामना करने वाली स्त्री से संगम करना चाहिए। उत्तम औषधियों का रसपान करने वाले स्त्री-पुरुष बलिष्ठ होते हैं। कुपथ्य आचरण करने से वे रोगों से पीड़ित होते हैं।

परिश्रम करके धनोपार्जन करके गृहस्थ जनों के प्रजा, सन्तान और बल की वृद्धि होती है। उनको पोषण प्राप्त होता है और देवताओं का आशीर्वाद मिलता है ।

****

२. रोमशा

प्रथम मण्डल के सूक्त १२६ का मन्त्र ६-७

ऋषि - कक्षीवान्, भावहव्य, रोमशा।
देवता - भावयव्य, रोमशा
छन्दः - अनुष्टुप्

सूक्त की सायणकृत भूमिका :

अमन्दानिति षष्ठं सूक्तं सप्तेत्यनुवर्तनात्। आदितः पंचानां कक्षीवान् ऋषिः षष्ठ्या भावयव्यः सप्तम्या रोमशा नाम ब्रह्मवादिनी। आदितः पंचानां भावयव्यस्य स्तुतिरूपत्वात् स एव देवता या तेनोच्यते। अनु० २.५। इति न्यायात्। अन्त्ययोः षष्ठीसप्तभ्योस्तु भावयव्यरोमशयोः संवादः। षष्ठ्याः भावयव्यः सप्तभ्याः रोमशा। यद्यपि स्वनयेन दत्ता इति श्रूयमाणत्वात् तस्यैव स्तुत्या भाव्यं तथापि पितृपुत्रयोरभेदात् रुद्राक्ष इतिवत् पितृनाम्ना व्यवहर्तु शक्यत्वात् प्रथमायामृचि भाव्यस्येत्युक्तत्वात् भावयव्यं तुष्टावेत्येस्दविरुद्धं पूर्वसूक्त एव। आदित पञ्च त्रिष्टुभः। अन्त्ये अनुष्टुभौ। तथा चानुक्रान्तं। अमन्दानिति कक्षीवान् दानतुष्टः पंचभिर्भावयव्यं तुष्टावान्त्ये चानुष्टुभौ भावयव्यरोमशयोर्दम्यत्योः संवाद इति। उक्तो विनियोगः।

संहिता पाठ -

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जंगहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥६॥

पद पाठ-

आऽगधिता। परिऽगधिता। या। कशीकाऽइव। जंगहे।

ददाति। मह्यं। यादुरी। याशूनां। भोज्यां। शता ॥६॥

सायण भाष्य -

संभोगाय प्रार्थितो भावयव्य: स्वभार्यां रोमशामप्रौढेति बुद्ध्या परिहसन्नाह। भोज्या भोगयोग्यैषागधिता आ समंताद्गृहीता स्वीकृता। तथा परिगधिता परितो गृहीता। आदरातिशयाय पुनर्वचनं। मध्यं गृह्णातेरिति यास्क:। नि० ५.१५। यद्वा। आगधिता आ समंतान्मिश्रयंती। आंतरं प्रजननेन बाह्यं भुजादिभिरित्यर्थ:। गध्यतिर्मिश्रीभावकर्मेति यास्क:। नि० ५.१५। पूर्वस्मिन् पक्षे पुरुषस्य प्राधान्यं उत्तरस्मिंस्तु योषित इति भेद:। कीदृशी सा। या जंगहे अत्यर्थं गृह्णाति कदाचिदपि न मुंचति। अत्यागे दृष्टांत:। कशीकेव। कशीका नाम सूतवत्सा नकुली। सा यथा पत्या सह चिरकालं क्रीडति न कदाचिदपि विमुंचति तथैषापि। किंच भोज्यैषा यादुरी। यादुरित्युदकनाम। रेतोलक्षणमुदकं प्रभूतं ददातीति यादुरी। बहुरेतोयुक्तेत्यर्थ:। तादृशी सती याशूनां संभोगानां। यश इति प्रजनननाम। तत्संबंधीनि कर्माणि याशूनि भोगा:। तेषां शता शतान्यसंख्यातानि मह्यं ददाति॥

अन्वय -

आगधिता परिगधिता या जङ्गहे कशीका इव याशूनाम् यादुरी शता भोज्या मह्यं ददाति।

हिन्दी अनुवाद -

(आगधिता) अच्छे प्रकार से सब ओर से ग्रहण की गई और (परिगधिता) सब ओर से ग्रहण की गई, (या) जो (जङ्गहे) कभी न छोड़ने

वाली अच्छी पकड़ वाली शिव गुणों सहित नीति (कशीका) कृपाण को तारणा देने वाली चाबुक के समान (याशूनाम्) उत्तम यज्ञ करने वालों की (यादुरी) प्रयत्नशील नीति (शता) सैकड़ों (भोज्या) उपभोग करने योग्य वस्तुओं को (मह्यं) मुझको प्रजा जन को (ददाति) प्रदान करती है।

भावार्थ -

इस मंत्र में कहा गया है कि राजा की नीति उत्तम गुणों से युक्त होती है व चाबुक के समान सबका शासन करती है। उस नीति से प्रजाजनों को सभी प्रकार के भोग्य पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥१॥

संहिता पाठ -

रोमशा नाम बृहस्पतेः पुत्री ब्रह्मवादिनी परिहसंतं स्वपतिं प्रत्याह॥

उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः।

सर्वाहमस्मि रोमशा गंधारीणामिवाविका ॥ ७॥

पद पाठ-

उपऽउप। मे। परा। मृश। मा। मे। दभ्राणि। मन्यथाः।

सर्वा। अहं। अस्मि। रोमशा। गंधारीणांऽइव। अविका ॥ ७॥

सायण भाष्य -

भो पते मे मां। द्वितीयार्थे चतुर्थी। उपोप। द्वितीय उपशब्दः पादपूरणः। उपेत्य परा मृश। सम्यक् स्पृश। भोगयोग्यामवगच्छेत्यर्थः। यद्वा। मे मम गोपनीयमंगमुपोप परा मृश। अत्यंतमांतरं स्पृश। परामर्शाभावशंकां निवारयति। मे मदंगानि रोमाणि दभ्राणि मा मन्यथाः। अल्पानि मा बुध्यस्व। दभ्रमर्भकमित्यल्पस्येति दभ्रं दभ्रोतेरिति यास्कः। नि० ३.२०। अदभ्रत्वमेव

विशदयति। अहं रोमशा बहुरोमयुक्तास्मि। यतोऽहमीदृशी अतः सर्वा संपूर्णावयवास्मि। रोमशत्वे दृष्टांतः। गंधारीणामविकेव। गंधारा देशाः। तेषां संबंधिन्यविजातिरिव। तद्देशस्था अवयो मेषा यथा रोमशाः तथाहमस्मि। यद्वा। गंधारीणां गर्भधारिणीनां स्त्रीणामविकात्यर्थं तर्पयंती योनिरिव। तासामा प्रसवं रोमादिविकर्तनस्य शास्त्रे निषिद्धत्वाद्योनी रोमशा भवति। अतः सोपमीयते। यतोऽहमीदृशी अतो मामप्रौढ़ा मावबुध्यस्वेत्यर्थः॥

अन्वय –

गन्धारीणाम् इन अविका रोमशा सर्वा अहम् अस्मि मे उपपरामृश मे दभ्राणि मा मन्यथा।

हिन्दी अनुवाद –

(गन्धारीणाम्) राज्य का धारण करने वाली रानियों में (इव) जिस प्रकार से (अविका) रक्षा करने वाली रक्षिका होती है, उसी प्रकार (रोमशा) प्रशस्त रोमों वाली (सर्वा) सर्वगुणसम्पन्न (अहम्) मैं (अस्मि) हूं। हे राजन् इस प्रकार से (मे) मेरे गुणों के सम्बन्ध में आप (मे) मेरे (दभ्राणि) कामों को छोटा (मा मन्यथा) मत मानिए।

भावार्थ –

रानी राजा से कहती है कि जिस प्रकार पुरुषों के प्रति न्याय की विचार करते हैं, उसी प्रकार मैं भी स्त्रियों के विचार करने वाली हूँ। मैं आपसे किसी प्रकार कम नहीं हूँ।

विशेष –

ऋषि दयानन्द ने इस सूक्त का राजनीतिक अर्थ देते हुए राजा की न्यायपद्धति पर प्रकाश डाला और रोमशा को विशेषण मानकर अर्थ किया है–

प्रशस्त रोमों वाली अर्थात् कार्यों को करने वाली रानी। परन्तु सायण यहां रोमशा का व्यक्तिवाचक अर्थ करते हैं। रोमशा प्रशस्त रोमों वाली रोमशा नाम की ऋषिका है जो मन्त्रद्रष्ट्री है। वे इन दोनों मन्त्रों की द्रष्टा ऋषिका है। अत: इन मन्त्रों का अर्थ होगा-

संयोग करने के लिए प्रार्थना करती हुई पत्नी रोमशा का परिहास करते हुए ऋषि भावयव्य कहते हैं-

(भोज्या) भोग करने के लिये (आगधिता) सब प्रकार से स्वीकृत की गई और (परिगधिता) सब ओर से ग्रहण की गई (जगंहे) पकड़ में (कंशीका)बच्चा उत्पन्न करने वाली नेवली समान (सूतवत्सा) जिस प्रकार प्रति के साथ देर तक क्रीड़ा करती है, उसको छोड़ती नहीं, उसी प्रकार (मादुरी) बहुत अधिक वीर्य से युक्त (याशूनां) सम्भोगों को (मह्यं ददाति) मुझे प्रदान करती है।

तब रोमशा कहती है- (उप उप मे परामृश) मेरे समीप आओ, आओ, मेरे गोपनीय अङ्गों का स्पर्श करो, मुझे भोग करने के योग्य समझो। मैं (गान्धारीणां) न गर्भ धारण करने वाली स्त्रियों में (अविका इव) अधिक तृप्त करने वाली योनि के समान (रोमशा) रोमशा नाम की ऋषिका तुमको सब प्रकार से तृप्त करने वाली हूँ ॥२॥

****

३. नद्यः

तृतीय मण्डल के सूक्त ३३ का मन्त्र १-१३

ऋषि - विश्वामित्र-नद्यः
देवता - इन्द्रः
छन्द - त्रिष्टुप्, अन्तिम मन्त्र अनुष्टुप्।

सूक्त की सायणकृत भूमिका -

प्र पर्वतानामिति त्रयोदशर्चं चतुर्थं सूक्तं। अत्रेयमनुक्रमणिका। प्र पर्वतानां सप्तीनां संवादो नदीभिर्विश्वामित्रस्योत्तितीर्षोस्तत्र नदीवाक्यं चतुर्थीषष्ठ्यष्टमीदशम्यः षष्ठीसप्तम्योस्त्विंद्रस्तुतिरंत्यानुष्टुविति। अत्र चतुर्थीषष्ठ्यष्टमीदशमीनां नदीवाक्यत्वान्नद्य एव ऋषयः शिष्टानां विश्वामित्रवाक्यत्वात्स एव ऋषिः। अंत्यानुष्टुप् शिष्टास्त्रिष्टुभः। इंद्रो देवता। यद्यपि षष्ठ्यां सप्तम्यां च विश्वामित्रो नद्यश्च स्तूयंते तथापींद्र एव देवता।। सूक्तविनियोगो लैंगिकः।। पुरा किल विश्वामित्रः पैजवनस्य सुदासो राज्ञः पुरोहितो बभूव। स च पौरोहित्येन लब्धधनः सर्वं धनमादाय विपाट्छुतुद्र्योः संभेदमाययावनुययुरितरे। अथोत्तितीर्षुर्विश्वामित्रोऽगाधजले ते नद्यौ दृष्ट्वोत्तरणार्थमाद्याभिस्तिसृभिस्तुष्टाव।।

संहिता पाठ -

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने।
गावेवमशुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ।।१।।

पद पाठ–

प्र। पर्वतानां। उशती इति। उपऽस्थात्।
अश्वे इवेत्यश्वेऽइव। विसिते इति विऽसिते हासमाने इति।
गावाऽइव शुभ्रेइति। मातरा। रिहाणे इति।
विऽपाद्। शुतुद्री। पयसा। जवेते इति ॥१॥

सायण भाष्य –

पर्वतानां गिरीणां शैलानामुपस्थादुत्संगान्निर्गत्योशती समुद्रगमनं कामयमाने। गमने दृष्टांत:। अश्वे इव। यथा विषिते मंदुरातो विमुक्ते हासमाने अन्योन्यजवेन स्पर्धमाने। यद्वा हृष्यंत्यावश्वे इव वडवे इव त्वरया गच्छंत्यौ परस्परं हृष्यंत्यौ। तथा गावेव शुभ्रे। यथा द्वौ गावौ शोभमानौ वर्तेते तद्वच्छुभ्रे शोभमाने। किंच मातरा। यथा मातरौ धेनू रिहाणे। अंतर्णीतसनर्थो लिटि:। वत्सं जिह्वया लेढुमिच्छंत्यौ शीघ्रं गच्छतस्तद्वत्समुद्रं गंतुं जवाद्गच्छंत्यौ पयसा संयुक्ते विपाट्। कूलविपाटनात् क्पिाशनाद्वा विमोचनाद्वा विपाट्। शुतुद्री। शु क्षिप्र तु तुन्ना तुन्नेव द्रवति गच्छतीति शुतुद्री। एतन्नामके नद्यौ प जवेते समुद्रं प्रति शीघ्रं गच्छत: अत्र निरुक्तं। पर्वतानामुपस्थादुपस्थानादुशत्यौ कामयमाने अश्वे इव विमुक्ते इति वा विषणे इति वा हासमाने हासति: स्पर्धायां हर्षमाणे वा गावाविव शुभ्रे शोभने मातरौ संरिहाणे विपाट्छुतुद्यौ पयसा प्रजवेते। नि० ९.३९। इति॥ उशती। वश कांतौ। अस्य शतुर्ङित्त्वाद्ग्रहिज्यावयीत्यादिना संप्रसारणं। विषिते। षिञ् बंधन इत्यस्य कर्मणि निष्ठा। संहितायां परिनिविभ्य: सेवसितसयसिवुसहेत्यादिना। पा० ८.३.७०। षत्वं। गतिरनंतर इति गते: प्रकृतिस्वर:। हासमाने हासति: स्पर्धाकर्मा हसे हसने वा। शानच्। तस्य लसार्वधातुकस्वरे कृते धातुस्वर:। रिहाणे। लिह आस्वादने।

स्वरितेत्त्वादुभयपदी। शानच्। अदादित्वाच्छपो लुक्। लकारस्य रेफश्छांदसः। रेफमवलंव्य णत्वं। चित्त्वांदंतोदात्तः। विपाट् पट गतौर पश बाधनस्पर्शनयोरिति वा ण्यंतावेती विपूर्वौ। शकारस्य व्रश्चादिना षत्वं। शुतुद्री। छांदसी रूपसिद्धिः। जवेते। जुङ्गतौ। भौवादिकः। ङित्त्वादात्मनेपदं। आतौ ङित्त इतीयादेशः। निघातः॥

अन्वय –

पर्वतानाम् उपस्थात् उशती विषिते अश्वे इव हासमाने शुभ्रे गावा इव मातरा रिहाणे विपाट् शुतुद्री पयसा जवेते।

हिन्दी अनुवाद –

(पर्वतानाम्) पर्वतों या मेघों के (उपस्थात्) गोदी से (उशती) गति की कामना करती हुई (विषिते इव) गुणयुक्त कर्मों से युक्त (अश्वे इव) घोड़ियों के समान (हासमाने) परस्पर प्रेम से हंसती हुई (शुभ्रे) शुभ्र वर्ण सम्पन्न (गावा इव) गौओं के समान (मातरा इव) माता के समान (रिहाणे) प्रिय को प्राप्त करने की इच्छा करती हुई चाटने की इच्छा करती हुई (विपाट्) व्यास नामक नदी अथवा विशेष प्रकार से चलने वाली (शुतुद्री) सतलुज नामक नदी अथवा शीघ्र दुःख नाशक उपदेशिका (पयसा) जल से भरी हुई अथवा विद्या और उपदेश देने में कुशल (जवेते) वेग से चलती है।

भावार्थ –

इस सूक्त में इस ऐतिहासिक तथ्य का संकेत है कि कभी महर्षि विश्वामित्र अपने शिष्यों के साथ व्यास और सतलुज नदियों के संगम पर नदियों को पार करने की इच्छा से आए। नदियों को प्रभूत जल से भरा देखकर पार करने की इच्छा से उन्होंने नदियों की स्तुति की। नदियों की

उपमा उन्होंने वेग से दौड़ती घोड़ियों और बछड़ों की ओर दौड़ती हुई दूध देने वाली गौओं से की है।

ऋषि दयानन्द ने इसका अर्थ शुभ्र वर्णों से सम्पन्न कन्याओं और स्त्रियों को उत्तम शिक्षा देने वाली शिक्षिकाओं के लिये किया है।।१।।

संहिता पाठ–

इंद्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः।

समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे।।२।।

पद पाठ –

इंद्रेषिते इतींद्रऽइषिते। प्रऽसवं। भिक्षमाणे इति।

अच्छ। समुद्रं। रथ्याऽइव। याथः।

समाराणे इति संऽआराणे। ऊर्मिऽभिः। पिन्वमाने इति।

अन्या। वां। अन्यां। अपि। एति। शुभ्रे इति ।।२।।

सायण भाष्य –

हे नद्यौ इंद्रेषिते इंद्रेण प्रेषिते प्रसवं तस्येंद्रस्यानुज्ञां भिक्षमाणे प्रार्थयमाने युवां समुद्रमच्छाभिमुख्येन याथः। गच्छथः। तत्र दृष्टांतः। रथ्येवेति। यथा रथिनौ लक्ष्यं देशमभिगच्छतस्तद्वत्। किं कुर्वत्यौ। समाराणे परस्परं संगच्छंत्यावूर्मिभिस्तरंगैः पिन्वमाने परिसरप्रदेशं संतर्पयंत्यौ शुभ्रे शोभमाने। युवां समुद्रं गच्छथ इति पूर्वेणान्वयः। तथा वां युवयोर्मध्येऽन्यैकान्यामपरां नदीमप्येति। अपिगच्छति। परस्परमैक्यमापद्यत इत्यर्थः।। इंद्रेषिते। इष गतावित्यस्य कर्मणि निष्ठायास्तीषसहेत्यादिना

इडागमः। तृतीया कर्मणीति पूर्वपदस्वरः। प्रसवं। षू प्रेरण इत्स्यात्। थाथादिस्वरः। भिक्षमाणे। भिक्ष याच्चायां। आत्मनेपदी। शानचो लसार्वधातुकस्वररेणानुदात्तत्वे धातुस्वरः। रथ्येव। रथस्येमौ। तस्येदमित्यर्थे रथाद्यदिति यत्प्रत्ययः। तित्स्वरितः। इवेन विभक्त्यलोपः। याथः। यातेर्लटि रूपं। समाराणे। ऋ गतावित्यस्य लिट्। संपूर्वस्यार्तेः समो गमीत्यादिनात्मनेपदत्वात्तस्य कानजादेशः। ऋच्छत्यृतामिति गुणः। पिन्वमाने। पिवि सेचने। भूवादिः। लसार्वधातुकस्वरेण शानचोऽनुदात्तत्वे धातुस्वरः॥

अन्वय –

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छ समुद्रम् रथ्या इव याथः। शुभ्रे समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने वाम् अन्या अन्याम् अपि एति।

हिन्दी अनुवाद –

(इन्द्रेषिते) इन्द्र या सूर्य के द्वारा प्रेरित की जाती हुई (प्रसवम्) अनुमति की, प्रेरणा की या ऐश्वर्य की (भिक्षमाणे) याचना करती हुई (अच्छ समुद्रम्) समुद्र की ओर सम्यक् प्रकार से (रथ्या इव) रथ में जोती जाती हुई घोड़ियों के समान (याथः) तुम जाती हो (शुभ्रे) शोभित होती हुई (समाराणे) परस्पर मिलती हुई (ऊर्मिभिः)लहरों के द्वारा (पिन्वमाने) तटीय प्रदेशों को सिंचित करती हुई (वाम्) तुम दोनों में से (अन्या) कोई एक (अन्याम्) दूसरी में (अप्येति) विलीन होती है, मिल जाती है।

भावार्थ –

नदियां वर्षा ऋतु द्वारा प्रेरित होती हैं और समुद्र की ओर गति करती हैं। वे परस्पर मिलकर तटीय प्रदेशों को सिंचित करती हैं और एक दूसरे

से मिल कर समुद्र में मिल जाती हैं।

ऋषि दयानन्द का कथन है कि इस मन्त्र में उपदेश दिया गया है कि उपदेश देने वाली शिक्षिकायें उत्तम विद्या के दान द्वारा सब स्त्रियों को शिक्षित करें और उनको गुण, कर्म और स्वभाव से सम्पन्न करें ॥२॥

संहिता पाठ –

अच्छा सिंधुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वी सुभगामगन्म।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरंती ॥३॥

पद-पाठ –

अच्छ। सिंधुं। मातृऽतमां। अयासं।
विऽपाशं। उर्वी। सुऽभगां अगन्म।
वत्संऽईव। मातरा। संरिहाणे इति संऽरिहाणे।
समानं। योनिं। अनु। संचरंती इति संऽचरंती ॥३॥

सायण भाष्य –

हे नद्यौ मातृतमामतिशयेन मातरं सिंधुं स्रवंतीं शुतुद्रीं त्वामच्छाभिमुख्येनायासं। विश्वामित्रोऽहं प्राप्तोऽभूवं उर्वी महतीं सुभगां सौभाग्यवतीं विपाशं त्वामगन्म। वयं प्राप्ताः स्मः। किं कुर्वत्यौ। मातरा मातरौ द्वे धेनू वत्समिव संरिहाणे। अंतर्णीतसनर्थो लिहिः। जिह्वया लेढुमिच्छंत्यौ यथा वत्समनुगच्छतस्तद्वत् समानमेकं योनिं स्थानं समुद्रमनु अभिलक्ष्य संचरंती सम्यक् चरंत्यौ। युवामयासिषमिति पूर्वेणान्वयः॥ अयासं। या प्रापण इत्यस्य रूपं। इडभावँछांदसः। अगन्म। गमेर्लङि बहुलं छंदसीति

शपो लुक। म्वोश्चेति मकारस्य नकार:। निघात:। संचरंती। चरतिर्गत्यर्थ:। तृतीयायुक्तत्वाभावादात्मनेपदाभाव:। शतुर्लसार्वधातुकस्वरेणानुदात्तत्वे कृते धातुस्वर:॥

अन्वय -

मातृतमाम् सिन्धुम् अच्छ अयासम् उर्वीम् विपाशम् सुभगाम् अगन्म मातरा वत्सम् इव संरिहाणे समानम् योनिम् अनु सञ्चरन्ती।

हिन्दी अनुवाद-

(मातृतमाम्) मैं अतिशयित मातृभाव को रखने वाली श्रेष्ठ माता (सिन्धुम् अच्छ) शुतुद्री नदी की ओर (अयासम्) आया हूँ। हम (उर्वीम्) विस्तृत और सुन्दर (विपाशम्) व्यास नदी की ओर (सुभगाम्) जो शोभन और सौभाग्य से परिपूर्ण है, (अगन्म) गए हैं। (मातरा) दो माताएं (वत्सम् इव) जिस प्रकार बछड़े की ओर (संरिहाणे) उनको चाटने की इच्छा करती हुई आस्वादन करने की इच्छा करती हुई (समानम्) एक ही (योनिम्) घर में (अनुसञ्चरन्ती) उसको लक्ष्य करके पीछे-पीछे चली जाती हैं।

भावार्थ -

जिस प्रकार माता के समान पालन करने वाली नदियां समुद्र को प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार हम बन्धनरहित विशाल सौभाग्य से युक्त शिक्षिका को प्राप्त होवें। अपने शिष्यों को (छात्राओं को) उत्तम शिक्षा का आस्वादन कराने वाली शिक्षिकाएं छात्राओं को शिक्षा देने के लिए एक ही घर में प्रवेश करती हैं।॥३॥

संहिता पाठ –

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरंती:।
न वर्तवे प्रसव: सर्गतक्त: किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ।।४।।

पद पाठ –

एना। वयं । पयसा । पिन्वमाना:।
अनु। योनिं। देवऽकृतं। चरंती:।
न । वर्तवे। प्रऽसव:। सर्गऽतक्त:।
किंऽयु:। विप्र: । नद्य:। जोहवीति ।।४।।

सायण भाष्य –

एवं स्तुते नद्यौ विश्वामित्रं प्रत्यूचतु:। एनैनेन पयसा पिन्वमाना: संतर्पयंत्यो देवकृतं देवेनेंद्रेण कृतं संदिष्टं योनिं स्थानं समुद्रमनु लक्षीकृत्य चरंतीर्गच्छंत्यो वयमास्महे। द्वयोर्बहुवचनं पूजार्थं। तासामस्माकं सर्गतक्त: सर्गे गमने प्रवृत्त: प्रसव उद्योगो न वर्त्तवे। निवर्तनाय न भवति। किंयु: किमिच्छन्नसौ विप्रो ब्राह्मणो नद्यो नदीरस्मान् जोहवीति। भृशमाह्वयति।। एना।। इदंशब्दस्य तृतीयाया एनादेश:। सुपां सुलुगिति तृतीयाया आजादेश:। ऊडिदमिति विभक्तेरुदात्तत्वं। पिन्वमाना:। पिवि सेचने। देवकृतं। तृतीया कर्मणीति पूर्वपदप्रकृतिस्वर:। वर्त्तवे। वृतु वर्तने। तुमर्थे तवेन्प्रत्यय:। नित्स्वर:। सर्गतक्त:। क्ते चेति पूर्वपदप्रकृतिस्वर:। किंयु:। किमिच्छन्। क्यचि मांताव्ययप्रतिषेध:। पा० ३.१.८.१। इति छांदसत्वादत्र प्रतिषेधो न भवतीति क्यच्। क्याच्छंदसीत्युप्रत्यय:। प्रत्ययस्वर:। नद्य:। छांदसो यणादेश:। जोहवीति। ह्वयो यङ्लुक्यभ्यस्तस्य चेति मंप्रसारणे कृते गुणो

यङ्लुकोरित्यभ्यासस्य गुणः। यङो वेतीडागमः। गुणः। निघातः॥

अन्वय –

एना पयसा पिन्वमानाः देवकृतम् योनिम् अनु चरन्तीः वयम् नद्यः सर्गतक्तः प्रसवः वर्त्तवे न। किंयुः विप्रः नद्यः जोहवीति।

हिन्दी अनुवाद –

(एना) इस (पयसा) जल से (पिन्वमानाः) सींची जाती हुई तथा (देवकृतम्) देवता इन्द्र के द्वारा बनाए गए (योनिम्) स्थान की (अनुचरन्तीः) ओर जाती हुई हम (नद्यः) नदियां(सर्गतक्तः) स्वाभाविक रूप से निष्पादित (प्रसवः) उत्पन्न जलधारा (वत्तवे) लौट जाने के लिए (न) नहीं होतीं (किंयुः) अपने से स्वयं क्या करने की इच्छा करने वाला (विप्रः) मेधावी बुद्धिमान ब्राह्मण ऋषि विश्वामित्र (नद्यः) नदियों का (जोहवीति) बार-बार आवाहन कर रहा है।

भावार्थ –

जल से भरी हुई नदियां अपने मार्ग पर देवकृत मार्ग से बहती जा रही हैं। इस प्रवाह को लौटाया नहीं जा सकता। बार-बार आवाहन करना उचित नहीं।

विद्वान गुरुओं और स्त्रियों के अंदर विद्या भरी होती है वे शिष्य-शिष्याओं का सर्वविध उपकार ही करते हैं। उनको रोकना उचित नहीं है।।४॥

संहिता पाठ –

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः।

प्र सिंधुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५॥

पद पाठ–

रमध्वं । मे । वचसे । सोम्याय।
ऋतऽवरीः। उप। मुहूर्तं। एवैः।
प्र। सिंधुं। अच्छ। बृहती। मनीषा।
अवस्युः। अह्वे। कुशिकस्य । सूनुः ।।५।।

सायण भाष्य –

विश्वामित्रो नदीः प्रति ब्रूते। ऋतावरीः। ऋतमुदकं। तद्वत्यो हे नद्यो यूयं मे विश्वामित्रस्य मम सोम्याय। उत्तीर्याहं सोमं संपादयामीत्येवं सोमसंपादिने। वचसे तदर्थमेवैः। पंचम्यर्थे तृतीया। शीघ्रगमनेभ्यो मुहुर्तं मुहुर्तमात्रमुप रमध्वं। उपपूर्वो रमिरुपसंहारे वर्तते। क्षणमात्रं शीघ्रगमनादुपरता भवत। सामान्येन नदीषूच्यमानासु समीहितं प्रयोजनमकुर्वतीषु पुरोवर्तिनीं श्रुतुद्रीं ब्रुते। कुशिकस्य राजर्षेः सूनुर्विश्वामिचोऽहं बृहती महत्या मनीषा मनीषया स्तुत्यावस्युरात्मनो रक्षणमिच्छन् सन् सिंधुं शुतुर्द्रीं त्वामच्छाभिमुख्येन प्राह्वे। प्रकर्षेणाह्वयामि। अत्र निरुक्तं। उपरमध्वं मे वचसे सोम्याय सोमसंपादिन ऋतावरीर्ऋतवत्य ऋत मित्युदकनाम प्रत्युतं भवति मुहूर्तमेवैरयनैरवनैर्वा। प्राभिह्वयामि सिंधुं बृहत्या महत्या मनीषया मनस ईषया स्तुत्या प्रज्ञया वावनाय कुशिकस्य सूनुः। कुशिको राजा वभूव। नि० २.२५। इति।। रमध्वं रमु उपरमे। उपपूर्वाद्रमतेर्विभाषाकर्मकात्। पा० १.३.८५। इत्यात्मनेपदं। ऋतावरीः। ऋतशब्दान्मत्वर्थे छंदसीवनिपाविति वनिप्। वनो र चेति ङीप् रेफश्चांतादेशः। वा छंदसीति सवर्णदीर्घः। आमंत्रितस्य पादादित्वात्षाष्ठिकमाद्युदात्तत्वं। एवैः। इण् गतौ। इण्शीङ्भ्यां वत्।

आर्धधातुकलक्षणो गुणः। नित्स्वरः। बृहती मनीषा। उभयत्र तृतीयायाः पूर्वसवर्णदीर्घः। अवस्युः। अवो रक्षणमिच्छन्। सुप आत्मनः क्यच्। नः क्य इति नकारांतस्य पदसंज्ञाया नियमितत्वादत्र सकारस्य रुर्न भवति। क्याच्छंदसीत्युप्रत्ययः। अह्वे। ह्वयतेर्लुङिसिच आत्मनेपदेष्वन्यतररस्यां। पा० ३.१.५४। इत्यङादेशः। गुणः। निघातः॥

अन्वय –

ऋतावरीः मे सोम्याय वचसे एवैः मुहूर्तम् उप रमध्वम्। कुशिकस्य सूनुः अहम् बृहती मनीषा मनीषाः अवस्युः सिन्धुम् प्रअच्छ अह्वे।

हिन्दी अनुवाद –

(ऋतावरीः) प्रचुर जल से पूर्ण हे पवित्र नदियो! (मे) मेरे (सोम्याय) सोम अर्थात् शांति गुण से युक्त (वचसे) वचन के लिये (एवैः) गतियों से, प्रवाहों से (मुहूर्तम्) कुछ मुहूर्तों के लिये (उपरमध्वम्) उपरत हो जाओ, रुक जाओ। (कुशिकस्य) विद्या के उत्कर्ष को प्राप्त विश्वामित्र ऋषि का (सूनुः) पुत्र में राजर्षि (वृहती) विपुल (मनीषा) बुद्धियों से, स्तुतियों से (अवस्युः) रक्षा को प्राप्त करने का इच्छुक (सिन्धुम्) बड़ी नदी शुतुद्रु की (अच्छा) और अभिमुख होकर (प्र अच्छ) प्रकट रूप से (अह्वे)आह्वान कर रहा हूँ।

भावार्थ–

जैसे नदियां जल से भरी होती हैं और वे समुद की ओर जाती हैं, उनको पार करने का इच्छुक ऋषि बड़ी नदी शुतुद्री का आह्वान करते हैं।

मनुष्य योग विद्या और विशिष्ट शिक्षा को प्राप्त करने के इच्छुक होकर विशिष्ट शिक्षा सम्पन्न ऋषियों को प्राप्त करते हैं॥५॥

संहिता पाठ –

इंद्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनां।

देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६॥

पद पाठ–

इंद्रः। अस्मान् । अरदत् । बज्रऽबाहुः।

अप । अहन्। वृत्रं। परिऽधिं। नदीनां।

देवः। अनयत् । सविता । सुऽपाणिः।

तस्य । वयं । प्रऽसवे। यामः । उर्वीः ॥ ६॥

सायण भाष्य –

नद्यः प्रत्यूचुः। हे विश्वामित्र वज्रबाहुः। वज्रयुक्तो बाहुर्यस्यासौ वज्रबाहुः। तादृशो बलवानिंद्रो नदीरस्मानरदत्। रदतिः खनतिकर्मा। अखनत्। कथमखनत्। उच्यते। नदीनां शब्दकारिणीनामपां परिधिं परितो निहितमुदकमंतः कृत्वा परितो वर्तमानमित्यर्थः। तादृशं वृत्रं। वृणोत्याकाशमिति वृत्रो मेघः। तं मेघमपाहन्। जघान। तस्मिन्हत आपः। पतिताः। ताभिर्गच्छंतीभिर्वयं खाताः। एवं मेघहननद्वारेणाखनत्। न केवलमखनत् किं तर्हि सविता सर्वस्य जगतः प्रेरकः सुपाणिः शोभनहस्त उत्पत्तिस्थितिकर्तृत्वात्तादृशो देवो द्योतमान इंद्रोऽस्माननयत्। मेघभेदनं कृत्वोदकप्रेरणेन समुद्रमपूरयत्। तस्य तादृशसामर्थ्योपेतस्येंद्रस्य प्रसवेऽभ्यनुज्ञायां वर्तमाना उर्वीरुदकैः प्रभूता वयं यामः। गच्छामः। न तव वचनादुपरमामहे। उक्तार्थं यास्को ब्रवीति। इंद्रो अस्मानरदद्वज्रबाहु रदतिः खनतिकर्मापाहन्वृत्रं परिधिं नदीनामिति व्याख्यातं। देवोऽनयत्सविता सुपाणिः

कल्याणपाणिः। पाणिः पणायते पूर्जाकर्मणः प्रगृह्य पाणी देवान्पूजयंति। तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीरुर्व्यः। नि० २.२६। इति॥ अरदत् रदतेर्लङि रूपं। वज्रबाहुः। बहुव्रीहौ पूर्वपदस्वरः। अहन्। हंतर्लङि रूपं। निघातः। परिधिं। डुधाञ् धारणपोषणयोरित्यस्मात्कर्मण्युपसर्गे घोः किरिति किप्रत्ययः। आतो लोपः। कृदुत्तरपदस्वरः। अनयत् नयतेर्लङि रूपं। सुपाणिः। पण व्यवहारे स्तुतौ च। अशिपणाव्यो रुडायलुकौ च। उ० ४.१३२। इतीण्। आयलुक्। बहुव्रीहौ नञ्सुभ्यामिति स्वरः। प्रसवे। षू प्रेरणे। ऋदोरविति भावेऽप्प्रत्ययः। थाथघञ्क्तेत्युत्तरपदांतोदात्तत्वं। यामः। या प्रापण इत्यस्य लटि रूपं। निघातः। उर्वीः। उरुशब्दाद्वोतो गुणवचनादिति ङीष्। वा छंदसीति सवर्णदीर्घः। प्रत्ययस्वरः॥

अन्वय –

बज्रबाहुः इन्द्रः अस्मान् अरदत्। नदीनाम् परिधिम् वृत्रम् अपाहन्। सुपाणिः सविता देवः अनयत्। वयम् उर्वीः तस्य प्रसवे यामः।

हिन्दी अनुवाद –

(बज्रबाहुः) हाथ में वज्र को धारण करने वाले (इन्द्रः) इन्द्र देवता ने (अस्मान्) हम नदियों को (अरदत्) खोदकर हमारा मार्ग बनाया है। (नदीनां) हम नदियों को (परिधिं) चारों ओर से रोक लेने वाली सीमा की (वृत्रम्) आवरक मेघ ने (अपाहन्) नष्ट कर दिया है, रोक दिया है। (सुपाणि) शोभन हाथों वाले (देवः) दिव्य गुण सम्पन्न (सविता) सूर्य देवता (अनयत्) हमें मार्ग से ले जाते हैं। (वयम्) हम (उर्वीः) विशाल जलपूर्ण नदियां (तस्य) उस सविता देवता के (प्रसवे) शासन में, आदेश में (यामः) जाती हैं, बहती हैं।

भावार्थ –

नदियां विश्वामित्र से कहती हैं कि वज्र को धारण करने वाले इन्द्र ने खोद कर हमारा मार्ग बनाया है। हमारे चारों ओर से आवरक घेरे को तोड़ दिया है। हम विशाल जल से भरी नदियां उस सूर्य के देवता के शासन में बहती हैं।

जैसे सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति से भूमि आदि ग्रहों को यथास्थान रखता है, उसी प्रकार सभी लोग उत्तम ग्रहों से आकर्षित होकर यथावत नियमों का पालन करके अपनी सीमाओं में स्थित रहते हैं।।६।।

संहिता पाठ –

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्य१ंतदिंद्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत्।

वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ।।७।।

पद पाठ–

प्रऽवाच्यं । शश्वधा । वीर्यं । तत्। इंद्रस्य।

कर्म । यत् । अहिं । विऽवृश्चत्।

वि । वज्रेण । परिऽसदः। जघान।

आयन् । आपः । अयनं । इच्छमानाः ।।७।।

सायण भाष्य –

योऽयमिंद्रोऽहिं मेघं विवृश्चत् उदकप्रेरणार्थं जघानेति यत्कर्म छेदनरूपं तदिदं तस्येंद्रस्य वीर्यं सामर्थ्यं शश्वधा सर्वदा प्रवाच्यं। प्रकर्षेण वचनीयं। तथा स इंद्रः परिषदः परितः सीदत आसीनान् प्रतिबंधकारिणोऽसुरान् वज्रेण वि जघान। अथायनं स्थानमिच्छमाना इच्छंत्य आप आयन्। यांति ।। प्रवाच्यं। वच

परिभाषण इत्यस्मादृहलोर्ण्यदिति ण्यत्। णित्त्वादुपधावृद्धिः। वचोऽशब्दसंज्ञायां। पा० ७.३.६७। इति कुत्वाभावः। व्यत्ययेनाद्युदात्तत्वं। यद्वा वाचयतेरचो यत्। यतोऽनाव इति स्वरः। शश्वधा। शश्वच्छब्दात्स्वार्थे धाप्रत्ययस्तकारलोपश्च द्रष्टव्यः। विवृश्चत्। ओव्रश्चू छेदने। तुदादिः। लङि ग्रहिज्यावयीत्यादिना संप्रसारणं। सह सुपेत्यत्र सहेति योगविभागात्समासः। समासस्वरः। परिषदः क्विप्। संहितायां सदेरप्रतेरिति षत्वं। जघान। हंतेर्लिटि णलि रूपं। निघातः। आयन् अय गतावित्यस्य लङि रूपं। पादादित्वादनिघातः। इच्छमानाः। इषु इच्छायामित्यस्माद्यत्ययेन शानच। तस्य लसार्वधातुकस्वरे कृते प्रत्ययस्वरः॥

अन्वय -

तत् इन्द्रस्य वीर्यम् कर्म शश्वधा प्रवाच्यम्, यत् अहिं विवृश्चत्। परिषदः ब्रज्रेण विजधान। अयनम् इच्छमानाः आपः आयन्।

हिन्दी अनुवाद -

(तत्) वह (इन्द्रस्य) इन्द्र देवता का (वीर्य कर्म) पराक्रम से परिपूर्ण कार्य (शश्वधा) सदा ही (प्रवाच्यम्) प्रशंसा करने योग्य है, (यत्) जो कि उसने (अहिम्) मेघ को (विवृश्चत्) काटकर तोड़-फोड़ दिया है। (परिषदः) परिधियों को, चारों ओर रूकावट करने वाले आवरणों को (वज्रेण) वज्र से (विजधान) बिलकुल तोड़-फोड़ दिया है, जिससे (अयनम्) स्थान को गमन को (इच्छमानाः) चाहते हुए (आप) जल (आयन्) अपने स्थान को प्राप्त हो गये हैं।

भावार्थ -

इन्द्र ने वज्र का प्रहार करके मेघों के आवरण को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। उसका यह पराक्रम का कार्य प्रशंसनीय है। इन रुकावट रूप आवरणों के हट जाने से नदियों के जल इच्छानुसार अपने स्थान पर चलते जाते हैं।

विद्वज्जनों के पराक्रम के कार्य प्रशंसनीय हैं, जिससे कि ज्ञान को प्राप्त करने के इच्छुक विद्यार्थीगण उनके पास आने की सारी रुकावटों को दूर कर विद्या प्राप्ति के लिये उनके पास इच्छानुसार आ जाते हैं।।७।।

संहिता पाठ–

एतद्वचों जरितर्मापिं मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते।।८।।

पद पाठ–

एतत्। वचः। जरितः। मा। अपि। मृष्ठाः।
आ । यत् । ते । घोषान् । उत्ऽतरा। युगानि।
उक्थेषु। कारो इति। प्रति। नः। जुषस्व।
मा। नः। निः करिति कः। पुरुषऽत्रा। नमः । ते ।।८।।

सायण भाष्य –

नद्यः प्रसंगादिंद्रस्तोत्रं कृत्वा विश्वामित्रं प्रत्यूचुः। जरितः स्तोतर्हे विश्वामित्र ते त्वदीयं यत्संवादात्मकं वचस्त्वं नोऽभीत्या घोषानुद्घोषयन्वर्तसे तद्वचो मापि मृष्ठाः। मा विस्मार्षीः। किं कारणं। उत्तरा युगान्युत्तरेषु याज्ञिकेषु युगेष्वहःसूक्थेषु कारो शस्त्राणां कर्तस्त्वं नोऽस्मान्प्रति जुषस्व। संवादात्मकेन तेन वाक्येन प्रतिसेवस्व। इदानीं नोऽस्मान् पुरुषत्रा मा नि कः। उक्तिप्रत्युक्तिरूपसंवादवाक्याध्यापनेन नितरां पुंवत् प्रागल्भ्यं मा कार्षीः। ते तुभ्यं नमः।। मृष्ठाः। मृजूष् शुद्धावित्यस्य लङि व्यत्ययेनात्मनेपदं। अदादित्वाच्छपो लुक्। व्रश्चादिना षत्वं। निघातः। घोषान्। घुषिर् संशब्दन

इत्यस्य शर्तरि सर्वविधीनां छंदसि विकल्पितत्वादतो गुण इति पररूपत्वाभाव:। सवर्णदीर्घ:। शतुर्लसार्वधातुकस्वरे कृते धातुस्वर:। युगानि। युजिर् योगे। उंछादिषु घञंतत्वेन निपातनादगुणत्वं। विशिष्टविषयं च निपातनमिष्यते। कालविशेषे रयाद्युपकरणे चेति तत्र पाठादेवांतोदात्तत्वं। कालाध्वनोरत्यंतसंयोग इति द्वितीया। कारो। करोति:। कृवापाजिमीत्यादिना उणप्रत्यय:। आमंत्रितत्वान्निघात:। क:। करोतेर्लुङि चेर्मंत्रे घसेत्यादिना लुक्। हल्ङ्यादिना सिचो लोप:। न माङ्योग इत्यडभाव:। पुरुषत्रा। देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलमिति सप्तम्यर्थे त्राप्रत्यय:। प्रत्ययस्वर:।।

अन्वय –

जरित: एतत् वच: मा अपि मृष्टा: यत् उत्तरा युगानि ते आ घोषान् कारो उक्थेषु न: प्रति इति जुषस्व मा न: कि:। पुरुषत्रा ते नम:।

हिन्दी अनुवाद –

(जरित:) स्तुति का ज्ञान करने वाले स्तोता विश्वामित्र (एतद् बच:) हमारे इस वचन को (मापि मृष्टा:) मत भूलो (उत्तरा) उत्तरवर्ती (युगानि) युगों तक (ते) तुम्हारे विषय में (आघोषान्) सब जन कहते, सुनते रहें। (कारो) हे शिल्पी स्तोता (न: प्रति) हमारे प्रति (जुषस्य) सेवा करो (मा न: कि:) हमारे प्रति अपकार मत करो, हमें नीचा न देखना पड़े। (पुरुषत्रा) सब जनों के मध्य में (ते नम:) तुमको नमस्कार है।

भावार्थ –

नदियां विश्वामित्र की स्तुति को सुनकर कहती हैं कि तुम युगों–युगों तक इसी प्रकार स्तुति करते रहो। तुम स्तुति करने वाले शिल्पी हो। तुम्हारी

स्तुतियों को सुनकर हमारी मर्यादा बढ़ती है। हमें कभी नीचा देखना नहीं पड़ता। वे ऋषि विश्वामित्र को नमस्कार करती हैं।

इस मन्त्र का ऋषि दयानन्द अर्थ करते हैं- शिक्षिका के गुणों से अभिभूत होकर शिष्यायें उनके सद्‌गुणों के लिये और सत्कर्मों के लिये उनकी प्रशंसा करती हैं कि उनके कारण उनको कभी नीचा नहीं देखना पड़ता। सब जगह मनुष्यों के मध्य में ही उनको प्रणाम करती हैं ॥८॥

संहिता पाठ -

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।

नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षा सिंधवः स्रोत्याभिः॥९॥

पद पाठ-

ओ इति । सु । स्वसारः। कारवे। शृणोत।

ययौ। वः। दूरात्। अनसा। रथेन।

नि। सु। नमध्वं। भवत। सुऽपाराः।

अधःऽअक्षाः । सिंधवः । स्रोत्याभिः ॥९॥

सायण भाष्य-

विश्वामित्रो नदीः प्रत्युवाच। स्वसारो भगिन्यः सिंधवो हे नद्यः कारवे स्तोत्रं कुर्वाणस्य मन वचनं सु सुष्ठु ओ शृणोत। शृणुतैव अनसा रथेन शकटेन च दूराद विप्रकृष्टद् देशाद् वो युस्यान् ययौ। प्राप्तोऽस्मि। यूयं नि नमध्वं। आत्मना स्वयं प्रह्वा भवत। तथा सुपाराः। रथादीनां तीरात्सुखेनावरोहणारोहणे यथा स्यातां तथा शोभनरोधसश्च भवत। किंच यूयं स्रोत्याभिः स्रवणशीलाभिरद्भिरधोअक्षा

रथांगस्याक्षस्याधस्ताद्भवत। यदापोऽक्षस्याधस्ताद्भवंति तदा रथादीनि नेतुं शक्यंते। तस्मात्तत्परिमाणोदका भवतेत्यर्थाभिप्राय।। ओ इति प्रगृह्यसंज्ञा। शृणोत। श्रु श्रवण इत्यस्य लोटि तप्रत्ययस्य तप्तनप्तनथनाश्चेति तबादेश:। पित्त्वादुण:। निघात:। ययौ। या प्रापण इत्यस्य भूतमात्रे लिट्युत्तमे णस्यात औ णल इत्यौकार:। एकादेशस्वर:। व:। युष्मच्छब्दस्य द्वितीयाया बहुवचनस्य वस्नसाविति वसादेश:। षू। निपातस्येति संहितायां दीर्घ:। नमध्वं। णमु प्रह्वत्वे शब्दे चेत्यस्य कर्मकर्तरि न दुहस्नुनमां यक्चिरणाविति प्रतिषेधाद्यगभाष:। अधोअक्षा:। अधरशब्दस्य पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषामित्यसिप्रत्ययोऽधादेशश्च। अक्षशब्दोऽशू व्याप्तावित्यस्मादशेर्देवने। उ०३.६५। इति सप्रत्ययांत:। कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वर:। सिंधव:। आमंत्रितत्वान्निघात:। स्रोत्याभि:। स्रोत:शब्दात्स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ। पा० ४.४.११३। इति ड्यप्रत्यय:। डित्त्वाट्टिलोप:। प्रत्ययस्वर:।।

अन्वय –

ओ स्वसार: कारवेसु शृणोत। अनसा रथेन व: दूरात् ययौ। सिन्धव: सु नि नमध्वम्। सुपारा: स्रोत्याभि: अध: अक्षा: भवत।

हिन्दी अनुवाद –

(ओ स्वसार:) हे बहनो! नदियों (कारवे)शिल्पी मुझ स्तुति करने वाले के लिए उसकी बात को (सु शृणोत) अच्छी प्रकार से सुनो। (अनसा) बैलगाड़ी से, शकट से (रथेन) रथ के द्वारा पूर्णत: (दूरात्) बहुत दूर से (व:) आपके पास (ययौ) आया हूँ। (सिन्धव:) हे नदियो (सुनि नमध्वम) अच्छी प्रकार से झुक जाइये, नीची हो जाइये (सुपारा:)अच्छी प्रकार से पार करने योग्य (स्रोत्याभि:) जलधाराओं से (अध: अक्षा:) पहियों के अक्ष धुरी से नीची (भवत) हो जाइये।

भावार्थ–

नदियों के पार करने के इच्छुक विश्वामित्र पुनः उनकी स्तुति करते हैं कि वे बहुत दूर से बैलगाड़ियों से नदियों के पास पहुंचे हैं। नदियों का जलस्तर कुछ कम हो जावे और वह बैलगाड़ियों के धुरे से नीचा हो जावे, जिससे कि वे सरलता से उस पार पहूँच जावें।

शिष्यायें अपनी शिक्षिकाओं से प्रार्थना करती हैं कि वे उनके पास बहुत दूर से शिक्षा प्राप्त करने के लिये आई हैं। उनकी इन्द्रियां शिक्षा प्राप्त करने के लिये उत्सुक हैं। अतः हे शिक्षिकाओं ! आप अपनी शिक्षा का स्तर इतना सरल कर लें जो उनकी इन्द्रियों को भली प्रकार समझ आ जावे और विद्या रूपी नदी को भली प्रकार सरलता से पार किया जा सके।।९।।

संहिता पाठ –

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते।।१०।।

पद पाठ–

आ ते। कारो इति। शृणवाम। वचांसि।
ययाथ। दूरात्। अनसा। रथेन।
नि। ते। नंसै। पीप्यानाऽइव। योषा।
मर्यायऽइव। कन्या। शश्वचै। त इति ते।।१०।।

सायण भाष्य–

नद्यः पूर्व विश्वामिचवाक्यं प्रत्याख्यायानचर्चा तस्व वाक्यूश्रुश्रुवुः। कारो स्तोत्रं कुर्वाण हे विश्वामित्र ते तव वचांसीमानि वाक्यान्या श्रृणवाम।

श्रृणुमः। तव समीहितं प्रयोजनं कुर्म इत्यर्थः। अनसा शकटेन रथेन च सह ययाथ। यतो दूरादागतोऽसि। वयं च ते त्वदर्थ नि नंसै। नीचैर्नमाम। प्रत्येकविवक्षयाचैकवचनं रथेन गंतुं गाधोदका भवामेत्यर्थः तत्र दृष्टांतः। पीप्यानेव योषा। पाीप्याना पुत्रं स्तनं पाययंती योषा माता यथा प्रह्वीभवति। दृष्टांतांतरं। यथा कन्या युवतिर्मर्यायेव मनुष्याय पित्रे भ्रात्रे वा शश्वचै परिष्वजनाय नम्रा भवति तद्वत्ते त्वदर्थ प्रह्वीभवामः। ते इति पुनरुक्तिरादरार्थ। एतामृचं यास्क एवं व्याचष्टे। आश्रृणवाम ते कारो वचनानि याहि दूरादनसा च रथेन च निनमाम ते पाययमानेव योषा पुवं मर्यायेव कन्या परिष्वजनाय निनमा इति वा। नि. २.२७। इति। कारो। संबुद्धौ शाकल्यस्येतौ। पा.१.१.१६। इति प्रगृह्यसंज्ञा। शृणवाम। श्रु श्रवण इत्यस्य लट्याडुत्तमस्य पिच्चेत्याडागमः। पित्त्वाद्गुणाः। निघातः। ययाथ। या प्रापणा इत्यस्य भूतमात्रे लिटि थल्येकाच उपदेशेऽनुदात्तादितीट्प्रतिषेधः। लित्स्वरः। अनसा। सहार्थे तृतीया। नंसै। णामु प्रह्वत्व इत्यस्य लेटयुत्तमें लेटि सिब्बहुहमिति सिप्। वैतोऽन्यचेत्यैकारादेशः। निघातः। पीप्यानेव। पीङ् पान इत्यस्यांत-र्भावितण्यर्थस्य लिटि कानचि रूपं। चित्स्वरः। योषा। यु मिश्रणे। वृतृवदिहनीत्यादिना। उ०३.६२.। सप्रत्ययः। यौतीति योषा। वृषादित्वादाद्युदात्तः। शश्वचै। ष्वन्ज परिष्वंग इत्यस्मात्संपदादिलक्षणो भावे क्विप्। पृषोदरादित्वादिष्टरूपसिद्धिरंतोदात्तश्च।।

अन्वय–

कारो ! ते वचांसि आ शृणवाम। अनसा रथेन दूरात् ययाथ। पीप्याना योषा इव ते नि नसै। कन्या मर्याय इव ते शश्वचै।

हिन्दी अनुवाद –

(कारो) स्तुति करने वाले हे शिल्पी स्तोता विश्वामित्र (ते वचांसि) तेरे वचनों को (आ शृणवाम) हम अच्छी प्रकार सुनती हैं। (अनसा रथेन) बैलगाड़ी रूप रथ से (दूरात्) बहुत दूर से (ययाथ) तुम आये हो। (पीप्याना) बच्चे को दूध पिलाने वाली (योषा इव) स्त्री समान (ते) तुम्हारे लिये (नि नसै) क्या मैं नीचे को झुक जाऊं, अथवा (कन्या) कोई युवती कन्या (मर्याय इव) जिस प्रकार किसी युवा (ते) तुझ प्रेमी के लिये (शश्वचै) आलिंगन हेतु नीचे को झुक जाती है।

भावार्थ–

नदियां ऋषि विश्वामित्र की प्रार्थना को सुन लेती है और अभीष्ट सम्पादन के लिये कहती है– हे ऋषि! हमने आपके वचन सुन लिये हैं। आप बहुत दूर से रथ पर बैठकर यहां पहुंचे हो। हम नीची हो जाती हैं, जल स्तर को कम कर देती हैं। वे कहती हैं कि क्या वे बच्चे को दूध पिलाने वाली माता के समान नीचे को झुक जायें, अथवा प्रेमी को आलिंगन करने वाली युवती कन्या के समान नीचे को झुक जायें।।१०।।

संहिता–पाठ–

यदंग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इंद्रजूतः।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानां।।११।।

पद पाठ–

यत्। अंग। त्वा। भरताः। सम्ऽतरेयुः।
गव्यन्। ग्रामः। इषितः। इंद्रऽजूतः।

अर्षात्। अह। प्रऽसवः। सर्गऽतक्तः।

आ। वः। वृणे। सुऽमतिं। यज्ञियानां।।११।।

सायण भाष्य-

विश्वामित्रो नदीः प्रत्युवाच। अंगेत्यामंचणे। हे नद्यो यद्यस्माद्युष्माभिरुत्तितीर्षोर्ममोत्तरणमभ्यनुज्ञातं तस्माद्भरता भरतकुलजा मदीयाः सर्वे त्वा परस्परमेकतामापन्नां नदीं त्वां संतरेयुः। सम्यगुत्तीर्णा भवेयुः। तदेव विशिनष्टि। गव्यन् गा उदकानि तरीतुमिच्छन्निषित-स्त्वयाभ्यनुज्ञात इंद्रजूतो युष्माकं प्रवर्तकेनेन्द्रेण च प्रेरितो ग्रामो भरतानां संघोऽर्षात्। संतरेत्। यतः सर्गतक्तो गमनाय प्रवृत्तः प्रसवस्तेषामुद्योगोऽह पूर्वं युष्माभिरनुज्ञातः। अहं तु यज्ञियानां यज्ञार्हाणां वो युष्माकं सुमतिं शोभनां स्तुतिमा वृणे। सर्वतः संभजे।। भरताः। भरतशब्दादुत्सादित्वादञ्। तस्य यञञोश्चेति लुक्। अतच्प्रत्ययस्वरः। संतरेयुः। तरलेर्लिङि जुसि रूपं। झेर्लसार्वधातुकस्वरे धातुस्वरः। तिङि चोदात्तवतीति गतेर्निघातः। गव्यन्। गा आत्मन इच्छन्। सुपः क्यच्। एकादेशस्वरः। ग्रामः। ग्रसतेरा च। उ० १.१४२। इति मन्प्रत्यय आकारादेशश्च। नित्स्वरः। इंद्रजूतः। जू इति सौत्रो धातुर्गत्यर्थः। श्र्युकः कितीति निष्ठायामिट्प्रतिषेधः। तृतीया कर्मणीति पूर्वपदप्रकृतिस्वरः। अर्षात्। ऋ गतावित्यस्य लेटि तिपि सिब्बहुलमिति सिप्। लेटोऽडागमः। एकाच इतीट्प्रतिषेधः। गुणः। प्रत्ययस्य पित्त्वादनुदात्त्वे धातुस्वरः। वृणे। वृङ् संभक्तावित्यस्य लटि रूपं। यज्ञियानां यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञाविति घप्रत्ययः। प्रत्ययस्वरः।।

अन्वय -

अङ्ग। यत् भरताः गव्यन् इन्द्रजूतः इषितः ग्रामः सन्तरेयुः। अह

सर्गतक्त: प्रसव: अर्षात्। यज्ञियानाम् व सुमतिम् आ वृणे।

हिन्दी अनुवाद –

(अङ्ग) हे प्रिय स्तोता विश्वामित्र! (यत्) जो कि (भरता:) सबका भरण पोषण करने वाले भरतवंशी जनों ने (गव्यन्) गौओं को पाने की इच्छा करते हुए, पार करने की इच्छा करते हुए (इन्द्रजूत:) इन्द्र के द्वारा प्रेरित (इषित:) अभिलषित (ग्राम:) जनसमुदाय ने (सन्तरेयु:) पार कर लिया था। (अह) अहो सचमुच ही वह (सर्गतक्त:) स्वभाव से प्रवृत्त (प्रसव:) जलधारा (अर्षात्) बह रही थी। (यज्ञियानाम्) यज्ञ की साधना करने वाले (व:) आपकी (सुमतिम्) शोभन बुद्धि, सद्भावना की (आ वृणे) चारों ओर से मैं याचना करता हूँ।

भावार्थ –

विश्वामित्र ऋषि के द्वारा भरतवंशी जनों ने इन्द्र के द्वारा प्रेरित होकर अपने अभिलषित ग्राम को तैरकर पार कर लिया था। उस प्रकार हम भी यज्ञ की साधना करने वाली बुद्धि की, सद्भावना की याचना करते हैं।

विद्वज्जन जिस प्रकार विद्यायों को प्राप्त कर लेते हैं, हम भी उसी प्रकार यज्ञ की साधना करने वाली उत्तम बुद्धि की, सद्भावना की याचना करते हैं॥११॥

संहिता पाठ –

अतारिषुर्भरता गव्यव: समभक्त विप्र: सुमतिं नदीनां।
प्र पिन्वध्वमिषयंती: सुराधा आ वक्षणा: पृणध्वं यात शीभं॥१२॥

पद पाठ–

अतारिषुः । भरताः । गव्यवः ।

सं । अभक्त । विप्रः । सुऽमतिं । नदीनां ।

प्र । पिन्वध्वं । इषयंतीः । सुऽराधाः ।

आ । वक्षणाः । पृणध्वं । यात । शीभं ॥ १२ ॥

सायण भाष्य –

गव्यवो गा आत्मन इच्छंतो भरता भरतकुलजाः सर्वेऽतारिषुः। तां नदीं समतरन्। विप्रो मेधावी विश्वामित्रो नदीनां सुमतिं शोभनां स्तुतिं समभक्त। समभजत। यूयं तु यथा पूर्वमिषयंतीः कुल्यादिद्वारान्नं कुर्वाणा अत एव सुराधाः शोभनधनोपेता यूयं वक्षणाः कृत्रिमसरितः। कुल्याः प्र पिन्वध्वं। प्रकर्षेण तर्पयत। आ पृणध्वं। ताः सर्वतः पूरयत च। शीभं शीघ्रं यात। गच्छत च॥ अतारिषुः। तॄ प्लवनतरणयोरित्यस्य लुङि सिचि वृद्धिः परस्मैपदेष्विति वृद्धिः। अडागमस्वरः। गव्यवः। सुपः क्यच्। क्याच्छंदसीत्युप्रत्ययः। तस्य स्वरः। अभक्त। भज सेवायामित्यस्य लुङि सिचो झलो झलीति लोपः। पादादित्वादनिघातः। पिन्वध्वं। पिवि सेचन इत्यस्य लोटि रूपं। निघातः। इषयंतीः। इषं कुर्वत्यः। तत्करोतीति णिच्। णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्येतिष्ठवद्भावाट्टेरिति टिलोपः। वा छंदसीति सवर्णदीर्घः। प्रत्ययस्वरः। पृणध्वं। पृण प्रीणने। लोटि रूपं। व्यत्ययेनात्मनेपदं। वाक्यभेदादनिघातः। यात। या प्रापण इत्यस्य लोटि रूपं। अत्रापि न निघातः। शीभं। शीभृ कत्थने। श्लाघ्यतेऽनेन तद्वानिति करणे घञ्। ञित्स्वरः॥

अन्वय –

गव्यव: भरता: अतारिषु:। विप्र: नदीनां सुमतिं समभक्त। इषयन्ती: सुराधा: प्रपिन्वध्वम् वक्षणा: आपृणध्वम् शीभम् यात॥

हिन्दी अनुवाद –

(गव्यव:) नदी को पार करने के इच्छुक (भरता:) भरतवंशी जनों ने (अतारिषु:) नदी को पार कर लिया है। तुम सब (विप्र:) ब्राह्मण स्तोताओं ने (नदीनाम्) नदियों की (सुमतिम्) सद्‌भावना को, अनुग्रह को (समभक्त) प्राप्त कर लिया है। (इषयन्ती:) धन-धान्य को प्राप्त करती हुई तुम (सुराधा:) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त जनों को (प्रपिन्वध्यम्) अच्छी प्रकार से सिञ्चित करो, तृप्त करो (वक्षणा:) नदी तट प्रदेशों को (आपृणध्वम्) सब ओर धन-धान्य से पूर्ण कर दो। (शीभम्) शीघ्र ही (यात) आगे बढ़ती जाओ।

भावार्थ –

विश्वामित्र ऋषि ने नदियों को भरतवंशियों के साथ पार कर लिया है। वे उनसे कहते हैं–हे नदियो! भरतों ने नदियों को पार कर लिया है। प्रजाजनों ने नदियों की सद्‌भावना को प्राप्त कर लिया है। नदी तट की भूमियां अन्नों से भर गयी हैं। अब नदियां शीघ्र गति से आगे बढ़ें।

विदुषी महिलाओं को चाहिए कि गण की स्त्रियों को अच्छी प्रकार से उचित शिक्षा प्रदान करें, जिससे कि सभी स्त्रियां उत्तम बुद्धि से सम्पन्न होकर गण को धन धान्य से समृद्ध करें। सभी प्रजाजन सुन्दर, बुद्धिमान और सम्पन्न होवें॥१२॥

संहिता पाठ -

उद्व ऊर्मिः शम्या हंत्वापो योक्त्राणि मुंचत।

मादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारतां॥१३॥

पद पाठ-

उत्। वः। ऊर्मिः। शम्याः। हंतु।

आपः। योक्त्राणि। मुंचत।

मा। अदुःऽकृतौ। विऽएनसा।

अघ्न्यौ। शूनं। आ। अरतां॥१३॥

सायण भाष्य -

पूर्वमुत्तितीर्षुर्विश्वामित्रो नदीरुत्काधुनोत्तितीर्षुः पुनराह। हे नद्यो वो युष्माकमूर्मिस्तरंगः। शम्या युगकीला युग्यकटपार्श्वादिसंलग्ना रज्जव उदूर्ध्वं यथा भवंति तथा हंतु। गच्छतु। स तरंगो रज्जूनामधो गच्छत्वित्यभिप्रायः। तथा हे आपो यूयं योक्त्राणि ता रज्जूर्मुंचत। यथा न स्पृशंति तथा यांत्वित्यभिप्रायः। व्येनसा विगतपापे अत एवादुष्कृतौ कल्याणकर्मकारिण्यौ अघ्न्यावघ्ये न केनापि तिरस्करणीये विपाट्छुतुद्यौ शूनं समृद्धिं मारतां। आगच्छतां। एवं विश्वामित्रो नदीः स्तुत्वा ताभिरनुज्ञातोऽतरदिति॥ ऊर्मिः। ऋ गतौ। अर्तेरुच्चेति मिप्रत्ययः। ऊरित्ययमादेशो धातोः। ऋच्छतीत्यूर्मिः। प्रत्ययस्वरः। शम्याः। शमु उपशमे। पोरदुपधादिति यत्प्रत्ययः। यतोऽनाव इत्याद्युदात्तत्वं। हंतु हन हिंसागत्योरित्यस्य लोटि रूपं। निघातः। योक्त्राणि। युजिर् योगे। करणे दाम्नीशसयुयुजेत्यादिना ष्ट्रन्प्रत्ययः। नित्स्वरः। मुंचत। मुच्लृ मोक्षणे। निघातः। अदुष्कृतौ। इसुसोः सामर्थ्य इति विसर्जनीयस्य

षत्वं। व्येनसा। बहुव्रीहौ पूर्वपदस्वरः। सुपो डादेशः। अघ्यौ। हन हिंसागत्योरित्यस्य नञ्पूर्वस्सयाघ्न्यादयश्चेति निपातनाद्यक्। कित्त्वादुपधालोपः। हो हंतेरिति घत्वं। सर्वविधीनां छंदसि विकल्पितत्वादत्रौङः शीभावाभावः। एकादेशस्वरः। शूनं। श्वयतेर्नपुंसके भावे क्त इति क्तः। यजादित्वात्संप्रसारणं। हल इति दीर्घत्वं। ओदितश्चेति निष्ठानत्वं। निष्ठा च द्व्याजनादित्याद्युदात्तः। अरतां। ऋ गतावित्यस्य लुङिच्लेः सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्चेत्यङादेशः। ऋदृशोऽङि गुणः। न माङ्योग इत्यडभावः। निघातः

अन्वय –

वः शम्या ऊर्मिः उद् हंतु आपः योक्त्राणि मुंचत। अदुष्कृतौ व्येनसा अघ्न्यौ शूनम् आ अरताम्।

हिन्दी अनुवाद –

अन्त में विश्वामित्र नदियों से पुनः प्रार्थना करते हैं–

हे नदियो ! (वः ऊर्मिः) आपकी तरङ्गें (शम्या) जुए की कीलियों को (उद् हन्तु) ऊपर की ओर चोट करें। (आपः) तुम्हारे जल (योक्त्राणि) गाड़ियों की रस्सियों को (मुञ्चत) छोड़ दें। (अदुष्कृतौ) दोष रहित (व्येनसा) पापों से रहित (अघ्न्यौ) बैल(शूनम्) संकट को (आ अरताम्) न प्राप्त करें। वे सुरक्षित नदियों को पार कर जावें।

भावार्थ –

अन्त में विश्वामित्र नदियों की सद्भावनाओं को प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं। नदियों का जल बैलगाड़ियों की रस्सियों को स्पर्श नहीं करता तथा वे सकुशल नदियों को पार कर जाते हैं।

इस सूक्त के ऋषि ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के समान विश्वामित्र ही हैं परन्तु इस संवाद सूत्र में ४, ६, ८, १० मन्त्रों में विश्वामित्र के साथ संवाद नदियों द्वारा किया गया है। अतः इन मन्त्रों का ऋषि नदियों को मान लिया गया है। इन संवादों की ऋषि नदियां ही हैं। सम्पूर्ण सूक्त का देवता नद्यः है। नदियों की स्तुति करके विश्वामित्र अपने अभीष्ट को प्राप्त करते हैं। वे स्वयं अपने को तथा भरतवंशी यजमानों को नदियों के पार उतारने में समर्थ हो जाते हैं।

ऋषि दयानन्द इस सूक्त का अर्थ नदियों को उपमान बनाकर अध्यापिका और उपदेशिका के रूप में करते हैं। अध्यापिकायें अन्य स्त्रियों की शिक्षा की उन्नति कराती हुई सतत शिक्षा प्रदान करें ॥ १३॥

****

४. शश्वती आंगिरसी

अष्टम मण्डल के १ सूक्त का ३४ वां मन्त्र

ऋषि – आसंगस्य भार्या अंगिरसः सुता शश्वती।

देवता – इन्द्रः

छन्दः – त्रिष्टुप्

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका –

अष्टमे मंडले दशानुवाकाः। तत्र प्रथमेऽनुवाके पंच सूक्तानि। तेषु मा चिदन्यदिति चतुस्त्रिंशदृचं प्रथम सूक्तं। अत्रानुकम्यते। मा चिच्चतुस्त्रिंशन्मेधातिथिमेध्यातिथी ऐंन्द्रं बार्हतं द्विप्रगाथादि द्वित्रिष्टुवंतमाद्यं दृचं प्रगाथोऽपश्यत्स घोरः सन्भ्रातुः कण्वस्य पुत्रतामगात् प्लायोगिश्चासंगो यः स्त्रीभूत्वा पुमानभूत्स मेध्यातिथये दानं दत्त्वा स्तुहि स्तुहीति चतसृभिरात्मानं तुष्टाव पत्नी चास्यांगिरसी शश्वती पुंस्त्वमुपलभ्यैनं प्रीतांत्यया तुष्टावेति। अस्यायमर्थः। अस्य सूक्तस्य मेधातिथिमेध्यातिथिनामानौ द्वावृषी तौ च कण्वगोत्रौ। ऋषिश्चानुक्तगोत्रः प्राङ्मत्स्यात्काण्व इति परिभाषितत्वात्। आद्यस्य दृचस्य तु घोरस्य पुत्रः स्वीकयभ्रातुः कण्वस्य पुत्रतां प्राप्तत्वात्काण्वः प्रगाथाख्य ऋषिः। प्लयोगनाम्नो राज्ञः पुत्र आसंगाभिधानो राजा देवशापात् स्त्रीत्वमनुभूय पश्चात्तपोबलेन मेधातिथेः प्रसादात्पुमान् भूत्वा तस्मै बहु धनं दत्त्वा स्वकीयमंतरात्मानं दत्तदानं स्तुहि स्तुहीत्यादिभिश्चत-स्टभिर्ऋग्भिरस्तौत्। अतस्तासामासंगाख्यो राजा ऋषिः। अस्यासंगस्य

भार्यांगिरसः सुता शश्वत्याख्या भर्तुः पुंस्त्वमुपलभ्य प्रीता सती स्वभर्तारमन्वस्य स्थूरमित्यनया स्तुतवती। अतस्तस्या ऋचः शश्वत्यृषिका। अंत्ये द्वे त्रिष्टुभौ द्वितीयाचतुर्थ्यौ सतोबृहत्यौ शिष्टा बृहत्यः। कृत्स्नस्य सूक्तस्येंद्रो देवता।

संहिता पाठ –

अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्तादनस्थ ऊरूरवरंबमाणः।
शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं बिभर्षि॥३४॥

पद पाठ–

अनु । अस्य । स्थूरं । ददृशे । पुरस्तात्।
अनस्थः । ऊरूः । अवऽरंबमाणः।
शश्वती । नारी । अभिऽचक्ष्य। आह।
सुऽभद्रं । अर्य । भोजनं । बिभर्षि ॥३४॥

सायण भाष्य –

अयमासंगो राजा कदाचिद्देवशापेन नपुंसको बभूव। तस्य पत्नी शश्वती भर्तुर्नपुंसकत्वेन खिन्ना सती महत्तपस्तेपे। तेन च तपसा स च पुंस्त्वं प्राप। प्राप्तपुंव्यंजनं तं रात्रावुपलभ्य प्रीता शश्वत्यनया तमस्तौत्॥ अस्यासंगस्य पुरस्तात्पुरोभागे गुह्यदेशे स्थूरं स्थूलं वृद्धं सत्पुंव्यंजनमनु ददृशे। अनुदृश्यते। अनस्थोऽस्थिरहितः स चावयव ऊरुरुरुविर्तस्ती-र्णोऽवरंबमाणोऽतिदीर्घत्वेनावाङ्मुखं लंबमानः। यद्वा। ऊरुः॥ सुपां सुलुगिति द्विवचनस्य सुः॥ ऊरु प्रत्यवलंबमानो भवति। शश्वती नामांगिरसः सुता नारी तस्यासंगस्य भार्याभिचक्ष्यैवं भूतमवयवं निशि वृद्धा दृष्ट्वा अर्य हे

स्वामिन् मर्त: सुभद्रमतिशयेन कल्याणं भोजनं भोगसाधनं विभर्षि धारयसीत्याह।

अन्वय –

अस्य स्थूरम् अनस्थ: ऊरू: अतरंबमाण: पुरस्तात् अनु ददृशे। अभिचक्ष्य शश्वती नारी आह–अर्य सुभद्रम् भोजनम् विभर्षि।

हिन्दी अनुवाद –

(अस्य) इस परम पुरुष परमात्मा का (स्थूरम्) स्थूल प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान: (अनस्थ:) स्थायी रूप से न रहने वाला नश्तर (ऊरू:) अति विस्तृत (अवरम्बमाण:) बहुत लम्बा होने से नीचे को लटकता हुआ सा (पुरस्तात्) सामने की ओर (अनुद्वदृशे) दिखाई दे रहा है। (अभिचक्ष्य) जिसकी ओर लक्ष्य करके (शश्वती नारी) शश्वती नाम की यह नारी (आह) अंगिरस की पुत्री शश्वती नारी यह कह उठती है– (अर्य) हे स्वामिन् (सुभद्रम्) बहुत सुन्दर और कल्याणकारी (भोजनम्) भोग करने योग्य पदार्थों के समूह को तुम (बिभर्षि) धारण करते हो।

भावार्थ –

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए सायण ने अजीब प्रकार का कथानक प्रस्तुत किया है कि एक आसक्त राजा कभी दैववश नपुंसक हो गया। उसकी पत्नी शश्वती ने पति के नपुंसकत्व से खिन्न होकर महान् तप किया। उससे राजा पुंसत्व को प्राप्त हुआ। राजा को पुंसत्व को प्राप्त हुआ देखकर वह कहती हैं कि अस्थिर और बहुत लम्बा लटकता हुआ शिश्न दिखाई दे रहा है। राजा सभी भोग्य पदार्थों से युक्त दिखाई दे रहा है। सायण का यहां अजीब ही अर्थ है, उसने इसमें राजा की जननेन्द्रिय की

प्रबल शक्ति सम्पन्नता प्रदर्शित की है। पश्चिमी विद्वान भी इसी अर्थ को पुष्ट करते हैं।

वस्तुतः इस मन्त्र के द्वारा सृष्टि के तीन तत्वों का निरूपण किया गया है। ईश्वर, जीव और प्रकृति। परम तत्व परमेश्वर सबका नियन्ता है। उसी के बनाए गए नियमों के अनुसार आत्मरूप प्राणी रोगादि का दुःख भोगता है। वे परम प्रभु परमात्मा ही सब कल्याणमय भोग्य पदार्थों को धारण करते हैं। शश्वती नारी ही प्रकृति रूप है जो कि सब भोग आदि आनन्दमय पदार्थों के रूप में सबके समक्ष प्रस्तुत होती है। वैदिक विद्वानों के अनुसार यह शश्वती नारी ही इस मन्त्र की द्रष्ट्री ऋषिका है।।३४।।

****

५. अपाला आत्रेयी

अष्टम मण्डल ९१ सूक्त, मन्त्र १-७

ऋषि - अपाला आत्रेयी
देवता - इन्द्रः
छन्द - १-२ पंक्ति, ३-७ अनुष्टुप्

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका -

कन्या वारिति सप्तर्चमेकादशं सूक्तं। अत्रे पुत्र्यपालाख्या त्वग्दोषपरिहारायानेन सूक्तेनेंद्र स्तुतवती। अतः सैवर्षिः। प्रथमाद्वितीये पंक्ती शिष्टाः पंचानुष्टुभः। इंद्रो देवता। तथा चानुक्रांतं। कन्या वाः सप्तात्रेय्यपालेतिहास ऐंद्र आनुष्टुभं द्विपंक्त्यादीति।। विनियोगे लैंगिकः। अत्रेतिहासमाचक्षते। पुरा किलात्रिसुतापाला ब्रह्मवादिनी केनचित्कारणेन त्वग्दोषदुष्टा सत्यत एवं दुर्भगेति भर्त्रा परित्यक्ता पितुराश्रमे त्वग्दोषपरिहाराय चिरकालमिंद्रमधिकृत्य तपस्तेपे। सा कदाचिदिंद्रस्य सोमः प्रियकरो भवति तमिंद्राय दास्यामीति बुद्ध्या नदीतीरं प्रत्यागमत्। सा तत्र स्नात्वा पथि सोममप्यलभत। तमादाय गृहं प्रत्यागच्छंती मार्ग एव तं चखाद्। तद्भक्षणकाले दंतघर्षणजातं शब्दं ग्राव्णां सोमाभिषवध्वनिमिति मत्वा तदानींमेवेंद्रः समागमत्। आगत्य तामुवाच। किमत्र ग्रावाणोऽभिषुण्वंतीति। सा प्रत्यूचे। अत्र कन्या स्नानार्थमागत्य सोमं दृष्टा तं भक्षयति तद्भक्षणजो ध्वनिरेव न तु ग्राव्णां सोमाभिषवध्वनिरिति। तथा प्रत्युक्त इंद्रः पराङवर्तत। गच्छंतमिंद्रं सा पुनरब्रवीत्। किमर्थं निवर्तसे त्वं तु सोमपानाय गृहं गृहं प्रतिगच्छसि।

इदानीमत्रापि मम दंष्ट्राभ्यामभिषुतं सोमं पिब धानादींश्च भक्षयेति। सैवेंद्रमनाद्रियमाणा सती पुनरप्याह। अत्रागतं त्वामिंद्र इति न जानामि त्वयि गृहमागते बद्धमानं करिष्यामीतीद्रमुत्कात्र समागत इंद्र एव नान्य इति निश्चित्य स्वास्ये निहितं सोममाह। हे सोम त्वमागतायेंद्राय पूर्वे शनैस्ततः शनकैः क्षिप्रं परिस्रवेति। तत इंद्रस्तां कामयित्वा तस्या आस्य एव दंष्ट्राभिषुतं सोममपात्। तत इंद्रेण सोमे पीते सति त्वग्दोषादहं भर्त्रा परित्यक्ता सतीदानीमिंद्रेण संगत्येत्यपालायामुक्तायामिंद्रस्तां व्याजहार। किं कामयसे तदहं करिष्याभीत्युक्ते सा वरमचीकमत। मम पितुः शिरो रोमवर्जितं तस्योषरं क्षेत्रं फलादिररहितं मम गुह्यस्थानमप्यरोमशमेतानि रोमफलादियुक्तं कुर्वित्युक्तायां तत्पितृशिरःस्थितं खलतिमपहाय क्षेत्रं च फलादियुक्तं कृत्वैतस्यास्त्वग्दोषपरिहाराय स्वकीयरथच्छिद्रे शकटस्य युगस्य चच्छिद्र एतां त्रिवारं निश्चकर्ष। तस्याः पूर्वापहता या त्वक् शल्यको द्वितीया गोधा तृतीया कृकलासोऽभूत्। तत इंद्रस्तामप्यपालां सूर्यसदृशत्वचमकरोदित्यैतिहासिकी कथा। एतच्च शट्यायनब्राह्मणे स्पष्टमुक्तं। तद्ब्राह्मणं तत्तदृग्व्याख्यानसमये दर्शयिष्यते। एषोऽर्थः कन्या वारित्यादिष्वृक्षु प्रतिपाद्यते॥

संहिता पाठ–

क॒न्या॒३॒॑ वार॑वाय॒ती सोम॒मपि॑ स्रु॒ताऽवि॑दत्।
अस्तं॒ भर॑न्त्यब्रवी॒दिंद्रा॑य सुनवै त्वा श॒क्राय॑ सुनवै त्वा॥१॥

पद पाठ–

क॒न्या॑ । वाः । अ॒व॒ऽय॒ती।
सोम॑ं । अपि॑ । स्रुता । अ॒वि॒द॒त्।

अस्तं । भरंती । अब्रवीत् । इंद्राय।
सुनवै । त्वा । शक्राय । सुनवै । त्वा ॥१॥

सायण भाष्य –

वारुदकं प्रत्यवायती स्नानार्थमभ्यवगच्छंती कन्यापाला नाम स्त्री स्रुता स्रुतौ मार्गे सोमप्यविदत्। अलभत॥ विद्लृ लाभे। लङि रूपं॥ तं सोममस्तं गृहं प्रति भरंत्याहरंती सा सोममब्रवीत्। हे सोम त्वा त्वामिंद्राय सुनवै। मम दंतैरेवाभिषुणवै। पुनर्हे सोम त्वा त्वां शक्राय समर्थायेंद्राय सुनवै। इदानीमेवाभिषवं करवै। सोमभक्षणकाले दंतध्वनिं ग्रावध्वनिमिति मत्वेंद्रस्तामगमत्। एषोऽर्थः शाट्यायनब्राह्मणे स्पष्टमभिहितः। सा तीर्थमभ्यवयंती सोमांशुमविंदत्तं समखादत्तस्यै ह ग्रावाण इव दंता ऊदुः। स इंद्र आद्रवत ग्रावाणो वे वदंतीति। सा तमभिव्याजहार कन्या वारवायती सोममपि स्रुताविददित्यस्यै त इदं ग्रावाण इव दंता वंदतीति विदित्वेंद्रः पराङवर्तत। तमब्रवीदसौ य एषि वीरक इत्यादिनेति॥

अन्वय –

वार् अवायती कन्या स्रुता सोमम् अपि अविदत्। अस्तं भरन्ती अब्रवीत् त्वा इन्द्राय सुनवै, त्वा शक्राय सुनवै।

हिन्दी अनुवाद –

(वार्) पति द्वारा वरण को (अवायती) स्वीकार करती हुई (कन्या) नवयुवती कन्या (स्रुता) जो निचुड़ गई है। शारीरिक दृष्टि से बहुत निर्बल हो चुकी है। (सोमम्) सोम नामक वनस्पति को, रोगनाशक वनस्पति के रस को (अपि)भी (अविदत्) प्राप्त करती है। पहले रोगनाशक वनस्पति का सेवन

कराकर, उसे शारीरिक दृष्टि से सबल बनाते हैं। तब (अस्तं) अपने घर की ओर (भरन्ती) आती हुई वह (अब्रतीत्) कहती है- (त्वा) तुझ औषधि को मैं (इन्द्राय) रोगनियन्ता इन्द्र देवता के लिये (सुनवै) सम्पादित कर रही हूं। (त्वा) तुझ औषधि को मैं (शक्राय) पति के लिये अपने को समर्थ बनाने के लिये (सुनवै) सम्पादित कर रही हूं।

भावार्थ -

कन्या के रोग आदि से निर्बल और ओजरहित हो जाने पर पहले औषधि देकर उसको समर्थ बनाना चाहिये और पति के साथ रहने योग्य बनाना चाहिये, तभी उसको पति के साथ भेजना चाहिये।।१।।

संहिता पाठ -

असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत्।

इमं जंभसुतं पिब धानावंतं करंभिणमपूपवंतमुक्थिनं ।।२।।

पद पाठ-

असौ । यः । एषि । वीरकः।

गृहंऽगृहं । विऽचाकशत्।

इमं । जंभऽसुतं । पिब । धानाऽवंतं।

करंभिणं । अपूपऽवंतं । उक्थिनं ।।२।।

सायण भाष्य -

सा शक्रमब्रवीत्। हे इन्द्र वीरको वीरः समर्थस्त्वं योऽसौ त्वं विचाकशत्।। काशृ दीप्तौ। यङ्लुकि शतरि रूपं। धातोर्ह्रस्वश्छांदसः।। अत्यर्थ

दीप्यमानः सन् गृहं गृहं यजमानगृहं प्रति सोमपानाय त्वेमेषि। गच्छसि। अतस्त्वमत्रापि जंभसुतं मम दंतैरभिषुतमिमं सोमं पिब। कीदृशं। धानावंतं। धाना भ्रष्टयवाः। तद्वंतं करंभिणं सक्तुमंतमपूपवंतं पुरोडाशादिसहितमुक्थिनं स्तोत्रादियुक्तमेतादृशं सोमममत्रैव पिबेति। सा सोमेन सह धानादीनावेदयत् स्तोत्रं चाकार्षीदित्यर्थः॥

अन्वय –

वीरकः यः असौ विचाकशत् गृहं गृहम् एषि जंभसुतम् इमं पिब, धानावन्तम, करंभिणम् अपूपवंत्तम् उक्थिनम्।

हिन्दी अनुवाद –

(वीरकः) शरीर और आत्मा को बलशाली बनाने वाला (यः असौ) जो भी तुम (विचाकशत्) बहुत दीप्तिशाली हो। (गृहं गृहम्) प्रत्येक यजमान के घर पर तुम (एषि) जाते हो। (जंभसुतम्) मेरे दांतों द्वारा अभिषव किये गये। (इयम्)इस सोमरस का (पिब) पान करो, जो कि (धानावन्तम्) भुने हुए जौ आदि पौष्टिक पदार्थों से युक्त हैं। (करंभिणम्) सभी दिव्य पदार्थों से सम्मिश्रित है। (अपूपवंत्तम्) पुरोडाश आदि न खराब होने वाले पदार्थो से युक्त है। (उक्थिनम्) उक्य अर्थात प्राणशक्ति से युक्त है, ऐसे सोमरसा का तुम पान करो।

भावार्थ –

निर्बल कन्या को ऐसे सोमरस का पान कराया जाता है जो दांतों से चबाया जाता है, जिसमें पौष्टिक भुने जौ आदि पदार्थ मिलाये जाते हैं। दिव्य गुणों से सम्पन्न होता है, जो सड़ता नहीं है, और प्राणशक्ति का देने वाला है। ऐसे सोमरस का उस निर्बल कन्या को पान कराना चाहिये॥२॥

संहिता पाठ –

आ च॒न त्वा॑ चिकित्सा॒मोऽधि॑ च॒न त्वा॒ नेम॑सि।

शनै॑रिव शन॒कैरि॒वेंद्रा॒येंदो॒ परि॑ स्रव ॥३।

पद पाठ –

आ । चन । त्वा॒ । चि॒कि॒त्सा॒म॒:।

अधि॑ । च॒न । त्वा॒ । न । इ॒म॒सि॒।

शनै॑:ऽइव । श॒न॒कै:ऽईव । इंद्रा॑य।

इं॒दो इति॑ । परि॑ । स्र॒व॒ ॥३॥

सायण भाष्य –

पुनरपि सा तमनादृत्याह। हे इन्द्र। चनेति निपातसमुदायोऽवधारणार्थे। त्वा त्वामा चिकित्साम:। ज्ञातुमिच्छाम एव। इह मार्ग एवागतं त्वा त्वां नाधीमसि। नाधिगच्छाम:। अत्रापि चनेत्यवधारणे। मम गृहमागच्छंतं त्वामिंद्र इति न जानीम एवेत्यपाला तमिंद्रमुक्ता स्वास्ये स्थितं सोमं प्रत्याह। हे इंदो क्षरणशील सोम अस्मा आगतायेंद्राय तदर्थं पूर्वं शनैर्मंदं मंदं तत: शनकैरिव॥ कुत्सितार्थेऽकच्॥ कुत्सितं शनै: शनकै:। क्षिप्रमित्यर्थ:। क्षिप्रमेव त्वं परि स्रव। मदीयदंष्ट्राभिरभिषूयमाण: सन् परित: क्षरेति। तथा यज्ञेष्वपि ग्रावभिरभिषूयमाण: सोम: प्रथमं शनै: परिस्रवति तत: शनकै:। क्षिप्रमिति तदभिप्रायेणोक्तं। तत इंद्र एतद्वाक्यं श्रुत्वा तदानीमेवमभिषुतं सोमं यज्ञस्थानीयादपालामुखादेवाधासीत्। उक्तार्थ: शाट्यायनकब्राह्मणे स्पष्टमभ्यधायि। अनाद्रियमाणैव तमब्रवीदा चन त्वा चिकित्सामोऽधि चन त्वा नेमसीति। पुरा मां सर्वयर्चापाला स्तौतोत्युपपर्यावर्तत शनैरिव

शनकैरिवेंद्रायेंदो परि स्त्रवेति ह वा अस्यै मुखात्सोमं निरधयत्सोमपीथ इह वा अस्य भवति य एवं विद्वान् स्त्रीमुपजिघ्रतीति॥

अन्वय -

इन्दो शनैः इवः शनकैः इव इन्द्राय परिस्त्रव। त्वा अधि न इमसि त्वा चिकित्सामः आचन।

हिन्दी अनुवाद -

(इन्द्रो) सबको आनन्दित करने वाले हे सोम! (शनैः इन शनकै इव) धीरे-धीरे और धीरे-धीरे (इन्द्राय) रोग निवारक शक्ति प्रदान करने के लिये तुम (परिस्त्रव) स्त्रवित हो। (त्वा अधि न इमसि) तुम्हारे गुणों-अवगुणों को हम अच्छी प्रकार नहीं जानते हैं, ऐसा नहीं है। अतः (त्वा चिकित्सामः आ चन) तुम्हारे द्वारा चिकित्सा पर नियन्त्रण रखते हैं।

भावार्थ -

सोमरस की मात्रा पर पूरा नियन्त्रण रखना चाहिये। इसको नियन्त्रित मात्रा में धीरे-धीरे दिया जाना चाहिये।।३।।

संहिता पाठ -

कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत्।
कुवित्पतिद्विषो यतीरिद्रेंण संगमामहै ।।४।।

पद पाठ-

कुवित् । शकत् । कुवित् । करत् ।
कुवित् । नः । वस्यसः । करत् ।

कुवित् । प॒ति॒ऽद्विषः । य॒तीः ।
इंद्रे॑ण । सं॒ऽगमामहै ॥४॥

सायण भाष्य –

सोमं पीतवानिंद्रोऽस्मानेवं करोत्वित्याह। स इंद्रः कुविद्बहुवारमस्माञ्शकत्। शक्तान् समर्थान्करोतु। किंच कुविद्बहु चास्मभ्यं करत्। करोतु। किंच स एवेंद्रो नोऽस्मान्कुविद्बहुकृत्वो वस्यसो वसीयसोऽतिशयेन वसुमतः करोतु॥ करोतेः शक्नोतेश्च लेट्यडागमः॥ इदानीमात्रैणाहमेवं करिष्यामीति वदति। पूर्व कुविद्बहुपतिद्विषस्त्वग्दो-षात्पतिभिर्भर्तृभिर्बहुवारं द्विष्टा अत एव यतीः पतिभ्यः सकाशादितो गच्छंत्यो वयं कैश्चिदप्यनूह्यमानाः सत्यः संप्रतींद्रेण सह संगमामहै। संगच्छामहै। सर्वत्र पूजार्थे बहुवचनं। संगमशब्देनेंद्रोऽपालामचकमतेति॥

अन्वय –

कुवित् शकत् कुवित् करत् नः कुवित् वस्यसः करत्। कुवित् पतिद्विषः यतीः इन्द्रेण संगमामहे।

हिन्दी अनुवाद –

वह सोमरस (कुवित् शकत्) हमको बहुत अधिक समर्थ बनावे (कुवित् करत्) हमें बहुत अधिक परिष्कृत कर दे। (नः) हमको (कुवित्) बहुत अधिक (वस्यसः) वसुओं ऐश्वर्यों से सम्पन्न (करत्) कर देने (कुवित्) कहीं (पतिद्विषः) पति के प्रति द्वेष भावना से युक्त होकर, निर्बलता के कारण पति के प्रति विरोधी भाव रखती कन्यायें (यतीः) नियंत्रित होकर (इन्द्रेण) शक्तिशाली पति के साथ (संगमामहे) संगम को प्राप्त कर सकें।

भावार्थ –

सोमलता आदि औषधियों का सेवन करके निर्बल और रोगी कन्यायें बल सम्पन्न होकर शक्तिशाली पति से मिलन की कल्पना करने लगती हैं।।४।।

संहिता पाठ –

इमानि त्रीणि विष्टपा तानींद्र वि रोहय।

शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे ।।५।।

पद पाठ –

इमानि । त्रीणि । विष्टपा ।

तानि । इन्द्र । वि । रोहय ।

शिरः । ततस्य । उर्वरा।

आत् । इदं । म । उप । उदरे।।५।।

सायण भाष्य –

इंद्रेण किं कामयसे तद्दास्यामीत्युक्ता सा वरमनया प्रार्थयते। हे इन्द्र इमानि त्रीणि विष्टपाति स्थानानि संति। तानि त्रीणि स्थानानि वि रोहय। उत्पादय। कानि तानि। ततस्य मम पितू रोमवर्जितं शिरः। खलतिमित्यर्थः। तच्चापगमय। रोमशं कुर्वित्यर्थः। उर्वरां तस्योषरं क्षेत्रं सर्वसस्याढ्यं कुरु। आदनंतरं मे ममोपोदर उपोदरस्य समीपे यदिदं स्थानं। गुह्यमित्यर्थः। तच्च त्वग्दोषे सत्यसंजातरोमकं। तदपि त्वग्दोषपरिहारेण रोमयुक्तं कुरु। एतानि त्रीणि स्थानानि एषोऽर्थः शाट्यायनके प्रपंचेनोक्तः। ताम्रब्रवीदपाले किं कामयसीति। साब्रवीदिमानि त्रीणि विष्टपेति खलतिर्हास्यै पिता स तं हाखलतिं चकारोर्वरा हास्य न जज्ञे सो जज्ञ उपस्थे हास्यै रोमाणि नामुस्तान्यु ह जज्ञिर इत्यस्योत्तरा भूयसे निवर्चनायासौ च या न इति।।

अन्वय –

इन्द्रः इमानि त्रीणि विष्टपा तानि विरोहया। ततस्य शिरः, उर्वराम् आत् इदं मे उपोदरे।

हिन्दी अनुवाद –

(इन्द्रः) बल और ऐश्वर्य सम्पन्न हे शरीर के स्वामिन् इन्द्र (इमानि) ये (त्रीणि) तीन (विष्टपा) शरीर में स्थान हैं। शरीर की ये तीन प्रमुख गुहायें हैं। (तानि) उन तीनों को (विरोहम) स्वस्थ करके रोगों से मुक्त कीजिये। ये तीन हैं- (ततस्य) पहला तो इस शरीर का (शिरः) शिरोगुहा है। दूसरा है (उर्वराम्) उर्वरा अर्थात् प्राणवायु से फैलने वाला अर्थात् वक्ष प्रदेश है। (आत्) इसके पश्चात (इदम्) यह (मे) मेरा (उप उदरे) दर के समीप का प्रदेश है।

भावार्थ –

शरीर के स्वस्थ रहने के लिये तीन मुख्य प्रदेश या तीन गुहायें होती हैं- शिरोगुहा, उरोगुहा और उदरगुहा। इन तीन क्षेत्रों की शुद्धि से शरीर आरोग्य, बलसम्पन्न तथा कान्तिमान बनता है। इसका सतत प्रयत्न करना चाहिए।।५।।

संहिता पाठ –

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं१ मम।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ।।६।।

पद पाठ–

असौ । च । या । नः । उर्वरा।
आत् । इमां । तन्वं । मम ।
अथो इति । ततस्य । यत् । शिरः।
सर्वा । ता । रोमशा । कृधि ।।६।।

सायण भाष्य –

उक्तमेवार्थमनया विवृणोति। नोऽस्माकं पितुर्यासा उर्वरा यदिदमूषरं क्षेत्रमस्ति। आदनंतरं ममेमां तन्वमिदं त्वग्दोषदुष्टं गुह्यस्थानं। अथो अथापि च ततस्य तातस्य यच्छिरो रोमवर्जितमस्ति। एतानि सर्वा सर्वाणि तानीमानि त्रीणि स्थानानि रोमशा रोमशानि कृधि। कुरु।।

अन्वय –

असौ च या नः उर्वरा आत् इमाम् नः तन्वम्। अयो ततस्य यत् शिरः सर्वा रोमशा कृधि।

हिन्दी अनुवाद –

(च) और (असौ) वह (या) जो (नः) हमारी (उर्वरा) उरोगुहा है। (आत्) उससे आगे (इमाम्) यह (मम) मेरा मुझ प्राणी का (तन्वम्) पतला सूक्ष्म सा उदरगुहा है। (अथो) और (ततस्य) विस्तृत शरीर का (शिरः) शिरोगुहा है, (सर्वा ता) वे सब शरीर के अंग (रोमशा) रोमों से युक्त वर्धनशील (कृधि) हे प्रभु आप कर दीजियेगा।

भावार्थ–

प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे शरीर के सभी अंगों को, वे हमारे शिरोगुहा, उरोगुहा और उदरगुहा में जितने अंग हैं, उनको वर्धनशील और स्वस्थ तथा बलवान् बनायें।।६।।

संहिता पाठ –

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिंद्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचं ।।७।।

पद पाठ–

खे । रथस्य । खे । अनसः।
खे । युगस्य । शतक्रतो इति शतऽक्रतो।
अपालां । इंद्र । त्रिः । पूत्वी।
अकृणोः । सूर्यऽत्वचं ।।७।।

सायण भाष्य –

अनयापालां सूर्यसदृशप्रभामकरोदित्याह। हे शतक्रतो हे शतसंख्याकयज्ञ बहुविधप्रज्ञ वा हे इंद्र रथस्य स्वकीयस्य खे पृथुतरे छिद्रे तथानसः शकटस्य खे तदपेक्षयाल्पे छिद्रे युगस्य खे चाल्पतरे सूक्ष्मे छिद्रे रथशकटयुगानां छिद्रेषु त्वग्दोषपरिहाराय त्रिस्त्रिवारं निष्कर्षणेन पूत्वी शोधयित्वा ततोऽपालामेतन्नामिकामत्रिसुतां ब्रह्मवादिनीं सूर्यत्वचं सूर्यसमानत्वचमकृणोः। अकरोः। कल्याणतमरूपभाजमकरोतितत्यर्थः शाट्यायनकब्राह्मणे स्पष्टमभिहितः। तां खे रथस्यात्यबृहत्सा गोधाभवत्तां खेऽनसोऽत्यबृहत्सा संश्लिष्टकाभवत्तदेषाभ्यनूच्यते खे रथस्य खेऽनस इति। तस्यै ह यत्कल्याणतमं रूपाणां तद्रूपमासेति त्वग्दोषापनयनायाक्षादिद्वारेष्वतिकर्षणमिति। यस्त्वदोषदूषितः सन्नेतत्सूक्तं पठति तस्य त्वग्दोषमपगमय्य सूर्यसदृशकांतिमिंद्रः करोतीति सूक्तं प्रशस्यते।।

अन्वय –

इन्द्र शतक्रतो अपालाम् रथस्य खे अनसः खे युगस्य खे त्रिष्पूत्वी सूर्यत्वचम् अकृणोः।

हिन्दी अनुवाद –

(इन्द्रः) सोमरस का प्रयोग करके शक्तिशाली होते हुए ये प्राण

शक्तिसम्पन्न जीवात्मन् (शतक्रतो) सैकड़ों प्रकार के कर्मों को तथा विज्ञानों को जानने वाले हे इन्द्रदेवता आपने (अपालाम्) पालन-पोषण से रहित मुझ अपाला कन्या को (रथस्य) शरीराङ्गों के वाहन इन शरीर के (खे) छिद्रों अर्थात् दोषों में (अनसः) अन प्राणने अर्थात् प्राणों के (खे) दोषों में और (युगस्य) चिर युगों से चले आये (खे) अन्य सभी दोषों से दूरके (त्रिष्पूत्वी) तीनों प्रकार के दोषों से मुक्त करके (सूर्यत्वचम्) सूर्य के समान कान्तिमान् त्वचावाला (अकृणोः) कर दिया है।

भावार्थ -

सोमलता आदि वनस्पतियों के प्रयोग से नारी का शरीर सभी प्रकार से शक्ति सम्पन्न हो जाता है। उसके शारीरिक दोष दूर हो जाते हैं। प्राण अपान आदि क्रियाओं के दोष दूर हो जाते हैं और युगों से चले आते सभी प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं तथा नारी के शरीर की त्वचा सूर्य के समान कान्तिमान हो जाती है।

दशम मण्डल के इक्यानब्बे सूक्त में ऋषिका अपाला आत्रेयी ने मन्त्रार्थ का दर्शन किया है कि कन्या के विवाह करके पति के घर जाने से पूर्व सोम आदि वनस्पतियों का प्रयोग कराकर उसको पूर्णतः स्वस्थ कराना आवश्यक है। उसके शरीर में तीन गुहायें निहित होती हैं- शिरोगुहा, उरोगुहा और उदरगुहा। इनमें सभी अंग विद्यमान रहते हैं, जिनको सोम आदि वनस्पतियों से दूर किया जाता है। इन वनस्पतियों के रस से शरीरगत दोषों को, प्राणगत दोषों को और युगों-युगों से चली आती व्याधियों को दूर करने से त्वचा सूर्य के समान कान्तिमान् हो जाती है।।७।।

****

६. विश्ववारा आत्रेयी

पञ्चम मण्डल २८ सूक्त, मन्त्र १-६

ऋषि -विश्ववारा आत्रेयी

देवता - अग्नि

छन्द - १, ३ त्रिष्टुप्, २ जगती, ४ अनुष्टुप्, ५,६ गायत्री

सूक्त की सायणकृत भाष्य की पूर्व भूमिका -

समिद्धो अग्निरिति षड्र्चं चतुर्दशं सूक्तं। अत्रेयमनुक्रमणिका। समिद्धो विश्ववारात्रेयी त्रिष्टुब्जगती त्रिष्टुबनुष्टुब्गायत्र्याविति। अत्रिगोत्रोत्पन्ना विश्रवारानामिकास्य सूक्तस्य ऋषिः। आद्यातृतीये त्रिष्टुभौ द्वितीया जगती चतुर्थ्यनुष्टुप् अंत्ये गायत्र्यौ। अग्निर्देवता।। सूक्तविनियोगो लैंगिकः।।

संहिता पाठ-

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति।
एति प्राचीं विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची।।१।।

पद पाठ-

संऽइद्धः। अग्निः। दिवि। शोचिः। अश्रेत्। प्रत्यङ् उषसं। उर्विया। वि। भाति।
एति। प्राचीं। विश्वऽवारा। नमःऽभिः। देवान्। ईळाना। हविषा। घृताची।।१।।

सायण भाष्य-

समिद्धः सम्यग्दीप्तोऽग्निर्दिवि द्योतमानेऽतरिक्षे शोचिस्तेजोऽश्रेत्। श्रयति। तथोषसं प्रत्यङ् उपसमभिमुखः सन् उर्वियोरु विस्तीर्णं वि भाति। विशेषेण भ्राजते। नमोभिः स्तोत्रैर्देवानिंद्रादीनीळाना स्तुवती हविषा

पुरोडाशादिलक्षणेन युक्तया घृताची घृताच्या स्त्रुचा सहिता विश्ववारा सर्वमपि पापरूपं शत्रुं वारयित्र्येतन्नामिका प्राची प्राङ्भुखी सत्येति। एवं भूतमग्निं प्रतिगच्छति॥

अन्वय–

समिद्धः अग्निः दिवि शोचिः अश्रेत् उर्विया उषसम् प्रत्यङ् विभाति विश्ववारा नमोभिः देवान् ईळाना हविषां घृताचीं प्राचीं एति।

हिन्दी अनुवाद–

(समिद्धः) अच्छी प्रकार से प्रज्वलित किया गया (अग्निः) अग्नि देवता (दिवि) दीप्तिमान् अन्तरिक्ष में (शोचिः) तेजयुक्त होता हुआ (अश्रेत्) आश्रय ले रहा है। (उर्विया) विस्तृत रूप से (उषसम्) उषा की ओर (प्रत्यङ्) अत्रिमुख होकर (विभाति) वह विशेष रूप से प्रकाशित हो रहा है। (विश्ववारा) विश्व से वरण करने योग्य यह विश्ववारा नाम की ऋषिका (नमोभिः) नमस्कारों द्वारा या स्तोत्रों द्वारा देवताओं की (ईळाना) स्तुति करती हुई (हविषा) हवियों द्वारा (घृताचीं) घृत अर्थात् ज्वलनशील पदार्थों द्वारा प्रकाशित (प्राचीं) पूर्व दिशा की ओर (एति) जा रही है। अथवा हे अग्नि! उद्दीप्त किये जाते हुए आप उज्जवल प्रकाश से प्रकाशित होते हो। इस विस्तृत प्रकाश से युक्त उषा की ओर विशेष रूप से चमकते हो। यह विश्ववारा नमस्कारों द्वारा देवताओं की स्तुति करती हुई आहुत द्रव्यों दिन और रात में अभिमुख होकर गति कर रही है।

भावार्थ–

इस अग्नि तत्त्व द्वारा सूर्य की रचना की गयी है। यह पूर्व आदि दिशाओं का विभाग करके रात्रियों का आविर्भाव करता है। उस समय देवताओं की घृत से युक्त आहुतियां देकर स्तुति की जाती है।

संहिता पाठ–

समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वंतं सचसे स्वस्तयें।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः॥२॥

पद पाठ–

संऽइध्यमानः। अमृतस्य। राजसि। हविः। कृण्वंतं। सचसे स्वस्तयें।
विश्वं। सः। धत्ते। द्रविणं। यं। इन्वंसि। आतिथ्यं। अग्ने । नि। च। धत्ते। इत्। पुरः॥२॥

सायण भाष्य–

हे अग्ने समिध्यमानः सम्यगिध्यमानस्त्वममृतस्योदकस्य राजसि। ईशिषे। तथा हविष्कृण्वंतं पुरोडाशादिहविष्कर्तारं यजमानं स्वस्तयेऽविनाशाय सचसे। सेवसे। किंच यं यजमानमिन्वसि गच्छसि स यजमानो विश्वं समस्तं द्रविणं पश्वादिलक्षणं धनं धत्ते। धारयति। अपि च हे अग्ने अतिथ्यमतिथिरूपस्य तव योग्यं हविः पुर इत् तव पुरस्तादेव नि धत्ते च। स्थापयति च॥

पवित्रेष्ट्यां स्विष्टकृतोऽग्ने शर्धेति याज्या। सूत्र्यते हि। जुष्टो दमूना अग्ने शर्ध महते सौभगायेति संयाज्ये। आ० २.१२.। इति॥ साकमेधेषु मरुद्यः क्रीडिभ्यः पुरोडाशं सप्तकपालमित्यत्राप्येषैव स्विष्टकृतो याज्या। सूत्रितं च। जुष्टो दमूना अग्ने शर्ध महते सौभगायेति मंयाज्ये। आ० २.१८। इति।

अन्वय–

अग्ने ! समिध्यमानः अमृतस्य राजसि। स्वस्तये हविः कृण्वन्तम् सचसे। विश्वं द्रविणं सं धत्ते। अग्ने यम् आतिथ्यम् इन्वसि पुरः च नि धत्ते। इत्।

हिन्दी अनुवाद–

(अग्ने) हे अग्नि देवता (समिध्यमानः) उद्दीप्त किये जाते हुए तुम

(अमृतस्य) अमृत तत्व के, जल के मध्य में (राजसि) प्रकाशित होते हो, (स्वस्तये) मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये (हविः कृण्वन्तम्) आहुति अर्पित करने योग्य हवि को मनुष्य के योग्य बनाते हुए (सचसे) उससे सम्बद्ध करते हो, (विश्वं) सम्पूर्ण (द्रविणं) धन को और यश को (धत्ते) धारण करते हो और हे अग्नि देवता (यम्) जिस (आतिथ्यम्) अतिथि सत्कार करने के योग्य धन को (इन्वसि) व्याप्त कर लेते हो (पुरः च) और वह पहले से ही (निधत्ते) निरन्तर धारण करते रहे हो। (इत्) वह निश्चय से आपके ही अधिकार में है।

भावार्थ-

यह अग्नि सब प्रकार के प्रकाशमान, योग्य और अतिथि सत्कार के योग्य धनों को धारण करता है। वह सभी सांसारिक वस्तुओं को मनुष्य के योग्य बनाता है। यह सम्पूर्ण धन पहले ही उसके अधिकार में रहता है।

संहिता पाठ -

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि संतु।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि॥३॥

पद पाठ-

अग्ने। शर्ध। महते। सौभगाय। तव। द्युम्नानि। उत्ऽतमानि। संतु।
सं। जाःपत्यं। सुऽयमं। आ। कृणुष्व। शत्रुऽयतां। अभि। तिष्ठ। महांसि॥३॥

सायण भाष्य-

हे अग्ने तवं महते प्रभूताय सौभगायस्माकं शोभनधनत्वाय शर्ध। शत्रून् सहस्व। तथा तव संबंधीनि द्युम्नानि धनानि तेजांसि वा उत्तमान्युत्कृष्टानि संतु। भवंतु। किंच हे अग्ने सं जास्पत्यं। जा जाया च पतिश्च जायापती। तयोः

कर्म जास्पत्यं। तत्सुयमं सुष्ठु नियमनोपेतं। अन्योन्यसंश्लिष्टमित्यर्थ:। समा कृणुष्व। सम्यक्कु रुष्व। अपि च शत्रूयतां शत्रुमात्मन इच्छतां सपत्नानां महांसि तेजास्यभि तिष्ठ। आक्रमस्व॥

अन्वय-

शर्ध अग्ने! महते सौभगाय तव द्युम्नानि उत्तमानि सन्तु। जास्पत्यम् जास्पत्यम् सुयमम् सम् आ कृणुष्वं शत्रुयता महांसि अभि तिष्ठ।

हिन्दी अनुवाद-

(शर्ध) प्रशंसित बलों से युक्त (अग्ने) हे अग्नि देवता (महते सौभगाय) तुम्हारे महान् सौभाग्य सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (तव) तुम्हारे (द्युम्नानि) दीप्तिशाली धन और यश (उत्तमानि) सर्वश्रेष्ठ (सन्तु) होवें। (जास्पत्यम्) हमारा पति-पत्नी भाव (सुयमम्) अच्छी प्रकार नियंत्रित (सम् आकृणुष्व) अच्छी प्रकार सब ओर से कर दो। (शत्रूयताम्) हमसे शत्रुत्व करने वालों के (महांसि) तेज या सेनाओं को (अभि तिष्ठ) पराभूत कर दो।

भावार्थ-

अग्नि स्वरूप उस परमात्मा से हमको महान् सौभाग्य प्राप्त हो। हमारा पति-पत्नी भाव, दाम्पत्य जीवन सुनियंत्रित होवे। हमसे शत्रुत्व का भाव रखने वालों के बल का अभिभव होवे।

संहिता पाठ-

समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वंदे तव श्रियं।
वृषभो द्युम्नवाँ असि ध्वरष्विध्यसे ॥४॥

पद पाठ–

संऽईद्धस्य। प्रऽमहसः। अग्ने। वंदे। तव। श्रियं।

वृषभः। द्युम्नऽवान्। असि। सं। अध्वरेषु। इध्यसे ।।४।।

सायण भाष्य–

हे अग्ने समिद्धस्य प्रवृद्धस्य प्रमहसः प्रकृष्टतेजसस्तव संबंधिनीं श्रियं दीप्तिं वंदे। अहं यजमानः स्तौमि। वृषभः कामानां वर्षिता त्वं द्युम्नवानसि। धनवान्भवसि। अध्वरेषु यज्ञेषु समिध्यसे। सम्यग्दीप्यसे।। दर्शपूर्णमासयोः समिद्धो अग्ने आहुतेति द्वे सामिधेन्यौ। सूत्रितं च। समिद्धो अग्न आहुतेति द्वे। आ. १.२। इति।।

अन्वय–

अग्ने ! समिद्धस्य प्रमहसः तव श्रियं वंदे। वृषभः द्युम्नवान् असि। समरेषु सम् इध्यसे।

हिन्दी अनुवाद–

(अग्ने) हे अग्नि देवता ! (समिद्धस्य) अच्छी प्रकार से प्रकाशित किये जाते हुये (प्रमहसः) प्रकृष्ट तेजस्वी (तव)तुम्हारी (श्रियम्) दीप्ति की (वंदे) मैं वन्दना करता हूं। तुम (वृषभः) कामनाओं की वर्षा करने वाले अत्यधिक बलवान् और (द्युम्नवान्) दीप्तिशाली धन से युक्त (असि) हो। (अध्वरेषु) हिंसा रहित यज्ञों में (सम् इध्यसे) अच्छी प्रकार से प्रदीप्त होते हो।

भावार्थ–

वह अग्निस्वरूप परमात्मा प्रदीप्त महान, कामनाओं की वर्षा करने वाला, सब प्रकार के धनों का स्वामी है और संग्रामों से सबको उद्दीप्त करने वाला है।

संहिता पाठ–

समिद्धो अग्ने आहुत देवान्यक्षि स्वध्वरे।
त्वं हि हव्यवाळसि॥५॥

पद पाठ–

संऽइद्धः। अग्ने। आऽहुत। देवान्। यक्षि। सुऽअध्वर।
त्वं। हि। हव्यऽवाद्। असि॥५॥

सायण भाष्य–

हे आहुत यजमानैरा समंताद्धुत हे स्वध्वर शोभनयज्ञोपेत हे अग्ने समिद्धः सम्यग्दीप्तस्त्वं देवान्द्योतमानानिंद्रादीन्यक्षि। यजस्व। हि यस्मात्कारणात् हे अग्ने त्वं हव्यवाडसि हव्यानां वोढा भवसि। अतः कारणाद्देवान्यजस्वेति संबंधः॥

अन्वय–

अग्ने! समिद्धः अध्वरे आहूतः देवान् सु यक्षि। हि त्वम् हव्यवाड् असि।

हिन्दी अनुवाद–

(अग्ने) हे अग्नि देवता (समिद्धः) अच्छी प्रकार से उद्दीप्त किये जाते हुए तुम (अध्वरे) यज्ञ में (आहूतः) पुकारे जाते हुये (देवान्) अन्य सभी देवताओं को (सु यक्षि) अच्दी प्रकार सत्कार करने वाले, पालन करने वाले हो। (हि) निश्चय से (त्वम्) तुम (हव्यवाड्) हवियों का वहन करने वाले (असि) हो। इससे तुम सबसे श्रेष्ठ हो।

भावार्थ–

प्रदीप्त होता हुआ अग्नि आहूत होने पर अन्य सब देवताओं को साथ लेकर यज्ञ में उपस्थित होता है। वह ही हवियों का वहन करता है।

संहिता पाठ–

आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे।
वृणीध्वं हव्यवाहनं।।६।।

पद पाठ–

आ। जुहोत। दुवस्यत। अग्निं प्रऽयति। अध्वरे।
वृणीध्वं। हव्यऽवाहनं ।।६।।

सायण भाष्य–

हे ऋत्विजो यूयमध्वरेऽस्मदीययागे प्रयति प्रवृत्ते सति हव्यवाहनं हविषां वोढारमेतन्नामकमग्निमा जुहोत। आ समंताज्जुहोत। तथा दुवस्यत। परिचरत। वृणीध्वं। संभजध्वं च हव्यवाहनं। हव्यवाहननामकस्यैवाग्नेर्देवतासंबंधो यजमानैर्वरणीयत्वं च तैत्तिरीये स्पष्टमाम्नतं। त्रयो वा अग्नयो हव्यवाहनो देवानां कव्यवाहनः। पिहणां सहरक्षा असुराणां। त एतर्ह्याशंसंते मां वरिष्यते मामिति वृणीध्वं हव्यवाहनमित्याह य एव देवानां तं वृणीते। तै० सं० २.५.८.६.। इति।।

अन्वय–

प्रयति अध्वरेअग्नि दुवस्यत आ जुहोत। हव्यवाहनं वृणीध्वम्।

हिन्दी अनुवाद–

हे देवताओ! (प्रयति) इस प्रवृत्त होते हुये (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञ में (अग्निं) इस अग्नि देवता की (दुवस्यत) परिचर्या करो, (आ जुहोत) इसका सभी प्रकार मैं आहवान करो। (हव्यवाहनं) हवियों का वहन करने वाले उस अग्नि देवता को (वृणीध्वम्) तुम स्वीकार करो।

भावार्थ–

वह अग्नि देवता अन्य सब देवताओं के साथ यज्ञ में उपस्थित होता है। वह सब हवियों का वहन करता है। सबको उसका आह्वान करना चाहिये और उसको स्वीकार करना चाहिये।

७. सिकता नीवावरी

नवम मण्डल ८६ सूक्त, मन्त्र ११-२०

ऋषि - सिकता नीवावरी
देवता - पवमान सोम
छन्द - जगती

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका -

अथ पंचमे चानुवाक एकादश सूक्तानि। तत्र प्र त इत्यष्टाचत्वारिंशदृचं प्रथमं सूक्तं। प्रथमदशर्चस्याकृष्टा इति भाषा इति च द्विनामान ऋषिगणा द्रष्टारः। द्वितीयस्य दशर्चस्य सिकता इति नीवावरी इति द्विनामान ऋषिगणाः। तृतीयस्य दशर्चस्य पृश्नय इत्यजा इति च नामद्वयोपेता ऋषिगणाः। अदृष्टार्थमेषांद्विनामत्वमवगंव्यं। चतुर्थस्य दशर्चस्याकृष्टा भाषा इत्यादिद्विनामानस्त्रयो गणा द्रष्टारः। एवं चत्वारिंशदृताः। अथ पंचानां भौमोऽत्रिर्ऋषिः। ततस्तिसृणां गृत्समदः। जगती छंदः। पवमानः सोमो देवता तथा चानुक्रांतं। प्र तेऽष्टाचत्वारिंशदृषिगणा दशर्चा आकृष्टा भाषाः प्रथमे सिकता नीवावरी द्वितीये पृश्नयोऽजास्तृतीये त्रयश्चतुर्थेऽत्रिः पंचांत्यास्तिस्रो गृत्समद इति।। गतो विनियोगः।।

संहिता पाठ -

अभिक्रंदन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिंधुभिर्वृषा।।११।।

पद पाठ–

अभिऽक्रंदन् । कलशं । वाजी । अर्षति।

पतिः । दिवः । शतऽधारः । विऽचक्षणः।

हरिः । मित्रस्य । सदनेषु । सीदति ।

मर्मृजानः । अविऽभिः । सिंधुऽभिः । वृषा॥११॥

सायण भाष्य –

वाजी वेजनवान् गमनवानश्वसदृशो वा सोमोऽभिक्रंदञ्छब्दं कुर्वन्। गच्छति। कीदृशो वाजी। दिवः पतिर्द्युलोकस्य स्वामी शतधारः शतसंख्याकधारो विचक्षणो विद्रष्टा। हरिर्हरितवर्णो रसात्मकः सोमो मित्रस्य देवानां मित्रभूतस्य यज्ञस्य वा सदनेषु स्थानेषु सीदति पात्रेषु धृतः सन्। कीदृशो हरिः। सिंधुभिः स्यंदनसाधनैरविभिर्दशापवित्रच्छिद्रैर्मर्मृजानः शोध्यमानो वृषा वर्षकः॥

अन्वय –

अभिक्रन्दम् कलशम् वाजी अर्षति, दिवः पतिः शतधारः विचक्षणः, हरिः मित्रस्य सदनेषु सीदति, मर्मृज्ञानः अविभिः सिन्धुभिः वृषा।

हिन्दी अनुवाद –

(अभिक्रन्दन्) महान् शब्द करता हुआ, गरजता हुआ, (कलशम्) इस ब्रह्माण्ड रूपी कलश को (वाजी) वेगशाली अश्व के समान यह सोम (अर्षति) गति दे रहा है, (दिवः) द्युलोक का (पतिः) स्वामी है। (शतधारः) सैकड़ों प्रकार के आनन्दों का वह स्वामी है। (विचक्षणः) सम्पूर्ण लोकों का विशेष प्रकार से द्रष्टा है, (हरिः) सब शक्तियों को अपने अधीन रखने

वाला है। (मित्रस्य) प्रेम दृष्टि रखने वालों के (सदनेषु) हृदय रूप स्थानों पर (सीदति) वह विराजमान होता है। (मर्मृज्ञान:) सबका शोधन करता हुआ , वह (अविभि:) पवित्र (सिन्धुभि:) स्यन्दनशील जलधाराओं से (वृषा:) सबका सिंचन करता है।

भावार्थ –

वर्षा ऋतु के मेघ खूब गरजते हैं और अपनी वलशालिता से आकाश में जलों को खींच ले जाते हैं। वह परमात्मा स्नेहशील लोगों के हृदयरूप, सदन में अधिष्ठित रहता है। वह सब मलिनताओं का शोधन करता है और पवित्र नदियों द्वारा सम्पूर्ण धरा का सिंचन करता है।।११।।

संहिता पाठ –

अग्रे सिंधूनां पवमानो अर्षत्येग्रें वाचो अग्रियो गोषु गच्छति।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा।।१२।।

पद पाठ–

अग्रें । सिंधूनां । पवमानः । अर्षति।
अग्रें । वाचः । अग्रियः। गोषु । गच्छति।
अग्रें । वाजस्य । भजते । महाऽधनं।
सुऽआयुधः । सोतृऽभिः । पूयते । वृषा ।।१२।।

सायण भाष्य–

यः सोमः पवमानः सिंधूनां स्यंदमानानामुदकानामग्रेऽर्षति गच्छति। तथाग्रियोऽग्राईः श्रेष्ठोऽग्रे वाचो माध्यमिकाया अग्रेऽर्षति। तथा गोषु रश्मिषु

गच्छति। तथा वाजस्यान्नस्य बलस्य वा लाभाय महाधनं संग्रामं भजते। स स्वायुधो वृषा वर्षकः सोमः सोतृभिरभिषवकर्तृभिः पूयते॥

अन्वय –

पवमानः सिन्धूनाम् अग्रे अर्षति, वाचः अग्रियः अग्रे गोषु गच्छति, वाजस्य अग्रे महाधनम् यजते। स्वायुधः वृषा सोतृभिः पूयते।

हिन्दी अनुवाद –

(पवमानः) सबको पवित्र करता हुआ सोम (सिन्धूनाम्) स्पन्दनशील जलों के (अग्रे) सबसे आगे (अर्षति)चलता है। (वाचः) वाणियों का (अग्रिम) आगे जाने वाला सबसे श्रेष्ठ (अग्रे गच्छति) सबसे आगे चलता है। (गोषु) रश्मियों के मध्य में (गच्छति) चलता है। (वाजस्य) अन्न और बल के (अग्रे) समक्ष (महाधनम्) प्रचुर धन का (यजते) यजन करता है। (स्वायुधः)उत्तम अनन्त प्रकार के अपने आयुधों को रखने वाला (वृषा) वलवर्धक परमात्मा (सोतृभिः) अभिषव करके (पूयते) सबको पवित्र करता है।

भावार्थ–

सभी प्रकृति के विकारों का निर्माण परमेश्वर ने किया है। वह सब आनन्दप्रद पदार्थों की वर्षा करने वाला और सबको पवित्र करने वाला है। उसकी उपासना करनी योग्य है॥१२॥

संहिता पाठ –

अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितोऽव्यें ससार पवमान ऊर्मिणा।
तव क्रत्वा रोदसी अंतरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इंद्र ते ॥१३॥

पद पाठ–

अयं । मतऽवान् । शकुनः । यथा । हितः।
अव्यें । ससार । पर्वमानः । ऊर्मिणा।
तव । क्रत्वा । रोदसी इति । अंतरा । कवे।
शुचिः । धिया । पवते । सोमः । इंद्र । ते ॥१३॥

सायण भाष्य –

अयं सोमो मतवान् । मतं संमतं प्रियं स्तोत्रं। तद्वान् पवमानः पूयमानः सूयमानः शोध्यमानश्च सन् हितः प्रेरितः शकुनः पक्षी यथा शीघ्रं गच्छति तथाव्ये पवित्र ऊर्मिणा रसेन ससार गच्छति । हे कवे कांतप्रज्ञ । अनूचान वा ये वा अनूचानास्ते कवयः। ऐ.ब्रा. २.३८। इति श्रुतेः। तादृश यजमान यद्वोक्तलक्षणेंद्र ते तव क्रत्वा कर्मणा धिया प्रज्ञया च। यद्वा। विशेषणविशेष्यभावः। धिया धारकेण क्रत्वा कर्मणा। रोदसी अंतरा रोदस्योर्द्यावापृथिव्योरंतरा शुचिः सोमः पवते। पूयते॥

अन्वय –

अयम् मतवान् पवमानः सोमः शकुनो यथा हितः अव्ये ऊर्मिणा ससार कवे इन्द्रः तव क्रत्या ते धिया रोदसी अन्तरा शुचिः सोमः पवते।

हिन्दी अनुवाद –

(अयम्) यह (मतवान्) स्तुति किया जाता हुआ (पवमानः) पवित्र करता हुआ, शुद्ध किया जाता हुआ (सोमः) सोमलता नामक वनस्पति का रस (शकुनो यथा) एक पक्षी के समान (हितः) हितकारी होता हुआ (अव्ये) हे क्रान्तदर्शी (ऊर्मिणा) शक्ति और सामर्थ्य से (संसार) गति कर रहा है। हे कवे इन्द्र (तव)तुम्हारे (क्रत्वा) कर्म से और (ते) तुम्हारी (धिया) धारण

शक्ति से (रोदसी) भू लोक और पृथ्वी लोक के (अन्तरा) मध्य में (शुचिः) सबको पवित्र करने वाला (सोमः) सोमरस (पवते) सबको पवित्र कर रहा है।

भावार्थ –

परमात्मा सबको उनके कर्मों के अनुसार फल देता है। अतः मनुष्यों का कर्तव्य है कि वे शुद्ध और शुभ कर्म करें। सब मनुष्यों को उसके शुभ और पवित्र कर्मों के अनुसार फल मिलता है।।१३।।

संहिता पाठ–

द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमंतरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत्प्रत्नमस्य पितरमा विवासति।।१४।।

पद पाठ–

द्रापिं। वसानः। यजतः। दिविऽस्पृशं।
अंतरिक्षऽप्राः। भुवनेषु। अर्पितः।
स्वः। जज्ञानः। नभसा। अभि। अक्रमीत्।
प्रत्नं। अस्य। पितरं। आ। विवासति।।१४।।

सायण भाष्य –

दिविस्पृशं देवस्प्रष्टारं द्रापिं कवचं तेजोरूपं वसान आच्छादयन् यजतो यष्टव्योऽतरिक्षप्रा अंतरिक्षस्य पूरक उदकेन तादृशः सोमो भुवनेषूदकेष्वर्पितः स्वः सर्वं स्वेन पाययितव्यं देवसंघं स्वर्गं वा जज्ञानो जनयन्। अथवा। स्वरुदकं। तज्जनयन्। नभसोदकेनाभ्यक्रमीत्। अभिक्रामति। अस्योदकस्य पितरं पालकं प्रत्नं पुराणमिंद्रमा विवासति। परिचरति।।

अन्वय –

दिविस्पृशम् द्रापिं वसानः यजतः अन्तरिक्षप्राः भुवनेषु अर्पितः

स्वः जज्ञानः नभसा अभि अक्रमीत् अस्य पितरम् प्रत्नम् आ विवासति।

हिन्दी अनुवाद –

(दिविस्पृशम्) द्यूलोक को स्पर्श कराने वाले (द्रापिम्) उत्तम कर्म रूप कवच को (वसानः) शारीरिक रूप से आच्छादित करते हुए (यजतः) यजन करते हुए (अन्तरिक्षप्राः) अन्तरिक्ष की पूर्ति करने वाला परमात्मा रूप सोम (भुवनेषु) सब लोकों में (अर्पितः) व्याप्त है। (स्वः) स्वर्ग आदि लोकों को (जज्ञानः) उत्पन्न करते हुए (नभसा) सर्वव्यापक जल से (अपि अक्रमीत्) उसने आक्रान्त कर लिया है। (अस्य) इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का जो (पितरम्) पालन करने वाला जो (प्रत्नम्) प्राचीन इन्द्र देवता है उसको वह (अविवासति) अपना लक्ष्य बनाकर ग्रहण करता है।

भावार्थ –

स्वर्ग से अभिप्राय सुख की अवस्था विशेष को उत्पन्न करना है। मनुष्य के अपने कर्मों के द्वारा ही परम प्रभु उसके लिये स्वर्ग अर्थात् सुख विशेष की अवस्था को उत्पन्न करता है।।१४।।

संहिता पाठ–

सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे।
पदं यदस्य परमे व्योमन्यतो विश्वा अभि सं याति संयतः।।१५।।

पद पाठ–

सः। अस्य। विशे। महिं। शर्म। यच्छति।
यः। अस्य। धाम। प्रथमं। विऽआनशे।
पदं। यत्। अस्य। परमे। विऽओमनि।
अतः। विश्वाः। अभि। सं। याति। संऽयतः।।१५।।

सायण भाष्य –

स सोमोऽस्येंद्रस्य विशे प्रवेशनाय महि महच्छर्म सुखं यच्छति। यः सोमोऽस्येंद्रस्य धाम तेजोयुक्तं शरीरं प्रथममितरदेवप्राप्तेः पूर्व व्यानशे प्राप्तवान्। यद्यस्यास्य सोमस्य परमे महत्युत्कृष्टे व्योमनि विशेषेण रक्षके द्युलोके वेद्यां वा पदं भवति। अतो यस्मात्सोमात्तृप्त इंद्रः सोमः स्वयं वा विश्वाः संयतः सर्वान् संग्रामानभि याति सम्यगभिगच्छति। स सोमो महि शर्म यच्छतीति संबंधः।

अन्वय –

सः अस्य विशे महि शर्म यच्छति, यः अस्य धाम प्रथमं व्यानशे अस्य यत् पदं अस्य परमे व्योमनि, अतः विश्वा संयतः अभि सयातिः।

हिन्दी अनुवाद –

(सः) वह परमात्मा (अस्य) इस इन्द्र देवता के (विशे) प्रवेश के लिये अपना इसके शरणागत होने पर (महि) महान् (शर्म) सुख को (यच्छति) प्रदान करता है। (यः) जो परमात्मा (अस्य) इस सोमरस के (धाम) स्वरूप को तेज को (प्रथमं) सबसे पहले ही (व्यानशे) प्राप्त किये हुए हैं। (यत्) जो (पदं) स्थान (अस्य) इस परमात्मा के (परमे) महान् उत्कृष्ट (व्योमनि) विशेष द्युलोक में फैला हुआ है। (अतः) इसलिये (विश्वा) सभी प्रकार से (संयतः) संयमी होकर वह (अभि संयाति) सम्यक् प्रकार से सत्कर्मों को प्राप्त होता है।

भावार्थ–

यह सर्वव्याप्य विष्णु पद से अभिव्यक्त परमात्मा के परम पद पर किया गया है। सोमरस का आस्वादन करके जीवात्मा विष्णु स्वरूप परमात्मा के परम पद को प्राप्त करता है।।१५।।

संहिता पाठ–

प्रो अयासीदिंदुरिंद्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरं।
मर्यं इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशें शतयाम्ना पथा॥१६॥

पद पाठ–

प्रो इति । अयासीत । इंदुः। इंद्रस्य । निःऽकृतं।
सखा । सख्युः । न । प्र । मिनाति । संऽगिरं।
मर्यःऽइव । युवतिऽभिः । सं । अर्षति। सोमः।
कलशें। शतऽयाम्ना । पथा॥१६॥

सायण भाष्य –

इंदुः सोम इंद्रस्य निष्कृतं स्थानमुदरं प्रो अयासीत्। प्रैव गच्छति। गत्वा च सखा सखिभूतः सोमः सख्युरिंद्रस्य संगिरं सम्यग्गिरणाधारभूतमुदरं न प्र मिनाति। न हिनस्ति। किंच मर्य इव युवतिभिर्मर्त्यो यथा युवतिभिः सह संगतो भवति तद्वदयमपि सोमो युवतिभिर्मिश्रणशीला-भिर्वसतीवरीभिरद्भि सह समर्षति। संगच्छतेऽभिषवकाले। पश्चात्सोमः शतयाग्ननेकयानसाधनच्छिद्रोपेतेन पथा मार्गेणयं दशापवित्रसंबंधिनि कलशे द्रोणकलशे गच्छतीति शेषः। यद्वा। एकमेव वाक्यं । यथा मर्यो युवतिभिः सह संगच्छते एवं कलशे शतयाम्न पथा संगच्छतेऽद्भिः॥

अन्वय–

इन्दुः इन्द्रस्य निष्कृतम् प्रो अयासीत्, सख्युः न सखा संगिरम् प्रमिनाति। युवतिभिः मर्यः इन कलशे शतधाम्ना पथा सोमः समर्षति।

हिन्दी अनुवाद –

(इन्दुः) सबको प्रकाशित करने वाला सोम (इन्द्रस्य) सर्वशक्तिमान

परमात्मा के (निष्कृतम्) स्थान को (प्रोअयासीत्) अच्छी प्रकार प्राप्त होता ही है। (सख्युः) मित्र के (न) समान (सखा)मित्र (संगिरम्) आधारभूत उत्तम वाणी को (प्रमिनाति) प्रमाणित करता ही है। (युवतिभिः) युवती स्त्रियों द्वारा (मर्यः) पुरुषों की मर्यादा मर्यादित की ही जाती है और (कलशे) ब्रह्माण्ड रूपी कलश में (शतधाम्ना) सैकड़ों प्रकाश और साधन सम्पन्न मार्गों से (सोमः) सोम रस (समर्षति) प्राप्त हो ही जाता है।

भावार्थ–

जिस प्रकार स्त्रियां अपने सदाचार से पुरुषों को मर्यादा में बांधती हैं उसी प्रकार परमात्मा अनेक प्रकार से वैदिक मर्यादाओं को स्थापित करके महापुरुषों द्वारा सामाजिक मर्यादाओं की अवस्था को बांधते हैं, उनको गति देते हैं॥१६॥

संहिता पाठ –

प्र वो धियों मंद्रयुवों विपन्युवंः पनस्युवंः संवसंनेष्वक्रमुः।
सोमं मनीषा अभ्यंनूषत स्तुभोऽभि धेनवंः पयंसेमशिश्रयुः॥१७॥

पद पाठ–

प्र । वः । धियंः । मंद्रऽयुवंः । विपन्युवंः।
पनस्युवंः । संऽवसंनेषु । अक्रमुः।
सोमं । मनीषाः । अभि । अनूषत।
स्तुभंः। अभि। धेनवंः। पयंसा। ईं। अशिश्रयुः॥१७॥

सायण भाष्य –

हे सोम वो युष्माकं धियो ध्यातारो मंद्रयुवो मदकरं शब्दं कामयमानाः पनस्युवः स्तुतिं कामयमाना विपन्युवः। स्तोतृनामैतत्। स्तोतारः संवसनेषु

संवासयोग्येषु यागगृहेषु प्राक्रमु:। प्रक्रमंते। तदेवाह। सोमं मनीषा मनस ईश्वरा: स्तुभ: स्तोतारोऽभ्यनूषत। अभिष्टुवंति। धेनवोऽपि पयसा स्वीयेनेमेनं। सोममभ्यशिश्रयु:। अभिश्रीणंति॥

अन्वय –

व: प्रधिय: मन्द्रयुव: विपन्युव: पन्युव: संवसनेषु अक्रमु: सोमं मनीषा अभ्यनूषत, स्तुभ: अभि धेनन: पयसा ईम् अशिश्रयु:।

हिन्दी अनुवाद –

(व: प्रधिय:) हे सोम! तुम्हारा ध्यान करने वाले (मन्द्रयुव:) आनन्द देने वाले शब्द की कामना करते हुए (विपन्युव:) उपासना करने वाले (पन्युव:) स्तुति की कामना करने वाले उपासक (संवसनेषु) उपासना स्थलों में (अक्रमु:) प्रवेश करते हैं। (सोमम्) सोम रस में (मनीषा:) मन को बुद्धि को लगाने वाले (अभ्यनूषत) उसी प्रकार से बुद्धियों को लगाते हैं जैसे कि (स्तुभ: अभि) सेवा करने वालों के प्रति (धेनव:) इन्द्रियां रूप गौयें (पयसा) दूध रूपी कर्मों से (इम् अशिश्रयु:) उनका आश्रय लेती हैं।

भावार्थ –

जो मनुष्य समाहित चित्त होकर परमेश्वर का ध्यान करते हैं, उनकी चित्तवृत्तियां उस ईश्वर की ओर अभिमुख हो जाती हैं। उन मनुष्यों की इन्द्रियां और मन ईश्वर की ओर झुक जाते हैं॥१७॥

संहिता पाठ–

आ न: सोम संयतं पिप्युषीमिषमिंदो पवस्व पवमानो अस्रिधं।
या नो दोहते चिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यं॥१८॥

पद पाठ

आ। न॒ः। सो॒म॒। सं॒ऽयतं॑। पि॒प्युंषीं॑। इषं॑।
इंदो॒ इति॑। पवं॑स्व। पवं॑मानः। अ॒स्रिधं॑।
या। न॒ः। दोहं॑ते। त्रिः। अहं॑न्। अ॒सं॑श्चुषी।
क्षु॒ऽमत्। वाजऽवत्। मधुऽमत्। सु॒ऽवीर्यं॑ ॥१८॥

सायण भाष्य

हे इंदो दीप्त सोम पवमानस्त्वं नोऽस्माकं संयतं संगृहीतं पिप्युषीं प्रवृद्धमिषमन्नमस्त्रिधमक्षीणं पवस्व। प्रयच्छेत्यर्थः। या यादृशी नोऽस्माकमहन्नहन्यहस्त्रिस्त्रिषु सवनेष्वसश्चुष्यप्रतिबंधा दोहते क्षरति। किं। क्षुमच्छब्दोपेतं सर्वत्र श्रूयमाणं वाजवद्बधुमद्वाधुर्योपेतं सुवीर्य शोभनसामर्थ्य पुत्रं दोहते। तामिषं पवस्वेति समन्वयः॥

अन्वय-

सोम इन्दो पवयानः नः संयतम्। पिप्युषीम् इषम् अस्रिधम् आपवस्व। या नः त्रिरहन् असश्चक्षुषी क्षुमत् वाजवत् मधुमत् सुवीर्यम् दोहते।

हिन्दी अनुवाद-

(सोम) हे सोम! (इन्दो!) प्रकाशमान दीप्तिशीली सोम (पवमानः) सबको पवित्र करते हुए आप (नः) हमारे (संयतम्) संग्रहीत (पिप्युषीम्) वर्धनशील (अस्रिधम्)अक्षम (इषम्) ऐश्वर्य को अन्न को (आपवस्व) सब ओर से पवित्र कीजिये। (या) जो (नः) हमारे लिये (त्रिरहन्) तीनों कालों में-भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों समयों में (असश्चक्षुषी) प्रतिबन्ध रहित

होकर (क्षुमत्) क्षु शब्द से युक्त होकर (वाजमत्) बल से युक्त होकर (मधुमत्) माधुर्य से युक्त होकर (सुवीर्यम्) शोमन सामर्थ्य से युक्त होकर (दोहते) परिपूर्ण किया जाता है।

भावार्थ-

नियम के अनुकूल व्यवहार करने वाले पुरुषों को परमात्मा वृद्धिशील अरूप ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। उनका यह ऐश्वर्य कान्तिमान्, बलशाली, माधुर्य से भरा हुआ और सामर्थ्यशाली होता है।।१८।।

संहिता पाठ-

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसों दिवः।
क्राणा सिंधूनां कलशाँ अवीवशदिंद्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ।।१९।।

पद पाठ-

वृषा। मतीनां। पवते। विऽचक्षणः।
सोमः। अह्नः। प्रऽतरीता। उषसः। दिवः।
क्राणा। सिंधूनां। कलशान् अवीवशत्।
इंद्रस्य। हार्दि। आऽविशन्। मनीषिऽभिः।।१९।।

सायण भाष्य-

अयं सोमः पवते। अभिषूयते। कीदृशः सोमः। मतीनां। मतयः स्तोतारः। तेषां वृषा वर्षकः कामानां विचक्षणो विद्रष्टा अह्न उषसो दिवो द्युलोकस्यादित्यस्य वा प्रतरीता प्रवर्धयिता। किंच सिंधूनां स्यंदमानानामुदकानां क्राणा कर्ता।। करोतेः शानचि बहुलं छंदसीति विकरणस्य

लुक। सुः। सुपां सुलुगित्याकारः।। कलशानवीवशत्। कामयते प्रवेष्टुं। किं कुर्वन्। इंद्रस्य हार्दि हृदयमाविशन् प्रविशन् मनीषिभिः स्तुत इति शेषः। यद्वा। व्यवहितमपि मनीषिभिरित्येतत्पवत इत्यनेन संबध्यते।।

अन्वय

मतीनाम् वृषा मनीषिभि इन्द्रस्य हार्दि आविशन् सिन्धूनां क्राणा कलशान् अवीवशत् अह्नः उषसः दिवः प्रतरीता चिक्षक्षणः सोमः पवते।

हिन्दी अनुवाद–

(मतीनाम्)स्तुति करने वालों की कामनाओं की (वृषा) वर्षा करने वाला उनको पूरा करने वाला (मनीषिभिः) मनीषी विद्वानों द्वारा (इंद्रस्य) कर्मयोगी मनुष्य के (हार्दि) हृदय में (आविशन्) प्रवेश करता हुआ, (सिन्धूनाम्) स्यन्दनशील तत्वों का (क्राणा) सम्पादन करने वाला (कलशान्) योगी जनों के हृदय रूप कलशों में (अवीवशत्) प्रवेश करने की चेष्टा करता हुआ, (अह्नः) दिन का (उषसः) उषा का (दिवः) द्यु लोक का (प्रतरीता) जो कि वृद्धि करने वाला है वह (विचक्षणः) वह सर्वज्ञ परमेश्वर (पवते) सबको पवित्र करता है।

भावार्थ–

वह परमेश्वर सब पवित्र अन्तःकरण मनुष्यों की चिन्ता निरन्तर सुख समृद्ध करता है और अधिकाधिक चिरन्तर पवित्र करता है।।१९।।

संहिता पाठ–

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत्।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरदिंद्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे।।२०।।

पद पाठ–

मनीषिऽभिः। पवते। पूर्व्यः। कविः।
नृऽभिः। यतः। परि। कोशान् । अचिक्रदत्
त्रितस्य। नाम। जनयन्। मधु। क्षरत्।
इंद्रस्य। वायोः। सख्याय। कर्तवे॥२०॥

सायण भाष्य

अयं सोमो मनीषिभिर्मेधाविभिरध्वर्य्वादिभिः पवते। पूयते। यद्वा। अयं मनीषिभिर्मनीषिणीभिर्धाराभिः पवते। क्षरति। कीदृशोऽयं। पूर्व्यः पुराणः कविर्मेधावी नृभिर्नेतृभिरध्वर्य्वादिभिर्यतो नियमितः सन् कोशान कलशान्प्रासं पर्यचिक्रदत्। परिक्रंदते। त्रितस्य त्रिषु स्थानेषु विस्तृतस्येंद्रस्य संबंधि नाम नाममुदकं जनयन्नुत्पादयन् मधुरं रसं क्षरत्। क्षरति। किमर्थम्। इंद्रस्य वायोश्च सख्याय कर्तवे सख्यं कर्तुं॥

अन्वय–

मनीषिभि पवते पूर्व्यः कविः नृभिः यतः कोशान् परि अधिक्रदत्। त्रित्तस्य नाम जनयन्, मधु क्षरत्, इन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे।

हिन्दी अनुवाद–

(मनीषिभिः)मनीषियों विद्वानों और मेधावियों द्वारा उस सोम को (पवते) पवित्र किया जाता है। वह (पूर्व्यः) प्राचीन है (कविः) क्रान्तदर्शी है, (नृभिः) नेतृत्व करने वाले होता आदि के द्वारा (यतः)नियमित किया जाता है अतः (कोशान्) प्रकृति के कोशों को (परि अधिक्रदत्) परिपूर्ण करता है, (त्रितस्य) तीनों लोकों में विस्तृत इन्द्र के (नाम) यश को (जनयत्) उत्पन्न करता हुआ

(मधु) मधुर रस आनन्द की (क्षरत्) वर्षा करता है। (इन्द्रस्य) सर्वशक्तिशाली इन्द्र की (वायोः) सबको गति और प्राण देने वाले वायु देवता की (सख्याय) मैत्री (कर्तवे) कराने के लिये रस की वर्षा करता है।

भावार्थ-

अन्तर्यामी परमात्मा के गुणों को धारण करने से इन सब गुणों का आधान परम उपासकों में होता है और वे परमात्मा से एकरूपता को प्राप्त होते है।

इस प्रकार सिकता नीवावरी ऋषिका द्वारा श्रृग्वेद नवम मण्डल के ८६ वें सूक्त में ११-२० मन्त्रों का दर्शन किया गया था॥२०॥

****

८. इन्द्रस्नुषा वसुक्रपत्नी

दशम मण्डल २८ वां सूक्त, मन्त्र १-१२

ऋषि-इन्द्रस्नुषा-वसुक्रपत्नी

देवता-इन्द्र

छन्दः -त्रिष्टुप्

सूक्त की सायणकृत पूर्वभूमिका-

विश्वोः दीति द्वादशर्च सूक्तं त्रैष्टुभं। इन्द्रवसुक्रयोः पित्रापुत्रयोः संवादोऽत्र क्रियते। पुरा वसुक्रे यज्ञं कुर्वाणे सतींद्रः प्रच्छन्नरूप आजगाम। तं वसुक्रपत्नींद्रागमनाकांक्षिणी विप्रकृष्टमिवाद्ययास्तौत् । अतस्तस्याः सर्षिः इंद्रो देवता। अथ तस्याः प्रीत्यै वसुकेण सहेंद्रः संवादमकरोत्। द्वितीयादियुजश्चतुर्थीरहिताः पंचर्च इंद्रवाक्यानि। अतस्तासां स ऋषिः। यद्यप्यासु वसुक्रः संबोध्यत्वाद्देवता तथापि ता ऋच ऐंद्रे कर्मणि विनियोक्तव्या इंद्रलिंगसद्भावात्। चतुर्थीसहिताः शिष्टास्तृतीयाद्या वसुक्रवाक्यानि। अतः स ऋषिस्तासां इंद्रो देवता। तथा चानुक्रांतं। विश्वो हि द्वादशेंद्रवसुक्रयोः संवाद ऐंद्रः सूक्तस्य प्रथमयेंद्रस्य स्नुषा परोज्ञवदिंद्रमाहेंद्रस्य युजः शेषा ऋषेश्चतुर्थी चेति॥ यतो विनियोगः ॥

संहिता पाठ-

विश्वो ह्य१ न्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम।

जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात्स्वाशितः पुनरस्तं जगायात्॥१॥

पद पाठ-

विश्वः। हि। अन्यः। अरिः। आऽजगाम।
मम। इत्। अह। श्वशुरः। न। आ। जगाम।
जक्षीयात्। धानाः। उत। सोमं। पपीयात्।
सुऽआशितः। पुनः। अस्तं। जगायात् ॥१॥

सायण भाष्य-

अनया वसुक्रपत्नींद्रं स्तौति। अन्य इंद्रव्यतिरिक्तोऽरिरर्य ईश्वरो विश्वो हि सर्व एव देवगण आजगाम। अस्मद्यज्ञं प्रत्याययौ। इदित्यवधारणे। अहेत्यद्भुते। सर्वदेवगण आगते सति ममैव श्वशुर इंद्रो ना जगाम। स इंद्रो यद्यागच्छेत् तर्हि धाना भृष्टयवाञ्जक्षीयात्। भक्षयेत्। उतापि च सोममभिषुतं पपीयात् पिबेत्। ततः स्वाशितः सुष्ठु भुक्तस्तृप्तः सन् पुनर्भूयोऽस्तं स्वगृहं प्रति जगायात्। गच्छेत्॥

अन्वय -

हि अन्यः विश्वः अरिः आजगाम्, अह मम इत् श्वसुरः न आजगाम। धानाः जक्षीयात् उत सोमं पपीयात् पुनः सु आशितः अस्तं जगायात्।

हिन्दी अनुवाद -

(हि) निश्चय से क्योंकि (अन्यः) दूसरे (विश्वः) सभी (अरिः) स्वामी सगे सम्बन्धी (आजगाम) इस यज्ञवेदी पर सभागृह में आ गये हैं, (अह) बहुत आश्चर्य है कि (मम)मेरे (श्वसुरः) श्वसुर सम्बन्धी मुख्य अतिथि (न) नहीं (आजगाम) आये हैं। यह बात उचित प्रतीत नहीं होती है, उन्हें अवश्य आना चाहिए और वे आवें। (धानाः) आकर भुने हुए धानों को वे (जक्षीयात्) खावें

(उत) और (सोमं) इस यज्ञ में सोम रस का, उत्तम पेय रस (पपीयात्) पान करें। पुनः उसके पश्चात् (सु) अच्छी प्रकार से (आशितः) खा-पीकर (अस्तं) अपने घर (जगायात्) वापस चले जावें।

भावार्थ-

इन्द्र के पुत्र वसुक्र के घर में यज्ञ का आयोजन है। यहां इन्द्र का आवाहन किया गया है। वसुक्र की पत्नी इन्द्र की पुत्रवधु (इन्द्रस्नुषा) है। इन सब अतिथियों को आया देखकर और इन्द्र को न आया देखकर वह दु:खी होकर कहती हैं कि अन्य सब तो आ गये हैं, पर मेरे श्वसुर नहीं आये। वे आवें और अच्छी प्रकार से खा पीकर सन्तुष्ट होकर जावें।

वैदिक युग में भुने धानों का भोजन और उसके साथ सोमरस का पान मान्य अतिथियों के लिये उत्तम समझा जाता था। ऋषि दयानन्द का इस सूक्त के सम्बन्ध में अभिप्राय है कि यह सूक्त राजा के राजकार्यों तथा प्रजा के रक्षात्मक कार्यों से संबंधित है॥१॥

संहिता पाठ-

स रोरुवद्वृषभस्तिग्मशृंगो वर्ष्मन्तस्थौ वरिमन्ना पृथिव्याः।
विश्वेष्वेनं वृजनेषु पामि यो मे कुक्षी सुतसोमः पृणाति॥२॥

पद पाठ-

सः। रोरुवत्। वृषभः। तिग्मऽशृंगः।
वर्ष्मन्। तस्थौ। वरिमन्। आ। पृथिव्याः।
विश्वेषु। एनं। वृजनेषु। पामि।
यः। मे। कुक्षी इति। सुतऽसोमः। पृणाति॥२॥

सायण भाष्य –

वृषभः कामानां वर्षिता तिग्मश्रृंगस्तीक्ष्णरश्मिः स इंद्रोऽहं पृथिव्या अंतरिक्षस्य वर्ष्मन् वर्ष्मणि। वर्ष्मञ्शब्द उन्नतवचनः स्थिरवचनो वा। एवंभूते वरिमन् विस्तीर्णे प्रदेशे रोरुवद्भृशं शब्दायमानः सन्ना तस्थौ। आतिष्ठामि। एवंभूतोऽहं विश्वेषु वृजनेषु संग्रामेष्वेनमीदृशं वसुक्रं यजमानं पामि। रक्षामि। यो यजमानः सुतसोमोऽभिषुतसोमो मे मम कुक्षी उभौ पार्श्वौ पृणाति सोमरसपुरोडाशादिहविर्भिः पूरयति। ईदृशं रक्षामीति संबंधः।

अन्वय –

सः तिग्मशृङ्गः वृषभः पृथिव्याः वरिमन् नः वर्ष्मन् आ तस्थौ। यः सुतसोमः मे कुक्षी पृणाति। यः मे विश्वेषु बृजनेषु पामि।

हिन्दी अनुवाद –

(सः) वह (तिग्मशृङ्गः) तीखे सींगों वाला, तेज शस्त्र वाला (वृषभः) समस्त कामनाओं की वर्षा करने वाला सब सुखों को देने वाला इन्द्र (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरिमन्) विशाल (वर्ष्मन) विस्तीर्ण प्रदेश पर (आ तस्थौ) आकर स्थित होता है। (यः) जो कि (सुतसोमः)सोमरस आदि पदार्थों का स्त्रवण करके, अच्छी प्रकार से तैयार करके (मे) मेरी (कुक्षी) कुक्षी को (पृणाति) पूर्ण करता है, तृप्त करता है (यः मे) इसकी (विश्वेषु) सभी (बृज्जनेषु) युद्धों में (पामि) मैं रक्षा करता हूं।

भावार्थ –

इस सूक्त में ऋषि दयानन्द के अनुसार राजधर्म का उपदेश किया गया है। राजा के आयुध तीक्ष्ण होते हैं, वह प्रजाजनों को सब प्रकार से सुखी करता है। वह प्रजाजनों को सोम आदि पदार्थों को प्राप्त कराता है तथा प्रजाजनों से सहायता पाकर युद्धों में सभी की रक्षा करता है।

संहिता पाठ–

अद्रिणा ते मंदिनं इंद्र तूयान्त्सुन्वंति सोमान्पिबसि त्वमेषां।
पचंति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन्हूयमानः॥३॥

पद पाठ–

अद्रिणा । ते। मंदिनः। इंद्र। तूयान्।
सुन्वंति । सोमान् । पिबसि । त्वं । एषां।
पचंति । ते । वृषभान्। अत्सि। तेषां।
पृक्षेण । यत् मघऽवन्। हूयमानः ॥३॥

सायण भाष्य –

हे इन्द्र ते त्वदर्थं मंदिनो मादयितृंस्तूयानविलंबितान्सोमान-द्रिणाभिषवग्राव्णा सुन्वंति। यजमाना अभिषुण्वंति। एषामस्मदादियजमानानां संबंधिनः सोमांस्त्वं पिबसि। किंच त्वदर्थं वृषभान्पशून्ये च यजमानाः पचंति तेषां संबंधिनो हविर्भूतान्पशूनत्सि। भक्षयसि। हे मघनवन्धनवन्निंद्र त्वं यदा पृक्षेण हविर्भूतेनान्नेन निमित्तेन हूयमानः यजमानैर्हूयसे तदेति पूर्वेण संबंधः।

अन्वय –

इन्द्र ते मन्दिनः तूयान् सोपान् अद्रिणा सुन्वन्ति। एषां त्वं पिबसि। मघवन् पृक्षेण हूयमानः ते वृषभान् पचन्ति, तेषां त्वं अत्सि।

हिन्दी अनुवाद –

(इन्द्र) हे इन्द्र देवता (ते) तेरे लिये (मन्दिनः) हर्ष देने वाले (तूयान्) शीघ्र पचने वाले (सोमान्) सोम आदि औषधियों को (अद्रिणा) पाषाण आदि उपकरणों से हम (सुन्वन्ति) स्रवण करते हैं, पका कर तैयार करते हैं।

(तेषां) इन सोम आदि औषधियों का तुम (पिबसि) पान करते हो। (मघवन्) सुख की वर्षा करने वाले हे धन के स्वामिन् इन्द्र ! (पृक्षेण) स्नेह से (हूयमानः) पुकारे जाते हुए (ते) तुम्हारे लिये हम बल देने वाली (वृषभान्) औषधि को (पचन्ति) पकाते हैं और (तेषां) उन औषधियों को (त्वं अत्सि) तुम खाते हो।

भावार्थ -

वसुक्र पत्नी द्वारा आवाहन किया जाने वाला इन्द्र उस यज्ञ में अपनी पुत्रवधु के घर में उपस्थित होकर सोमरस आदि पुष्टिवर्धक औषधि का उपयोग प्रसन्नता से करता है और वृषभ नामक बल्य औषधि को खाकर उस परिवार को प्रसन्न करता है।।३।।

संहिता पाठ-

इ॒दं सु मे॑ जरित॒रा चि॑किद्धि प्रती॒पं शापं॑ न॒द्यो॑ वहंति।

लो॒पा॒शः सि॒हं प्र॒त्यंच॑मत्साः क्रो॒ष्टा व॑रा॒हं निर॑तक्त॒ कक्षा॑त् ।।४।।

पद पाठ-

इ॒दं । सु । मे॒ । ज॒रि॒त॒ः। आ । चि॒कि॒द्धि॒।

प्र॒ति॒ऽई॒पं । शापं॑ । न॒द्यः॑ व॒हं॒ति॒।

लो॒पा॒शः । सि॒हं। प्र॒त्यंचं॑ । अ॒त्सारि॑ति॑। क्रो॒ष्टा।

व॒रा॒हं । निः अ॒त॒क्त॒ । कक्षा॑त्।।४।।

सायण भाष्य -

हे जरितः शत्रूणां जरयितरिंद्र त्वं मे मम सु शोभनमपीदमीदृशं रूपं सामर्थ्यमा चिकिद्धि। आ समंताज्जानीति। कीदृशं। नद्यो गंगाद्याः सरितः

प्रतीपं प्रतिकूलं शापमुद्रकं वहंति। अपि च लोपाशः। लुप्यमानं तृणमश्नातीति लोपाशो मृगः। मया प्रेषितः सन् प्रत्यंचमात्मानं प्रति गच्छंतं सिंहमत्साः। अत्सारीत्। आभिमुख्येन गच्छति। तथा क्रोष्टा श्रृगालो वराहं बलवंतमपि सूकरं कक्षादतिगहनदेशान्निरतक्त। निर्गमयति। एतदपि सर्वं सामर्थ्यं त्वत्पुत्रे मयि त्वत्प्रसादाल्लब्धमपि जानीहीत्यर्थः।

अन्वय –

जरितः मे इदं सु चिकिद्धि, नद्यः प्रतीपं शापं वहन्ति, लोपाशः प्रत्यञ्चम् सिंहं अत्साः क्रोष्टाः वराहं कक्षात् निरतक्त।

हिन्दी अनुवाद –

(जरितः) स्तुति करने वाले हे स्तोता यजमान (मे) मेरे (इदम्) इस कथन को (सु) अच्छी प्रकार से (चिकिद्धि) तुम जान लो कि जिस प्रकार से (नद्यः) नदियां (शापम्) जल को (प्रतीयम्) उल्टी दिशा में (वहन्ति) बहाने लगती हैं, उसी प्रकार (लोपाशः) घास खाने वाले मृग आदि पशु मेरे द्वारा प्रेरित किये जाकर (प्रत्यञ्चम्) उनके ऊपर आक्रामक होने वाले (सिंहम्) सिंह का भी (अत्साः) सामना करते हैं और (क्रोष्टाः) गीदड़ (वराहं) बलशाली सूअर को भी (कक्षात्) उस वन प्रदेश से (निरनक्त) भगा देता है।

भावार्थ –

सम्मान के साथ आवाहन किया गया इन्द्र अपनी पुत्रवधु वसुक्र पत्नी से कहता है कि तुम मेरी स्तुति कर रही हो। अतः तुम मेरे प्रभाव को अच्छी प्रकार समझ लो कि मेरे प्रभाव से नदियां भी जल को विपरीत दिशा में बहाने लगती हैं। घास खाने मृग सिंह पर आक्रमण करते हैं और गीदड़ भी सुअर को वन प्रदेश से बाहर निकाल देते हैं। अतः मेरी स्तुति करने से तुम इस प्रभाव से युक्त हो जाओगी।

संहिता पाठ–

कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्संस्य पार्कस्तवसों मनीषां।

त्वं नों विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः॥५॥

पद पाठ–

कथा । ते । एतत्। अहं । आ । चिकेतं।

गृत्संस्य । पार्कः । तवसः । मनीषां।

त्वं । नः। विद्वान्। ऋतुऽथा। वि । वोचः।

यं । अर्धं । ते मघऽवन्। क्षेम्या। धूः॥ ५॥

सायण भाष्य –

हे इंद्र पाकः पक्तव्यप्रज्ञोऽहं गृत्सस्य मेधाविनस्तवसो वृद्धस्य ते तव मनीषां स्तुतिं। कर्तुमिति शेषः। एतदीदृशं त्वदीयं सामर्थ्यं कथा कथं केन प्रकारेणा चिकेतं। आ सामंताज्जानामि। त्वदुपदेशं विना न जानामीत्यर्थः। तस्मात्कारणाद्विद्वान्। सर्वज्ञस्त्वमेव नोऽस्मभ्यमृतुथा काले काले वि वोचः। विशेषेण ब्रूहि। मे मघवन्धनवन्निंद्र ते तवार्धं यं स्तुत्यवयवं कुर्मः सा स्तुतिर्धूः क्षेम्या क्षेमे भवा क्लेशरहिता वोढुं शक्यास्ति। यस्मात्तव स्तुत्यवयवमेव वयमक्लेशेन कर्तं न शक्नुमोऽस्माकं मंदबुद्धित्वात् तस्मात्त्वमेवास्मभ्यं स्वसामर्थ्यं स्तुतिप्रकारं च पुनरपि कथयेत्यर्थः॥

अन्वय –

मघवन् गृत्सस्य तवसः, ते एतत् मनीषां पाकः अहम् कथा आचिकेतम् विद्वान् त्वं ऋतुथा आ विवोचः यम् अर्धम्, क्षेम्या धूः।

हिन्दी अनुवाद –

(मघवन्) ऐश्वर्यशाली यज्ञ करने वाले हे यजमान (गृत्सस्य) प्रशंसनीय और (तवसः) शक्तिशाली (ते) तुम्हारे (एतत्) इस प्रभाव को और (मनीषाम्) बुद्धि और मनोरथ को (पाकः) परिपक्व बुद्धि वाला भी (अहम्) मैं (कथा) किस प्रकार से (आचिकेतम्) आकर जान सकता हूं। (विद्वान्) सब कुछ जानने वाला (त्वम्) तू ही (ऋतुथा) सब ऋतुओं में समय-समय पर (नः) हमको (विवोचः) बताते रहा करो, (यम्) तुम्हारे जिस (अर्धम्) अंश की मैं प्रशंसा करता हूं, वह (क्षेम्या) कल्याणकारक (धूः) आश्रय है।

भावार्थ-

आवाहन किये जाने पर यज्ञवेदी पर उपस्थित हुआ इन्द्र अपनी स्नुषा की प्रशंसनीय स्तुति और शक्ति की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि तुम ही सब कुछ जानती हो, तुम्हारी कामना क्या है। यह तुम ही बता सकती हो। तुम मुझे ऋतु के अनुसार बताओ। तुम्हारा जो कथन का अंश है, वह ही तुम्हारा कल्याणकारी आश्रय है।।५।।

संहिता पाठ-

एवा हि मां तवसं वर्धयंति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान।।६।।

पद पाठ-

एव । हि । मां । तवसं । वर्धयंति।
दिवः । चित्। मे । बृहतः । उत्ऽतरा धूः।
पुरू । सहस्रा । नि। शिशामि । साकं।
अशत्रुं । हि । मा । जनिता । जजान ।।६।।

सायण भाष्य –

हि यस्मात्कारणादेवैवमुक्तप्रकारेण तवसं प्रवृद्धं मां स्तोतार: स्तुतिभि: स्तुवंतो वीर्येण वर्धयंति तस्मात्कारणाद्वृहतो महतो मे ममेंद्रस्य दिवश्चिद्युलोकादपि धू: स्तुतिरुत्तरोत्तराधिकतरा। किंच पुरू पुरूणि बहूनि सहस्रा शत्रूणां सहस्राणि साकं युगपन्नि शिशामि। तनूकरोमि। हिनस्मीत्यर्थ:। हि यस्मात्कारणाज्जनिता सर्वस्य जनयिता प्रजापतिर्मा मामिंद्रमशत्रुमविद्य-मानशत्रुं जजान जनितवान्।।

अन्वय–

एव हि तवसं मां वर्धयन्ति वृहत: मे दिव: चित् उत्तरा धू: पुरू सहस्रा साकं नि शिशानि जनिता म अशत्रुं जजान।

हिन्दी अनुवाद–

(एव हि) इस प्रकार निश्चय से (तवसं) शक्तिशाली (मा) मुझको सब पारिवारिक उपस्थितजन (वर्धयन्ति) उत्साहित कर बढाते हैं तथा (वृहत:) महान् होते हुये (मे) मेरी (दिव: चित्) द्यु लोक में स्थित सूर्य से भी (उत्तरा) अधिक (धू:) धारणात्मक शक्ति है। (पुरू सहस्रा) मैं हजारों शत्रुओं को (साकं) एक साथ (निशिशामि) नष्ट कर सकता हूँ। (जनिता) सबको उत्पन्न करने वाला परमात्मा (मा) मुझको (अशत्रुं) शत्रुओं से रहित (जजान) कर देना है।

भावार्थ –

तब इन्द्र अपनी पुत्रवधु वसुक्रपत्नी से कहता है कि लोग प्रबल शक्तिशाली मुझको मेरी स्तुति करके बढ़ाते हैं और मेरी धारणा शक्ति सूर्य से भी अधिक है। मैं हजारों शत्रुओं को एक साथ नष्ट कर सकता हूँ। सबको उत्पन्न करने वाले प्रभु मुझको शत्रुओं से रहित करें।।६।।

संहिता पाठ–

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन्वृषणमिंद्र देवाः।
वधीं वृत्रं वज्रेण मंदसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वं ॥ ७॥

पद पाठ–

एव । हि । मां । तवसं । जज्ञुः । उग्रं।
कर्मन्ऽकर्मन्। वृषणं। इंद्र । देवाः।
वधीं । वृत्रं । वज्रेण । मंदसानः।
अप। व्रजं । महिना । दाशुषे। वं ॥७॥

सायण भाष्य –

हि यस्मात्कारणादेवैवमनेनोक्तप्रकारेण हे इंद्र देवा मरुदादय ऋत्विग्यजमाना वा तवसं महांतं त्वत्पुत्र त्वद्रूपेणावस्थितं संतं वसुक्रं मां कर्मन्कर्मन् वृत्रवधाग्निहोत्रादौ सर्वस्मिन्कर्मण्युग्रं शूरमसह्यं वा वृषण वर्षितारं हविषं दातारं जज्ञुः जानंति अतो मंदसानो मोदमानोऽहं वज्रेणायुधेन वृत्रं मेघासुरं वधीं। अवधिषं। किंच दाशुषे हविर्दत्तवते यज्ञमानाय वृष्टिप्रदानार्थं महिना महत्त्वेन व्रजं मेघसमूहमप वं। अपावं। अपवृणोमि।

अन्वय –

माम् इन्द्रं देवाः एव तवसं वृषणं कर्मम् कर्मन् उग्रं जज्ञुः सन्दसानः वज्रेण वृत्रं वधीम् महिना दाशुषं व्रजं अपवम्।

हिन्दी अनुवाद –

(माम् इन्द्रं) मुझ शक्तिशाली इन्द्र को (देवाः) अन्य सभी देवता (एव हि) इस प्रकार से (तवसं) शक्ति सम्पन्न, (वृषणं) सुखों की वर्षा करने वाला

और (कर्मन् कर्मन्) प्रत्येक कर्म में (उग्रं) प्रचण्ड (जज्ञुः) जानते हैं। (सन्दसानः) प्रसन्न होता हुआ मैं (वज्रेण) इस व्रज नामक आयुध से (वृत्रं) वृत्र नामक असुर का (वधीम्) वध करता हूं। (महिना) और अपनी महिमा से (दाशुषे) दानशील यजमान के लिये (व्रजं) मार्ग को (अपवम्) खोलता हूं।

भावार्थ –

इन्द्र देवता अपनी शक्ति का वर्णन करते हैं। अन्य सभी देवता मुझको महान, शक्तिशाली और प्रत्येक कर्म को प्रचण्डता से करने वाला जानते हैं। अपनी शक्ति से मैं वृत्रासुर का, प्रत्येक दुष्कर्म करने वाले का विनाश करता हूं। मैं दानशील व्यक्ति के लिये उत्तम मार्ग का अनावरण करता हूं।।७।।

संहिता पाठ–

देवास आयन्परशूँरबिभ्रन्वना वृश्चंतो अभि विड्भिरायन्।
नि सुद्रव१ंदधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहंति।।८।।

पद पाठ–

देवासः । आयन् । परशून् । अबिभ्रन्।
वना। वृश्चंतः । अभि । विद्ऽभिः । आयन्।
नि । सुऽद्र्व् । दधतः । वक्षणासु।
यत्र । कृपीटं । अनु । तत् । दहंति।।८।।

सायण भाष्य –

देवासो देवा इंद्रेण चोदिताः संत आयन्। गच्छंति। मेघवधार्थं परशून्वज्रानबिभ्रन्। धारयंति च। तदनंतरं विड्भिर्मरुदादिप्रजाभिः सहिता

वृश्चंतो मेघांश्छिंदंतो वना वनानि वृष्टिलक्षणान्युदकान्यभ्यायन्। आभिमुख्येन गच्छंति। ततः सुद्वं शोभनद्रवणं वृष्टयुदकं वक्षणासु नदीषु नि दधतो नियमेन थापयंतो यत्र यस्मिन्मेघजाने कृपीटं। उदकनामैतत्। निगूढ़मुदकं तिष्ठति त इमे देवास्तन्मेघजातमनु लक्षीकृत्य दहंति। उदकनिर्गमनार्थं शोषयंति।

अन्वय –

देवासः आयन् परशून् अबिभ्रन् वना विद्भिः अभिआयन्। वक्षणासु सुद्रवं निदधतः यत्र कृपीटम् अनु तद् दहन्ति॥

हिन्दी अनुवाद –

(देवासः) देवगण शक्तिशाली और विद्वद्गण (आयन्) यहां आवें और (परशून्) कुल्हाणों को, आयुधों को (अबिभ्रन्) धारण करें। (वना) वनों को (वृश्चन्तः) काटते हुए वे (विद्भिः) प्रजाजनों के साथ (अभिआयन्) शत्रुओं के प्रति अभियान करें। (वक्षणासु) नदियों के कछारों में (सुद्रवम्) उत्तम जल के वेग को (निदधतः) रोकते हुए (यत्र) जहां युद्धों में (कृपीटम् अनु) जल के वेग के अनुसार उसका अनुगमन करते हुए वे (तत्) उस शत्रु सैन्य को (दहन्ति) जलाकर नष्ट कर दें।

भावार्थ –

इन्द्र यजमान वसुक्र की पत्नी और घर में उपस्थित सभी लोगों को सम्बोधित करते हुए उत्साहित करते हुए कहता है कि सभी वीर जन आवें, आयुधों को धारण करें। वे मार्ग की बाधाओं को, जंगलों को काट दें, मार्ग की नदियों के जल में वेग को रोक दें और जल के बहाव के साथ चलते हुए शत्रुओं को जलाकर मार डालें॥८॥

संहिता पाठ–

शशः क्षुरं प्रत्यंचं जगारादिं लोगेन व्यंभेदमारात्।

बृहंतं चिदृहते रंधयानि वयंद्वत्सो वृषभं शूशुवानः॥९॥

पद पाठ–

शशः । क्षुरं । प्रत्यंचं। जगार।

अद्रिं । लोगेन । वि । अभेदं । आरात्।

बृहंतं। चित् । ऋहते । रंधयानि।

वयंत्। वत्सः। वृषभं। शूशुवानः॥९॥

सायण भाष्य –

वसुक्र इंद्रं प्रतिब्रूते। शश एतत्संज्ञितो मया प्रेरितो मृगविशेषः प्रत्यंचं वधायात्मानं प्रति गच्छंतं क्षुरं क्षुरवंतं दृढदीर्घतीक्ष्णनखं सिंहव्याघ्रादिकं। बलवत्क्रूरमृगमित्यर्थः। जगार। गिरति गृह्णाति वा। किंच लोगेन लोष्टेनाद्रिं हिमवदादिकं पर्वतमारादद्दूरे स्थितमपि व्यभेदं। अहं भिनद्मि। बृहंतं चिन्महांतमपि हस्त्यादिकमृहते ह्रस्वकायाकल्पाय शशकादिकाय रंधयानि। वशं गमयानि। शूशुवानो वीर्येण वर्धमानो वत्सो वृषभं महोक्षं वयत्। युद्धाय गच्छति। हे इंद्र एतदपि सर्वं त्वत्प्रसादादहं करोमीत्यर्थः।

अन्वय –

शशः प्रत्यञ्चं क्षुरं जगार। लोगेन आरात् अद्रिं व्यभेदम्। ऋहते बृहन्तं चित् रंधयानि। शूशुवानः वत्सः वृषभं वयत्।

हिन्दी अनुवाद –

(शशः) छोटा सा जानवर खरगोश भी (प्रत्यञ्चं) आक्रमण करने

वाले (क्षुरम्) छुरे वाले तीक्ष्ण नध आयुध वाले सिंह पर भी (जगार) आक्रमण कर देता है। (लोगेन) ढेले जैसी तुच्छ उपकरण से भी (आरात्) सुदूर स्थित (अद्रिं) पर्वत को भी मैं (व्यभेदम्) वेध देता हूं। (ऋहते) छोटे शरीर वाले भी तुम्हारे लिये मैं (वृहन्तं) बड़े शरीर वाले को भी (रंधयानि) तुम्हारे वश में कर देता हूं। (शूशुजानः) अपनी शरीर को बढ़ाता हुआ (वत्सः) बछड़ा भी (वृषभं) बलशाली बैल के साथ (वयत्) युद्ध करने के लिये उद्यत हो जाता है।

भावार्थ –

इन्द्र अपने प्रभाव का वर्णन करता है- मेरे से प्रोत्साहित और प्रभावित होकर खरगोश जैसा छोटा जानवर भी सिंह जैसे बलशाली पशु से लड़ सकता है। ढेले से भी सुदूर पर्वत पर प्रहार कर सकता है। छोटे शरीर वाला भी अपने से विशाल शरीर वाले को वश में कर लेता है और बछड़ा भी बलशाली बैल से युद्ध कर लेता है।

संहिता पाठ–

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत्॥१०॥

पद पाठ–

सुऽपर्णः । इत्था। नखं । आ । सिसाय।
अवऽरुद्धः। परिऽपदं। न। सिंहः।
निऽरुद्धः। चित् । महिषः। तर्ष्याऽवान्।
गोधा। तस्मै । अयथं । कर्षत् । एतत्॥१०॥

सायण भाष्य –

सुपर्णः पक्षिरूपा गायत्रीत्थामुत्र द्युलोके नखमात्मीयमा सिषाय। सोमाहरणकाल इंद्रार्थमाबबंध। इंद्रस्य प्रसादाद्दिवि पदं न्यस्तवतीत्यर्थः। तत्र दृष्टांतः। अवरुद्धः पंजरेणावृतः परिवेष्टितः सिंहः परिपदं न। यथा करस्योपरि सर्वतः पादमवबध्नाति। किंच। चिदित्युपमार्थे। यथा केनापि बद्धपादो निरुद्धो महिषस्तर्ष्यावानुदकाभावे तृषावान्भवति एवमिंद्रः सोमाहरणात्पूर्वं सोमाभावे तृषितवानभूदिति शेषः। तस्मै। तादर्थ्ये चतुर्थी। तादृशस्य तृषितस्येंद्रस्यार्थं गोधा। गमयति वर्णानिति गौर्वाक् तत्र निधीयमानत्वाद्गायत्री गोधा। यद्वा। गुधिर्निष्कर्षणार्थः। निष्कृत्यसोमाहरणाद्गोधा गायत्री। अयथमयत्नेन। लीलयेत्यर्थः। एतत्सोमजातं कर्षत्। आकृष्टवती। दिवः सकाशादाहृतवतीत्यर्थः।

अन्वय –

सुपर्णः इत्था नखं आसिषाय अवरुद्धः सिंहः परिषदं न। निरुद्धः महिषः चित् तार्ष्यावान् तस्या गोधा अयथम् एतत् कर्षत्।

हिन्दी अनुवाद –

उस यजमान के कार्य के लिये (सुपर्णः) बाज के समान वेगशाली मनुष्य (इत्था) इस प्रकार से (नखम्) तीक्ष्ण नख आदि आयुध को (आसिषाय) बांधता है, सज्जित करता है, जैसे कि (अवरुद्धः) बलात् रोका गया। (सिंहः) शेर (परिषदं न) जिस प्रकार अपने पंजे को सदा तैयार रखता है, (निरुद्धः) बलपूर्वक रोका गया। (महिषः चित्) भैंसा भी (तार्ष्यावान्) प्यासा होते हुए भी सदा सींग मारने के लिये तत्पर रहता है। (तस्या) उसके लिये (गोधाः) वाणों का प्रक्षेपण करने वाली धनुष की प्रत्यञ्चा (अयथम्) अनायास ही

(एतत्) इस धनुष को (कर्षत्) खींचकर वाणों का प्रक्षेपण करती है।

भावार्थ-

यजमान के कार्य को करने के लिये शक्तिशाली और वेगशाली मनुष्य अपने तीक्ष्ण आयुध को सज्जित रखता है। बांधकर रोका गया शेर और भैंसा आक्रमण के लिये जिस प्रकार सदा तैयार रहता है, उसी प्रकार यजमान की सहायता से आयुधधारी मनुष्य अनायास ही धनुष को खींचकर वाणों का प्रहार करता है।।१०।।

संहिता पाठ-

तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयंत्यन्नैः।

सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदंति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः।।११।।

पद पाठ-

तेभ्यः। गोधाः। अयथं। कर्षत्। एतत्।

ये। ब्रह्मणः। प्रतिऽपीयंति। अन्नैः।

सिमः। उक्षणः। अवऽसृष्टान्। अदंति।

स्वयं। बलानि। तन्वः। शृणानाः।।११।।

सायण भाष्य -

ये मरुदादिदेवगणा ब्रह्मणः परिवृढस्येंद्रस्य स्वभूतैरन्नैः सोमाख्यैः। तृप्ताः संत इति शेषः। प्रतिपीयंति। पीयतिर्हिंसाकर्मा। इंद्रादेशाद्धिंसकान्प्रतिहिंसंति तेभ्यस्तेषां देवगणानामर्थाय गोधाः पूर्वोक्ता गायत्र्ययथमनायासेनैतत्सोमजातं कर्षत्। आकृष्टवती। किंच सिमः

सिमाञ्श्रेष्ठान्। यद्वा। सिमशब्दः। सर्वशब्दपर्यायः। सर्वान्। उक्षणः। सिंचतोऽवसृष्टानिंद्रेण निसृष्टाननुज्ञातान्हविर्भूतान्सोमान्यज्ञेष्वदंति। भक्षयंति। किं कुंर्वतः। स्वयमात्मनैव बलानि शत्रूणां सैन्यानि तन्वः शरीराणि च शृणाना हिंसंतः। गायत्रींद्रादेशाद्देवेभ्यः सोममाहृतवतीत्यर्थः।

अन्वय -

ये ब्रह्मणः अन्नैः प्रतिपीयन्ति तेभ्यः गोधाः एतत् अयथं कर्षत्। सिमः अवसृष्टम् उक्ष्णः बलाति तन्वः स्वयं शृणानाः अदन्ति।

हिन्दी अनुवाद -

(ये) जो यजमान के घर में आये हुए अतिथि (ब्रह्मणः) ब्रह्मवेत्ता आदरणीय यजमान के (अन्नैः) अन्न आदि उपभोग्य पदार्थों से तृप्त होकर (प्रतिपीयन्ति) शत्रुओं को नष्ट करते हैं, (तेभ्यः) उनके लिये (गोधाः) तीरों का प्रक्षेपण करने वाले धनुषों की ओर (एतत्) यह सम्पूर्ण सामग्री (कर्षत्) अपनी ओर खींचती है। (सिमः) समस्त (अवसृष्टम्) यहां लाये गये सभी पदार्थों (उक्ष्णः) घृत आदि निर्मित पदार्थों को (वलानि) प्रतिपक्षियों के (तन्वः) शरीरों को (स्वयं) अपने आप (शृणानाः) जीर्ण-शीर्ण करते हुए (अदन्ति) भक्षण करते हैं।

भावार्थ-

इन्द्र पुनः अपनी पुत्रवधू वसुक्रस्नुषा से कहता है कि इस यज्ञ के अवसर पर उपस्थित महान बलशाली अतिथि यजमान द्वारा प्रदत्त अन्नों से, भोग्य पदार्थों से तृप्त होकर प्रतिपक्षियों को पराभूत करते हैं और अनायास ही धनुषों को बढ़ाये रखकर तीरों की वर्षा करते हैं। प्रतिपक्षियों के शरीरों को विक्षत करते हुए वे स्वयं अन्नों का उपभोग करते हैं।।११।।

संहिता पाठ–

एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः।

नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः॥१२॥

पद पाठ–

एते। शमीभिः। सुऽशमी। अभूवन्।

ये। हिन्विरे। तन्वः। सोम। उक्थैः।

नृऽवत्। वदन्। उप। नः। माहि। वाजान्।

दिवि। श्रवः। दधिषे। नाम। वीरः॥१२॥

सायण भाष्य –

ये देवर्ष्यादयस्तन्वः शरीराणि सोमे सोमयाग उक्थैः शस्त्रैर्हिन्विरे वर्धयंति एते देवादय इद्रादेशात्सोम आहते सति शमीभिः सोमयागकर्मभिः सुशमी सुकर्माणोऽभूवन्। नृवन्मनुष्यवद्वदन् इदं युष्मभ्यं मया दत्तमिति व्यक्तां वाचमुच्चारयन् नोऽस्मभ्यमुप माहि। उपगम्य वाजानन्नानि बलानि वा हे इंद्र त्वं देहीति शेषः। अतः कारणाद्वीरो दानशूरस्त्वं दिवि द्युलोके श्रवो दानपतिरिति कीर्तित नाम नामधेयं दधिषे। धारयसि।

अन्वय –

एते सोमे तन्वः उक्थैः हिन्विरे एते शमीभिः सुशमी अभूवन्। नृवत् वदन् नः वाजान् उप माहि। वीरःदिवि श्रवः नाम दधिषे।

हिन्दी अनुवाद –

(एते) ये यज्ञ में उपस्थित पुरुष (सोमे) इस सोम याग में (तन्वः)सोमयाग के कार्यकलापों और उपकरणों को (उक्थैः) अपने स्तोत्रों

से (हिन्विरे) प्रबृद्ध करते हैं, बढ़ाते हैं, (एते) ये यज्ञ में उपस्थित जन (शमीभिः) सोमयाग के विभिन्न कर्मों से (सुशमी) शोभन और सुखद कर्मो वाले (अभूवन्) हो गये हैं। (नृवत्) अन्य मनुष्यों के समान (वदन्) बोलते हुए कि (नः) हमें (वाजान्) धनों को, शक्तियों को (उपमाहि) प्रदान कीजिये। (वीरः) वीरत्व गुण से सम्पन्न आप (दिवि) द्यु लोग पर्यन्त तक भी आप (श्रवः) कीर्ति को और (नाम) नाम को (दधिषे) धारण करो और करते रहो।

भावार्थ-

वसुक्र तथा उसकी पत्नी के यज्ञ में आहूत इन्द्र पुनः अपनी पुत्रवधू की प्रशंसा करते हुए उससे कहता है कि इस सोमयोग की विभिन्न प्रक्रियाओं को अपने स्तोत्रो में ये उपस्थित जन बढ़ा रहे हैं। इससे इनके कर्म शोभन और सुखद हो गये हैं। इससे तुम यजमान वीरत्व से सम्पन्न हो गये हो तथा तुम्हारा नाम और यश द्यु लोक तक विस्तृत हो गया है॥१२॥

****

९. यमी वैवस्वती (१)

ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १० मन्त्र १-१४

ऋषि-यम-यमी

देवता-यम-यमी

छन्दः त्रिष्टुप्

सूक्त पर सायण कृत पूर्व भूयिका -

ओ चिदिति चतुर्दशर्चं दशमं सूक्तं। अचानुक्रम्यते। ओ चित्वकूना वैवस्वतयोर्यमयम्योः संवादः षष्ठ्ययुग्भिर्यमी मिथुनार्थं यमं प्रोवाच स तां नवमीयुग्भिरनिच्छन् प्रत्याचष्ट इति। ततः षष्ठ्यां प्रथमातृतीयाद्ययुक्षु विवस्वतः पुत्री यम्यृषिर्यमो देवता। यस्य वाक्यं स ऋषिर्या तेनोच्यते सा देवतेति न्यायात्। तथा नवम्यां द्वितीयाचतुर्थीप्रभृतिषु ऋक्षु वैवस्वतो यम ऋषिर्यमी देवता। अनादेशपरिभाषया त्रिष्टुप्।। गतो विनियोगः।।

संहिता पाठ-

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः।।१।।

पद पाठ-

ओ इति। चित्। सखायं। सख्या। ववृत्यां।
तिरः। पुरू। चित्। अर्णवं। जगन्वान्।
पितुः। नपातं। आ। दधीत। वेधाः।
अधि। क्षमि। प्रऽतरं। दीध्यानः ।।१।।

सायण भाष्य-

अत्रास्मिन्सूक्ते वैवस्वतयोर्यमयम्योः संवाद उच्यते। अस्यामृचि यमं प्रति यमी प्रोवाच। तिरोऽतर्हितमप्रकाशमानं। निर्जनप्रदेशमित्यर्थः। पुरू चिद्बह्वपि विस्तीर्ण चार्णवं समुद्रैकदेशमवांतरद्वीपं जगन्वान् गतवती यमी। चिदिति पूजार्थे। पूजितमिष्टं। श्रेष्टमित्यर्थः। सखायं गर्भवासादारभ्य सखीभूतं यमं संख्या सख्याय स्त्रीपुरुषसंपर्कजनितमित्रत्वाय ओ ववृत्यां। आवर्तयामि। आभिमुख्येन स्थित्वा लज्जां परित्यज्य त्वत्संभोगं करोमीत्यर्थः। धर्मस्य त्वरिता गतिरिरिति कामस्य त्वरितत्वात्। अपि च पितुरावयोर्भविष्यतः पुत्रस्य पितृभूतस्य स्वार्थाधि क्षम्यधि पृथिव्यां। पृथिवीस्थानीये ममोदर इत्यर्थः। प्रतरं प्रकृष्टं। सर्वगुणोपेतमित्यर्थः। नपातं गर्भलक्षणमपत्यं वेधा विधाता प्रजापतिर्दीध्यान आवयोरनुरूपस्य पुत्रस्य जननार्थमाावां ध्यायन्ना दधीत। प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते। ऋ0 १०.१८४. १। इत्युक्तत्वात्।।

इस संवाद यूक्त में १४ मन्त्र है। इनमें १, ३, ५, ६, ७, ११ और १३ मन्त्र यमी द्वारा तथा २,४,८,९,१०,१२ और १४ मन्त्र यम द्वारा प्रोक्त है।

भौतिक पक्ष में यह पति-पत्नी संवाद है। इसमें पति नपुंसक होने से पत्नी को नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा देता है। आध्यात्मिक रूप में यह सूक्त रात्रि और दिन पर सूर्य का संवाद है।

अन्वय-

तिरः पुरूचित् अर्णवम् जगन्वान् चित् ओ सखायम् सख्या वषृत्याम्। वेधाः पितुः नपातं प्रतरं दीध्यानः अधि क्षमि आ दधीत।

हिन्दी अनुवाद--

इस सूक्त में यम-यमी का संवाद है। यमी कहती है - (तिरः) अन्तर्निहित

अप्रकाशमान (पुरूचित्) बहुत विस्तीर्ण (अर्णवम्) समुद्र के एक द्वीप में अवान्तर द्वीप में (जगन्वान् चित्) तुम चले गये थे। अतः ओ (सखायम्) सखा पति रूप तुमसे (सख्या) मैं सखी पत्नी रूप में (वषृत्याम्) समागत को प्राप्त करूँ। तुम्हारे अभिमुख स्थित होकर लज्जा को छोड़कर मैं तुम्हारे साथ समागम करूँ। (वेधाः) गृहस्थ धर्म पालन कराने वाले विधाता वे (पितुः नपातम्) पिता के नाती अर्थात् स्वयं के पुत्र के (प्रतरम्) व्यवहार को (दीध्यानः) ध्यान में रखते हुए (अधिक्षमि) इस शुभ भूमि तुल्य पत्नी में (आ दधीत) आधात करने का निर्देश किया है।

भावार्थ-

पत्नी कहती है कि संसार सागर को पार करने के लिए पुरुष का कर्तव्य है कि वह सखा (पति) भाव को धारण कर मेरे साथ सखी (पत्नी) भाव से समागम करे, और वह मुझ भूमि में पुत्र का आधान करे।

संहिता पाठ-

न ते सखा सख्यं वेष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन्।।२।।

पद पाठ-

न। ते। सखा। सख्यं। वष्टि। एतत्।
सऽलक्ष्मा। यत्। विषुऽरूपा। भवाति।
महः। पुत्रासः। असुरस्य। वीराः। दिवः।
धर्तारः। उर्विया। परि। ख्यन्।।२।।

सायण भाष्य-

यम आत्मानं परोक्षीकृत्य यमीं प्रत्युवाच। हे यमि ते तव सखा

गर्भवासलक्षणेन सखीभूतो यम एतदीदृशं त्वयोक्तं स्त्रीपुरुषलक्षणं सख्यं न वष्टि। न कामयते। यद्यस्मात्कारणाद्यमी सलक्ष्मा समानयोनित्वलक्षणा विषुरूपा भगिनीत्वाद्विषमरूपा भवाति भवति। तस्मान्न वष्टीत्यर्थः। इदानीं तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वानित्यस्य प्रतिवचनमुच्यते। महो महतोऽसुरस्य प्राणवतः प्रज्ञावतो वा प्रजापतेः पुत्रासः पुत्रभूता वीराः। वीरो वीरयत्यमित्रान्वेतेर्वा स्यादतिकर्मणो वीरयतेर्वा। नि0 १.७। इति निरूक्तं। शत्रूणां विविधमीरयितारो धर्तारो धारयितारो दिवो द्युलोकस्य। प्रदर्शनमेतत्। द्युप्रभृतीनां लोकानामित्यर्थः। .।।

यम उत्तर देता है -

अन्वय-

ते सखा सख्यं न वष्टि एतत् संलक्ष्मा यत् विषुरूपा भवाति। महः असुरस्य वीराः पुत्रासः उर्मिया दिवः धर्तारः परिख्यन्।

हिन्दी अनुवाद--

(ते) हे यमी! ते तुम्हारे साथ (सखा) मित्र रूप पति (सख्यम्) पत्नी रूप सखा भाव को (न वष्टि) कामना नहीं करता है (यत्) क्योंकि (एतत्) हमारा यह (संलक्ष्मा) पति के समान योनि वाला होने से सन्तान (विषुरूपा) विविध विचित्र रूपों वाली (भाति) होती है। (महः) महान् (असुरस्य) प्राण और वलसम्पन्न पुरुष के (पुत्रासः) पुत्र (वीरा) वीर्ध तथा शौर्यसम्पन्न (उर्विया) इस पृथिवी पर (दिवः) ज्ञान, प्रकाश आदि दिव्य गुणों के (धर्तारः) धारण करने वाले (परिख्यन्) देखे जाते हुये प्रसिद्ध है।

भावार्थ-

समान योनि वाला होने से वह समागम करने के योग्य नहीं है। इस पृथिवी पर प्राण शक्ति सम्पन्न पुरुष के पुत्र वीर होते है। अतः हम दोनों का समागम उचित नहीं है।

संहिता पाठ-

उशंति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य।

नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः।। ३।।

पद पाठ-

उशंति। घ। ते। अमृतासः। एतत्।

एकस्य। चित्। त्यजसं। मर्त्यस्य।

नि। ते। मनः। मनसि। धायि। अस्मे इति।

जन्युः। पतिः। तन्वं। आ। विविश्याः ।। ३।।

सायण भाष्य-

पुनरपि यमी यमं प्रत्युवाच। घेति निपातोऽप्यर्थे। हे यम ते प्रसिद्धा अमृतासः प्रजापत्यादयोऽपि देवा एतदीदृशं शास्त्रेणागम्यत्वेनोक्तं त्यजसं। त्यज्यते परस्मै प्रदीयत इति त्यजसं दुहितृभगिन्यादिस्त्रीजातं। उशंति। कामयते। एकस्य चित् सर्वस्य जगतो मुख्यस्यापि प्रजापत्यादेः स्वदुहितृभगिन्यादीनां संबंधोऽस्तीति शेषः। अतः कारणात्ते तव मनश्चित्तमस्मे अस्माकं। ममेत्यर्थः। मनसि चित्ते नि धायि। निधीयतां। अहं त्वां कामये त्वं मामपि कामयस्वेत्यर्थः। अपि च। जन्युरिति लुप्तोपममैतत्। जन्युरिव यथा जनयिता प्रजापतिः पतिर्भर्ता भूत्वा स्वदुहितुः शरीरं संभोगेनाविष्टवान् तथा त्वमपि मम पतिर्भूत्वा तन्वं मदीयं शरीरमा विविश्याः। संभोगेनाविश। योनौ प्रजननप्रक्षेपोपगूहनचुंबनादिना मां संभुक्ष्वेत्यर्थः।।

अन्वय-

ये ते अमृसास एतत् उशन्ति एकस्य मर्त्यस्य चित् त्यजसम्। मे मनः मनसि अस्मे निधायि, जन्युः पतिः तन्वम् या विविश्याः।

हिन्दी अनुवाद-

तब यमी यम से कहती है - (ये ते) जो भी तुम्हारे (अमृतासः) प्रजापति, आदि देवता हैं वे (एतत्) इस काल की (उशन्ति) कामना करते हैं। (एकस्य) एक (मर्त्यस्य चिंत्) पुरुष को भी (त्यजसम्) एक पुत्र के रूप में अवश्य संसार में छोड़ दिया जावे। (अस्मे) हमारा (मनः) मन (ते मनसि) तुम्हारे मन में (निघायि) निहित हो गया है। (जन्युः) सन्तान को उत्पन्न करने वाली मुझ माता के (पतिः) पति के रूप में (तन्वम्) मेरे शरीर में (विविश्या) तुम प्रवेश करो।

भावार्थ-

यमी कहती है - हे यम! देवगणों का भी यह आदेश है कि एक पुरुष को चाहिये कि वह एक सन्तान को अवश्य छोड़ जाये। जबकि मैने अपने मन को तुम्हारे अन्दर निहित कर दिया है, तुम मेरे पति बन कर सन्तान को उत्पन्न करने के लिए मेरे शरीर में प्रवेश करो।

संहिता पाठ -

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदंतो अनृतं रपेम।
गंधर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ।।४।।

पद पाठ

न। यत्। पुरा। चकृम। कत्। ह। नूनं।
ऋता। वदंतः। अनृतं। रपेम।
गंधर्वः। अप्ऽसु। अप्या। च। योषा।
सा। नः। नाभिः। परमं। जामि। तत्। नौ ।।४।।

सायण भाष्य-

यमो यमी पुनर्ब्रूते। पुरा पूर्वं प्रजापतेर्यदगम्यागमनमपरिमितसामर्थ्योपेतत्वात्कृतं तथा वयं न चकृम। नाकुर्म। वयमृतानि सत्यानि वदंतो ब्रुवंतोऽनृतमसत्यं कद्ध कदा खलु नूनं निश्चितं रपेम। वदेम। न कदाचिदपीत्यर्थः। अगम्यागमनं न कुर्म इति यावत्। अपि चाप्सु। अंतरिक्षनामैतत्। अंतरिक्षे स्थितो गंधर्वो गवां रश्मीनामुदकानां वा धारयितादित्योऽप्यंतरिक्षस्था सा प्रसिद्धा योषादित्यस्य भार्या सरण्यूश्च नो नावावयोर्नाभिरुत्पत्तिस्थानं। मातापितरावित्यर्थः। तत्तस्मात्कारणान्नावावयोर्जामि बांधवमुत्कृष्टं। एवं सत्यावयोरगम्यागमन-रूपत्वात्कर्तुमयुक्तं तस्मादेतन्न करोमीत्यभिप्रायः।।

अन्वय-

कत् ह पुरा नूनम् न चकृम ऋता वदन्तः अनृतम् रपेम। गन्धर्वः अप्सु योषा च अप्या सा नः नाभिः तत् नौ परमम् जामि।

हिन्दी अनुवाद-

यम अब यमी से कहता है - (कत् ह) निश्चय से कौन सा ऐसा (पुरा) पहले कार्य था समय है (यत्) जो कि हमने (नूनम्) निश्चय से (न) नहीं (चकृंम) किया है। (ऋताः) सत्य ही (वदन्तः) कहते हुए (अनृतम्) असत्य (रपेम) बोलते रहे हैं। (गन्धर्वः) शक्तिशाली गृहस्थ पुरुष (अप्सु) वीर्य में पूर्ण हो, (योषा च) और स्त्री (अप्या) वीर्य की शक्ति से भरी हो (सा) वह ही (न.) हमारी गृहस्थी की (नाभिः) आधार है। (तत्) वह (नौ) हम गृहस्थ जनों में (परमम्) अति उत्कृष्ट (जामि) सम्बन्ध है।

भावार्थ-

पति कहता है कि सन्तानोत्पति के लिए हमने क्या कुछ नही किया है। सत्य कहते हुए भी असत्य बोलते रहे हैं। गृहस्थ जीवन में पुरुष और स्त्री दोनों वीर्य शक्ति से भरे होते हैं। यही सन्तानोत्पति का आधार होता

है। परन्तु यदि उनमें परस्पर योनि सम्बन्ध होता है तो यही दोष होता है।

संहिता पाठ-

गर्भे नु नौ जनिता दंपती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।
नकिरस्य प्र मिनंति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः।।५।।

पद पाठ -

गर्भे। नु। नौ। जनिता। दंपती इति दंऽपती।
कः। देवः। त्वष्टा। सविता। विश्वरूपः।
नकिः। अस्य। प्र। मिनंति। व्रतानि।
वेद। नौ। अस्य। पृथिवी। उत। द्यौः।।५।।

सायण भाष्य -

त्वष्टा रूपाणां कर्ता सविता सर्वेषां शुभाशुस्य प्रेरको विश्वरूपः सर्वात्मको देवो दानादिगुणायुक्तो जनिता जनयिता प्रजापतिर्गर्भे नु गर्भावस्थायामेव नावावां दंपती जायापती कः। कृतवान् एकोदरे सहवासित्वात्। अस्य प्रजापतेर्व्रतानि कर्माणि नकिः प्र मिनंति। न केचित्प्रहिंसंति। न लोपयंतीत्यर्थः। अतः कारणाद्गर्भावस्थायामेवावयोः प्रजापतिकृते दंपतित्वे सति संभोगं कुर्वित्यर्थः। अपि च नावावयोरस्येदं मातुरुदरे सहवासजनितं दंपतित्वं पृथिवी भूमिर्वेद। जानाति। उतापि च द्यौर्द्युलोकोऽपि जानाति।।६।।

अन्वय-

विश्वरूपः सविता जनिता त्वष्टा देवः नौ गर्भे दम्पती कः। अस्य व्रतानि नकिः प्रमिनन्ति नौ अस्य पृथिवी उत द्यौः वेद।

हिन्दी अनुवाद-

(विश्वरूपः) सब प्रकार के रूपों को धारण करने वाले सर्वात्मक (सविता) सबको उत्पन्न करने वाले या सबको प्रेरणा देने वाले (जनिता) सबको उत्पन्न करने वाले (त्वष्टा) प्रजापति (देवः) दान दीप्ति गुणों से युक्त देव ने ही (नौ) हम दोनों को (गर्भे) माता के गर्भ में रहने की अवस्था में (दम्पती) पति-पत्नी के रूप में (कः) बनाया है। (अस्य) इस विधाता के (व्रतानि) नियम (न किः) कभी नहीं (प्रमिनन्ति) टूटते हैं, नष्ट होते है (नौ) हम दोनों के (अस्य) इस पति-पत्नी भाव को (पृथिवी) यह पृथिवी (उत) और (द्यौः) द्यु लोक भी (वेद) जानते है, कि हम इस नियम को पति-पत्नी भाव को प्राप्त होवें।

भावार्थ-

सृष्टि के कर्ता उत्पादक और प्रेरक परमात्मा ने हमारे पति-पत्नी भाव का सृजन किया है। यह नियम अटल है और कोई भी इस नियम को भंग नही कर सकता। पृथिवी और द्यु लोक भी इस नियम का पालन करते हैं। वे माता-पिता के रूप में रहते हैं।

संहिता पाठ-

को अ॒स्य वेद प्र॒थमस्याह्नः क ई ददर्श॒ क इ॒ह प्र वोंचत्।
बृहन्मि॒त्रस्य॒ वरुणस्य॒ धाम॒ कदुं ब्रव आहनो॒ वीच्या॒ नृन्॒ ।।६।।

पद पाठ-

कः। अ॒स्य। वे॒द॒। प्र॒थ॒मस्य। अहनः।
कः। ई॒। द॒द॒र्श॒। कः। इ॒ह। प्र। वो॒च॒त्।
बृहत्। मि॒त्रस्यं। वंरुणस्य। धामं।
कत्। ऊं॒ इतिं। ब्र॒व॒ः। आ॒ह॒न॒ः। वीच्यां। नृन्।।६।।

सायण भाष्य-

प्रथमस्याह्नः संबन्धस्येदमन्योन्यसंगमनं को वेद। जानाति। प्रथमेऽहनि यत्क्रियते तदनुमानमाश्रित्य न कश्चिदपि ज्ञातुं शक्नोतीत्यर्थः। इहास्मिन्प्रदेशे प्रत्यक्षतः क ईमिदं संगमनं ददर्श। पश्यति। कः प्र वोचत्। प्रख्यापयति। न कोऽपीत्यर्थः। मित्रस्य वरुणस्य मित्रावरुणयोर्बृहन्महद्धाम स्थानमहोरात्रं यदस्ति तत्र नृन्मनुष्यान् वीच्या नरकेण हे आहन आहंतर्मर्यादया हिंसितः। स्वकृतशुभाशुभकर्मापेक्षया मनुष्यादिप्राणिनां नरकपातेन स्वर्गप्रापणेन निग्रहानुग्रहयोः कर्तरित्यर्थः। एवंभूत हे यम त्वं कदु ब्रवः। किं वा ब्रवीषि।।

अन्वय-

अस्य प्रथमस्य अहनः क वेद कः ईमू ददर्श इह कः प्रचोचत्। मित्रस्य वरुणस्य धाम बृहत्। आहनः नृन् वीच्य कत् उ ब्रवः।

हिन्दी अनुवाद-

यम कहता है-(अस्य) इस दम्पत्ति भाव की इस धटना के (प्रथमस्य) प्रथम या पूर्व (अह्नः) दिन की बात को (कः) कौन व्यक्ति (वेद) जानता है। दाम्पत्य भाव हुआ था, गर्भ धारण हुआ था इस धटना की प्रथम दिन की बात को कौन बता सकता है? (कः) किस व्यक्ति ने (ईमू) निश्चय से (ददर्श) गर्भ धारण होने या न होने की बात को देखा था, (इह) इस विषय में इस लोक में (कः प्रवोचत्) कौन व्यक्ति इस बात को कह सकता है? (मित्रस्य) सबकी रक्षा करते वाले मित्र देवता का और (वरुणस्य) सबका दोष निवारण करने वाले वरुण देवता का (धाम) तेज या स्थान (बृहत्) बहुत विशाल है। (आहनः) मर्यादा का हनन करने वाले (नृन्) मनुष्यों की (वीच्य) विवेचना करके (कत्) कौन मनुष्य (उ) निश्चय से यह बात (ब्रवः) कह सकता है।

भावार्थ-

यमी के वचन को कि हम दोनों का दाम्पत्य भाव था, यम कहता है कि हम पूर्व समय में दम्पती थे, यह घटना हुई थी, इसका मूल कारण क्या था, किसने इसको देखा था, इस विषय में निश्चय से कुछ कहा नही जा सकता। मनुष्यों का विवेचन करके भी इस विषय में निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता।

संहिता पाठ-

यमस्यं मा यम्यूं कामु आगंन्त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वैं रिरिच्यां वि चिंदृहेव रथ्येंव चक्रा।।७।।

पद पाठ-

यमस्यं। मा । यम्यं। कामः। आ। अगन्।
समाने। योनौं। सहऽशेय्याय।
जायाऽइव। पत्यै। तन्वं। रिरिच्यां।
वि। चित्। वृहेव। रथ्याऽइव। चक्रा।।७।।

सायण भाष्य

यमस्य तव कामोऽभिलाषो यम्यं यमीं मा मां प्रत्यागन्। आगच्छतु। ममोपरि तव यमस्य संभोगेच्छा जायतामित्यर्थः। किमर्थं। समाने योनावकस्मिन् स्थाने शय्याख्ये सहशेय्याय सहशयनार्थं। तदनंतरं पूर्णमनोरथा सती जायेव पत्ये यथा भार्या पत्युरर्थाय परया प्रीत्या विश्वस्ता सती रतिकामा स्वशरीरं प्रकाशयति एवं तन्वमात्मीयं शरीरं रिरिच्यां। विविच्यां। त्वदर्थं प्रकाशयेयमित्यर्थः। किंच। चिदिति पूरणः। वि वृहेव।। वृह उद्यमने।। धर्मार्थकामान्विविधमुद्यच्छावः।

तत्र दृष्टांतः। रथ्येव चक्रा रथस्यावयवभूते चक्रे यथा रथमुद्यच्छतस्तद्वत्।।

अन्वय-

मा यम्यं समाने योनौ सहशेय्याय कामः आ गमन्। जाया पत्ये इव तन्वं रिरिच्याम् रथ्या चक्रे इव वि चिद् वृहेव।

हिन्दी अनुवाद-

यम का कथन सुनकर यमी कामपीदित होकर कहती है - (मा) मुझ (यम्यम्) यम की पत्नी यमी को (समाने) समान अर्थात् एक (योनौ) स्थान में (सह शेय्याय) यम के साथ सोने के लिये (कामम्) कामवासना की पूर्ति का अवसर (आ गमन्) प्राप्त हो गया है। (जाया पत्ये इव) जिस प्रकार एक पत्नी पति के लिये कामना करती है, उसी प्रकार मैं अपने पति यम के लिए (तन्वम्) अपने शरीर को (रिरिच्याम्) प्रदान करूँ (रथ्या चक्रे इव) रथ के चक्रों के समान (वि विद् वृहेव) गृहस्थ धर्म के भार का वहन करूँ।

भावार्थ-

यमी पुनः अपने मन की अभिलाषा प्रकट करती है कि उसे अपने प्रिय पति का समागम प्राप्त हो। वह अपने पति के साथ एक शय्या पर शयन करे। जिस प्रकार एक पत्नी पति के लिए अपना शरीर प्रदान करती है। उसी प्रकार वह भी अपने पति के लिए अपना शरीर प्रदान करे और दोनों मिलकर गृहस्थ आश्रम के भार को वहन करें।

संहिता पाठ-

न तिष्ठंति न नि मिषंत्येते देवानां स्पश इह ये चरंति।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा।।८।।

पद पाठ-

न। तिष्ठंति। न। नि। मिषंति। एते।

देवानां। स्पशः। इह। ये। चरंति।
अन्येन। मत्। आहनः। याहि। तूयं।
तेन। वि। वृह। रथ्याऽइव। चक्रा।।८।।

सायण भाष्य-

यम्या प्रख्यातो यमः पुनराह। इहास्मिँल्लोके देवानां संबंधिनो ये स्पशोऽहोरात्रादयश्चाराश्चरंति सर्वेषां शुभाशुभलक्षणकर्मप्रत्यवेक्षणार्थं परिभ्रमंति एते चाराः क्षणमात्रमपि चरणव्यापाररहिता न तिष्टंति। न नि मिषंति। मेषणं न कुर्वंति। शुभमशुभं वा यः करोति तं निरीक्षंते चेत्यर्थः। हे आहनो ममापहंत्यसह्यभाषणेन दुःखविचि त्वं मदन्यत्तोऽन्येन त्वत्सदृशेन सह तूयं क्षिप्रं याहि। संगच्छ। गत्वा च तेन वि वृह। धर्मार्थकामानुद्यच्छ। तव दृष्टांतः। रथ्येव चक्रा यथा रथावयवभूते चक्रे रथमुधच्द्धतस्द्वत्।

अन्वय

देवानाम् स्पशः इह ये चरन्ति न तिष्ठन्ति न निमिषन्ति, आहनः मत् अन्येन तूयं याहि रथ्या चक्रा इव वि वृह।

हिन्दी अनुवाद-

यम कहता है (देवानाम्) देवताओं के (स्पशः) गुप्तचर के समान देखने वाले (ये) जो (इह) इस संसार में दिन और रात्रि में (चरन्ति) निरन्तर विचरण करते रहते हैं (ते) वे (न तिष्ठन्ति) न तो कहीं ठहरते हैं और (न निमिषन्ति) त कहीं पलक झपकाते हैं। (आहनः) हे आक्षेप करने वाली यमी (मत्) मुझ से (अन्येन) दूसरे किसी पुरुष के साथ (तूयम्) निश्चय से शीघ्र (याहि) तुम सम्बन्ध करो (तेन) उस व्यक्ति के साथ (रथ्या) रथ के (चक्रा इव) चक्रों के समान्तर (वि वृह) विशेष रूप से गृहस्थ धर्म का निर्वाह करो।

भावार्थ-

यम कहता है कि हे यमी! देवताओं के गुप्तचर दिन रात विचरण करते रहते हैं। वे न तो कही रुकते हैं और न कभी पलक झपकाते है। वे निरन्तर सबका निरीक्षण करते रहते हैं। तुम मुझ पर आक्षेप करती हो। मुझ से अतिरिक्त अन्य किसी से सम्बन्ध कर लो। रथ के पहियों के समान मुझ से अतिरिक्त अन्य किसी के साथ गृहस्थ धर्म का निर्वाह करो।

संहिता पाठ-

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबंधू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि।।९।।

पद पाठ-

रात्रींभिः। अस्मै। अहऽभिः। दशस्येत्।
सूर्यस्य। चक्षुः। मुहुः। उत्। मिमीयात्।
दिवा। पृथिव्या। मिथुना। सबंधू इति सऽबंधू।
यमीः। यमस्य। बिभृयात्। अजामि।।९।।

सायण भाष्य -

रात्रीभिरहभिरहोरात्रयोरस्मै यमाय कल्पितं भागं सर्वो यजमानो दशस्येत्। प्रयच्छतु। सूर्यस्य संबधि चक्षुस्तेजो मुहुर्मुहुरसौ यमायोन्मिमीयात्। उदेतु। दिवा पृथिव्या द्यावापृथिवीभ्यां सह मिथुना मिथुनी सबंधू समानबंधू अहोरात्रे अस्मै यमाय। एतज्ज्ञात्वेयं यमीर्यमस्याजाम्यभ्रातरं बिभृयात्। धारयतु। यत्नेन परिगृणात्वित्यर्थः।।

अन्वय-

रात्रीभिः अहभिः अस्मै दशस्येत्, सूर्यस्य चक्षु मुहुः उन्मिमीयात्। दिवा पृयिव्या सबन्धू मिथुना। यमीः यमरय बिभृयात् अजामि।

हिन्दी अनुवाद--

हे प्रभु ! आप (रात्रीभिः) रात्रियों भर (अहभिः) और दिनों तक (अस्मै) हमारे (दशस्येत्) मनोरथों को प्रदान करें। (सूर्यस्य) सूर्य की (चक्षुः) चक्षु (मुहुः) पुनः पुनः (उन्मिमीयात्) उदय को प्राप्त होवे। (दिवा) द्युलोक और (पृथिव्या) पृथिवी लोक के समान (सबन्धू) सम्बन्धित होकर (मिथुना) यह युगल बना रहे। (यमीः) यमी (यमस्य) यम के सम्बन्धी (अजामि) नियोग द्वारा (बिभृयात्) गर्भ को धारण करे।

भावार्थ-

यमी देवताओं से प्रार्थना करती है कि दिन-रात हमारी कामनाओं को पूरा करें और सूर्य उदय होता रहे। द्युलोक और पृथिवी लोक के समान हमारा यह युगल सदा बना रहे। मुझ यमी में यम का गर्भ स्थापित हो, यही ठीक है।

संहिता पाठ-

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि।
उप बर्बृहि वृषमाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्।।१०।।

पद पाठ-

आ। घ। ता। गच्छान्। उत्ऽतरा। युगानि।
यत्र। जामयः। कृणवन्। अजामि।
उप। बर्बृहि। वृषभाय। बाहुं।
अन्यं। इच्छस्व। सुऽभगे। पतिं। मत्।।१०।।

सायण भाष्य-

यत्र येषु कालेषु जामयो भगिन्योऽजाम्यभ्रातरं पतिं कृणवन् करिष्यंति ता तान्युत्तराणि युगानि कालविशेषा आ गच्छान्। आ गमिष्यंति। घेति पूरणः। यस्मादेवं तस्मादेव सुभगे त्वमिदानीं मन्मत्तोऽन्यं, पतिं भर्तारमिच्छस्व। कामयस्व। तदनंतरं वृषभाय तव योनौ रेतः सेक्त्रे पुरुषायात्मीयं बाहुभुप बर्बृहि। शयनकाल उपबर्हणं कुरु।।१०।।

अन्वय-

घ ता उत्तरा युगानि आ गच्छान् यत्र जामयः अजामि कृण्वन् सुभगे। वृषभाय बाहुम् उपवर्बृहि। मत् अन्यं पतिम् इच्छस्य।

हिन्दी अनुवाद-

अव पुनः यम कहता है - (घ) निश्चय से (ता) वे (उत्तरायुगानि) उत्तर काल की वातें नियोग सम्बन्धी (आगच्छान्) प्राप्त होती हैं जब कि (जामयः) सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ स्त्रियां (अजामि) नियोग द्वारा (कृणवन्) सन्तान उत्पन्न करती हैं। (सुभगे) हे सौभाग्यशालिनि! तुम (वृषभाय) वीर्य से सम्पन्न पुरुष के लिए (बाहुम्) भुजा का (उप बर्बृहि) सहारा लो और इस प्रकार (मत्) मुझसे (अन्यं) किसी दूसरे (पतिन्) पति की, सन्तान प्राप्त कराने वाले पाति की (इच्छस्व) इच्छा करो।

भावार्थ-

विवाह के अनन्तर भी पति से सन्तान प्राप्त न होने पर नियोग द्वारा सन्तान को प्राप्त करना बाद की बात है। ऐसे पति से सन्तान प्राप्त न होने पर ही सन्तानोत्पादन में समर्थ स्त्रियां वीर्यशाली पुरुष से नियोग द्वारा सन्तान को प्राप्त करने की कामना करती हैं।

संहिता पाठ-

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।
काममूता बह्वे३ तद्रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ।।११।।

पद पाठ-

किं। भ्राता। असत्। यत् अनाथं। भवाति।
किं। ऊं इति। स्वसा। यत्। निःऽऋतिः। निऽगच्छात्।
कामऽमूता। बहु। एतत्। रपामि।
तन्वा। मे। तन्वं। सं। पिपृग्धि।।११।।

सायण भाष्य-

यमी यमेन प्रम्याख्याता पुनराह। यद्यस्मिन्भ्रातरि सति स्वसादिकमनाथं नाथरहितं भवति स भ्राता किमसत्। किं भवति। न भवतीत्यर्थः। किंच यस्यां भगिन्यां सत्यां भ्रातरं निर्ऋतिर्दुःखं निगच्छात् नियमेन गच्छति प्राप्तोति सा स्वसा किमु। किं वा भवति। भ्रातृभगिन्योश्च परस्परं प्रीतिर्येन केनचिदुपायेनावश्यं कार्येत्यभिप्रायः। साहं काममूता कामेन मूर्छिता सती बहु नानाप्रकारमेतदीदृशमुक्तं वक्ष्यमाणं च रपामि। प्रलपामि। एतज्ज्ञात्वा मे मम तन्वा शरीरेण तन्वं शरीरं सं पिपृग्धि। संपर्चय। संभोगेन संश्लेषय। मां सम्यग्भुंक्ष्वेत्यर्थः।।

अन्वय

कि भ्राता असत् यत् अनाथम् भवाति, किमु स्वसा यत् निर्ऋतिः निगच्छात्। काममूता एतत् बहु रपामि मम तन्वा तन्वम् संपिपृग्धि।

हिन्दी अनुवाद-

यम से प्रत्याख्यात होकर यमी पुनः काम याचना करती है - (किं भ्राता असत्) वह भाई ही क्या है (यत्) जो (अनाथम्) मुझको अनाथ छोड़े हुये है,

पतिवत् नहीं पालता है। (किंस्वसा) तुम्हारी मैं बहन ही क्या हूँ जो (निर्ऋतिः) दुखी होकर (निगच्छात्) यहां से चली जाऊँ। (काममूता) काम वासना से मूर्छित हुई मैं (एतत्) यह (बहु) बहुत अधिक (रपामि) रट रही हूँ (मम) मेरे (तन्वा) शरीर से (तन्वम्) अपने शरीर को (संपिपृग्धि) संगत कर लो, संयोग द्वारा तृप्त कर लो।

भावार्थ-

अन्त में दुःखी निराश होकर यमी कहती है कि वह भाई क्या हुआ जो वहिन को अनाथ के समान छोड़ दे और वह बहन क्या है जो भाई के पास से दुःखी होकर चली जाये। मैं कामवासना से मूर्छित हुई जा रही हूँ। तुम मेरे शरीर से संगत होकर मुझसे संभोग करके तृप्त हो जाओ।

संहिता पाठ-

न वा उं ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत्।।१२।।

पद पाठ-

न। वै। ऊं इति। ते। तन्वा। तन्वं। सं। पपृच्यां।
पापं। आहुः। यः। स्वसारं। निऽगच्छात।
अन्येन। मत्। प्रऽमुदः। कल्पयस्व।
न। ते। भ्राता। सुऽभगे। वष्टि। एतत्।।१२।।

सायण भाष्य-

यमो यमीं प्रत्युक्तवान्। हे यमि ते तव तन्वा शरीरेण तन्वमात्मीयं शरीरं न वै सं पपृच्यां। नैव संपर्चयामि। नैवाहं त्वां संभोक्तुमिच्छामीत्यर्थः। यो भ्राता स्वसारं भगिनीं निगच्छात् नियमेनोपगच्छति। संभुक्त इत्यर्थः। तं पापं पापकारिणमाहुः। शिष्टा वदंति। एतज्ज्ञात्वा हे सुभगे स ष्ठु भजनीये हे यमि

त्वं मन्मत्तोऽन्येन त्वद्योग्येन पुरुषेण सह प्रमुदः संभोगलक्षणान्प्रहर्षान्कल्पयस्व। समर्थय। ते तव भ्राता यम एतदीदृशं त्वया सह मैथुनं कर्तु न वष्टि। न कामयते। नेच्छति।।

अन्वय-

वै उ ते तन्वा तन्वम् न संप्रपृच्याम् पापम् आहुः यः स्वसारं निगच्छात्। सुभगे! मत् अन्येनः प्रमुदः कल्पयस्व। ते भ्राता एतत् न वष्टि।

हिन्दी अनुवाद-

यम अब यमी से कहता है कि (वा उ) यही बात अब सही है कि अन्य किसी से संभागम कर, गर्म को धारण कर। तू मेरी वहन है और मै तेरा भाई हूँ। (ते) तेरे (तत्वा) शरीर से मैं (तन्वम्) अपने शरीर को (न) नहीं (संप्रपृच्याम्) संगत करूँ। क्योंकि (पापम्) इस बात को पाप (आहुः) कहते है, विद्वान् पुरुष और सामाजिक जन इसे पाप समझते है, जो (स्वसारम्) कहन के साथ (निगच्छात्) समागम किया जावे। (सुभगे) सौभाग्यशालिनि हे यमि! (मत्) मुझसे मिन्न (अन्येन) किसी दूसरे पुरुष से (प्रमुदः) आमोद प्रमोद की तुम (कल्पयस्व) कल्पना कर लो, अनुभव कर लो (ते) तुम्हारा (भ्राता) भाई यह यम (एतत्) इस समागम को (न) नहीं (वष्टि) कामना करता है।

भावार्थ-

यम अब यमी से कहता है कि भाई और बहन के समागम को संसार के विद्वान् पुरुष और समाज के वेता पाप कहते हैं। अतः यमी को चाहिये कि भाई से भिन्न अन्य पुरुष के साथ समागम के आमोद प्रमोद का अनुभव आनन्द को प्राप्त कर ले। भाई अपनी बहन के साथ समागम करने की कामना नही करता है।।

संहिता पाठ-

ब॒तो ब॑तासि यम॒ नैव ते॒ मनो॒ हृद॑यं चाविदाम।

अ॒न्या किल॒ त्वां क॒क्ष्ये॑व यु॒क्तं परि॒ ष्वजाते॒ लिबु॑जेव वृ॒क्षं।।१३।।

पद पाठ-

ब॒तः। ब॒त॒। अ॒सि॒। य॒म॒। न। ए॒व।

ते॒। मनः॑। हृद॑यं। च॒। अ॒वि॒दा॒म।

अ॒न्या। किल॑। त्वां। क॒क्ष्याऽइव। यु॒क्तं।

परि॑। स्व॒जा॒ते॒। लिबु॑जाऽइव। वृ॒क्षं।।१३।।

सायण भाष्य-

यमी प्रत्युवाच। हे यम त्वं वतो दुर्बलोऽसि। बतेति निपातः खेदानुकंपयोः। अनुकंप्यश्चासि। ते त्वदीयं मनो मनोगतं संकल्पं हृदयं च बुद्धिगतमध्यवसायं च नैवाविदाम। वयं न जानीम एव। मत्तोऽन्या काचित्स्त्री त्वां परि ष्वजति किल। तत्र दृष्टांतद्वयमुच्यते। कक्ष्येव युक्तं यथा कक्ष्या रज्जुर्युक्तमात्मना संबद्धमश्वं परिष्वजते तद्वत्। लिबुजेव वृक्षं यथा लिबुजा व्रततिर्गाढं वृक्षं परिष्वजते तद्वच्च। अन्यस्यां स्त्रियामामक्तस्त्वं मां परिष्वक्तुं नेच्छसीत्यर्थः।।

अन्वय-

यम बत बत असि ते मनः हृदयम् न एव अविदाय। किल त्वाम् युक्तं अन्या एव लिबुजा वृक्षम् कक्ष्या इव परिष्वजाते।

हिन्दी अनुवाद-

तब आसक्त यमी यम को ताना देती हुई उसकी परीक्षा लेने के लिए कहती है - (यम) हे यम (बत) खेद है कि (बतः असि) दुर्बल हो गये हो। अतः मैं जो तुम्हारे (मनः) मन को भौर (हृदयम्) हृदय को (न एव) नहीं ही (अविदाम) जानने

में समर्थ हो रही हूँ। अतः (किल) निश्चय से (युक्तं) सम्भोग करने में समर्थ (त्वा) तुमको (अन्या) कोई अन्य स्त्री ही (लिबुजा) लता (वृक्षं) किसी वृक्ष से लिपट जाती है (कक्ष्या इव) रज्जु के समान (परिष्वजाते) आलिङ्गन करे।

भावार्थ-

अन्त में खीज कर ताना देती हुई यम से यमी कहती है कि तुम सम्भोग करने में असमर्थ हो गये हो। तुम्हारे हृदय और मन को जानने में मैं असमर्थ हूँ। निश्चय से सम्भोग करने में समर्थ कोई अन्य स्त्री ही रस्सी के समान तुमसे लिपट जाये और तुम्हारा इस प्रकार आलिंगन करे जैसा कि कोई लता वृक्ष का आलिंगन करती है।।१३।।

संहिता पाठ-

अ॒न्यमू॒ षु त्वं य॑म्य॒न्य उ॒ त्वां परि॑ ष्वजाते॒ लिबु॑जेव वृ॒क्षं।
तस्यं॑ वा॒ त्वं मन॑ इ॒च्छा स वा॒ तवाधा॑ कृणुष्व सं॒वि॒दं सुभ॑द्रां।।१४।।

पद पाठ-

अ॒न्यं। ऊँ॒ इति। सु। त्वं। य॒मि॒। अ॒न्यः। ऊँ॒ इति॑। त्वां।
परि॑। स्व॒जा॒ते॒। लिबु॑जाऽइव। वृक्षं।
तस्य॑। वा। त्वं। मन॑ः। इ॒च्छ। सः। वा॒।
तव॑। अध॑। कृणु॒ष्व॒। स॒ऽविद॑ं। सुऽभद्रां।।१४।।

सायण भाष्य-

यमः पुनरप्याह। हे यमि त्वमन्यमु अन्यं पुरुषमेव सु सुष्ठु परिष्वज। अन्य उ अन्योऽपि पुरुषस्त्वां परिष्वजाते। तत्र दृष्टांतः। लिवुजेव वृक्षं यथा वल्ली गाढं वृक्षं परिष्वजते तद्वत्। तथा सति। वा शब्दः समुच्चये। त्वं तस्य च पुरुषस्य मन इच्छ।। कामय। तस्य त्वं वशवर्तिनी भवेत्यर्थः। स च

पुरुषस्तव मन इच्छतु। अधा च परस्परवशवर्तित्वानंतरं त्वं तेन सह सुभद्रां सुकल्याणीं संविदं परस्परसंभोगसुखसंवित्तिं कृणुष्व। कुरुष्व।।८।।

अन्वय-

यमि! त्वम् अन्यम् उ वृक्षम लिबुला इव ! अन्यः त्वम् परिष्वजाते। त्वं वा तस्य मनः इच्छ स वा तव अध सुभद्रां कृणुष्व।

हिन्दी अनुवाद-

यमी की इस तानेबाजी को सुन कर यम कहता है - (यमि) हे यमी! (त्वम्) तू (अन्यं) दूसरे पुरुष को (उ) निश्चय से बिना किसी सन्देह के (लिबुजा कृक्षम्) लता जिस प्रकार वृक्ष का आलिंगन करती है। (अन्यः) दूसरा पुरुष (त्वम्) तुम्हारा (परिष्वजाते) आलिंगन करे। (त्वम्) तू (वा) सम्पूर्ण रूप से (तस्य) उस पुरुष के (यनः) मन को (इच्छ) चाहती रहे और (सः) वह पुरुष (वा) निश्चय से (तव) तेरे मन को (अध) सन्देह रहित होकर चाहे और संविदम्) परस्पर संयोग सुख को (सुभद्राम्) उत्तम कलयाणकारी भावना को (कृणुष्व) करे।

भावार्थ-

अन्त में यम द्वारा यमी को निर्देश दिया गया है कि वह अन्य किसी पुरुष का आलिंगन उसी प्रकार करे जिस प्रकार वृक्ष का लता आलिंगन करती है। वह पुरुष मन से सर्वथा तेरा हो और वह संशय रहित होकर मेरे प्रति कल्याणकारिणी मति को धारण करे।

ऋषि दयानन्द का मत है कि यह सम्पूर्ण सूक्त नियोग का है। पति के पुसंत्व हीन तथा गर्भन्यास कराने में असमर्थ होने पर पति पत्नी को आदेश देता है कि वह अन्य वीर्यशाली पुरुष से समागम कर गर्भ को धारण करे। इसमें भाई-बहन के समागम की कल्पना सर्वथा भ्रान्त है।

१०. यमी वैवस्वती (२)

ऋग्वेद दशम मण्डल १५४ सूक्त मन्त्र १-५

ऋषि - यमी वैवस्वती

देवता - प्रेत

छन्द - अनुष्टुप्

सूक्त की सायण कृत पूर्वभूमिका

सोम इतिं पंचर्च तृतीयं सूक्तमानुष्टुभं। विवस्वतो दुहिता यम्यृषिः। म्रियमाणानां यजमानादीनां वर्तनमत्र प्रतिपाद्यत। अतस्तद्देवताकमिदं। तथा चानुक्रांतं। सोमो यमी भाववृत्तमानुष्टुभं त्विति।। प्रेतोपस्थान एतत्सूक्तं। सूत्रितं च। सोम एकेभ्य उरूणसावसुतृपा उदुंबलौ। आ0 ६.१०.। इति।।

संहिता पाठ-

सोम॒ एके॑भ्यः पवते घृतमेक॒ उपा॑सते।
येभ्यो॒ मधु॑ प्र॒धाव॑ति॒ तांश्चि॑द्॒देवापि॑ गच्छतात्॒।।१।।

पद पाठ-

सोमः। एके॑भ्यः। प॒व॒ते॒। घृतं। एके॑। उप॑। आ॒स॒ते॒।
येभ्यः॑। मधु॑। प्र॒धाव॑ति। तान्। चि॒त्। ए॒व। अपि॑। ग॒च्छ॒ता॒त्।।१।।

सायण भाष्य

एकेभ्यः केभ्यश्चितपितृभ्यः सोमः पवते। उपभोगाय कुल्यारूपेण प्रवहति। एषां गोत्रजाः सामानि ब्रह्मयज्ञसमयेऽधीयते। श्रूयते हि। यत्सामानि सोम एभ्यः

पवत इति। एकेऽन्ये पितरो घृतमाज्यमुपासते। उपगच्छंति। उपभुंजत इत्यर्थः। एषां पुत्रादयो यजूंषि ब्रह्मयज्ञकालेऽधीयते। श्रुतिश्च भवति। यद्यजूंषि घृतस्य कुल्या इति। येभ्यः पितृभ्यः। तादर्थ्ये चतुर्थी। उपभोगार्थ मधु क्षौद्रः प्रधावति प्रवाहरूपेण शीघ्रं गच्छति। य आथर्वणान्यंत्रान्ब्रह्मयज्ञार्थमधीयते तेषां पितृन्मधुकुल्या प्रवहति। तथा चाम्नायते। यदाथर्वणांगिरसो मधोः कुल्या इति। तांश्चिदेव तान्पूर्वोक्तान्सर्वानेव हे प्रेत त्वं प्रत्यपि गच्छतात्। अपिगच्छ। प्राप्नुहि।।

अन्वय-

एकेभ्यः सोमः पवते एके घृतम् उपासते। येभ्यः मधु प्रधावति। तान् इत् एव अपि गच्छतात्।

हिन्दी अनुवाद-

(एकेभ्यः) कई एव व्यक्तियों के लिये, पितरों के लिए (सोमः) सामगान अथवा सोम (पवते) ज्ञान प्रदान करता है (एके) कुछ दूसरे पितर (घृतम्) यजुः अथवा भाग्य का (उपासते) आश्रय लेते हैं (येभ्यः) जिन पितरों के लिए (मधु) अथर्व अथवा मधुरस (प्रधावति) ज्ञान प्रदान करता है, प्रवाह रूप में शीघ्र गति करता है, (तान् इत्) उन पितरों के लिए ही (अपि गच्छतात्) हे हवि तुम प्राप्त हो।

भावार्थ-

अन्त्येष्टि संस्कार के समय पितरों के लिये सोम, घृत, मधु आदि की आहुतियां दी जाती है यहां सोम का अभिप्राय सामवेद के मन्त्रों से, घृत का अभिप्राय यजुर्वेद मन्त्रों से और मधु का अभिप्राय अथर्ववेद के मन्त्रों से है। मृतक को दूसरे जन्म में इन साम, यजुः अथर्व का ज्ञान प्राप्त हो, इस मन्त्र से यह कामना की गई है।

संहिता पाठ-

तप॑सा॒ ये अ॑नाधृ॒ष्यास्तप॑सा॒ ये स्व॑र्य॒युः ।
तपो॒ ये च॑क्रि॒रे मह॒स्तांश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ।।२ ।।

पद पाठ-

तप॑सा। ये। अ॒ना॒धृ॒ष्याः। तप॑सा। ये। स्वः॑। य॒युः।
तपः॑। ये। च॒क्रि॒रे। महः॑। तान्। चि॒त्। ए॒व। अपि॑। ग॒च्छ॒ता॒त्।।२।।

सायण भाष्य-

ये जनास्तपसा कृच्छ्रचांद्रायणादिना युक्ताः संतोऽनाधृष्याः पापैरप्रधृष्या भवंति। ये च तपसा यागादिरूपेण साधनेन स्वर्ययुः स्वर्गं यांति प्राप्नुवंति। ये च महो महत्तपोऽन्यैर्दुष्करं राजसूयाश्वमेधादिकं हिरणगर्भाद्युपासनं वा चक्रिरे कुर्वंति एतेषु प्रवर्तते तेषु लोकेषु। तांश्चित्तानेव तपस्विनो हे प्रेत अपि गच्छ।।

अन्वय

ये तपसा अनाधृष्यासः ये तपसा स्वः ययुः ये महः तपः चक्रिरे, तान् चित् एव अधि गच्छतात्।

हिन्दी अनुवाद-

(ये) जो पितर जन (तपसा) तपस्या के द्वारा (अनाधृष्यासः) धर्षित, पराजित नहीं किये जा सकते, (ये) जो पितर (तपसा) तपस्या के सामर्थ्य से (स्वः) ज्ञान को, प्रकाश को, स्वर्ग को (ययुः) प्राप्त कर चुके हैं (ये) जिन पितरों ने (महः) महान् (तपः) तप को (वक्रिरे) किया है, (तान्, चित् एव) उनको ही (अपि गच्छतात्) यह हवि प्राप्त हो।

भावार्थ-

तपस्या से अपराजित होने वाले और ज्ञान को प्राप्त करने वाले पितरों को ही जन्मान्तरों में यह हवि प्राप्त होती है।

संहिता पाठ-

ये युध्यंते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः।

ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात्।।३।।

पद पाठ-

ये। युध्यंते। प्रऽधनेषु। शूरासः। ये। तनूऽत्यजः।

ये। वा। सहस्रऽदक्षिणाः। तान्। चित्। एव। अपि। गच्छतात्।।३।।

सायण भाष्य-

प्रधनेषु। प्रकीर्णान्यस्मिधनानि भवंतीति प्रधनाः संग्रामाः। तेषु शूरासः शौर्यवंतो ये युध्यंते शत्रून्संप्रहरंति। ये च तनूत्यजः शरीराणां तत्र त्यक्तारो भवंति। ये वा ये च सहस्रदक्षिणाः सहस्रदक्षिणान् क्रतूननुष्ठितवंतः। तान्सर्वानेव त्वमपि गच्छ। येषूत्तमेषु लोकेषु ते निवसंति तं लोकं प्राप्नुहीत्यर्थः।।

अन्वय-

शूरासः ये प्रधनेषु युध्यन्ते, ये तनूत्यजः वा ये सहस्रदक्षिणाः तान् चित् एव अपि गच्छतात्।

हिन्दी अनुवाद--

(शूरासः) शूरवीर (ये) जो व्यक्ति (प्रधनेषु) संग्रामों में (युध्यन्ते) युद्ध करते हैं (ये) जो लोग (तनूत्यज) शरीर को छोड़ने वाले होते हैं (वा) अथवा (ये) जो व्यक्ति (सहस्रदक्षिणाः) हजरों धनों का दान करने वाले होते हैं, (तान् एव) उनको ही (गच्छतात्) यह हवि प्राप्त होवे।

भावार्थ-

यह छवि जन्मान्तरों में उनको प्राप्त होती है, जो शूरवीर होते हैं और युद्धों में लड़कर स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, हजारों धनों का दान करते हैं।

संहिता पाठ-

ये चि॒त्पूर्वे॑ ऋ॒त॒साप॑ ऋ॒तावा॑न ऋ॒ता॒वृधः॑।
पि॒तृन्तप॑स्वतो य॒म ताँश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात्॥४॥

पद पाठ-

ये। चि॒त्। पूर्वे॑। ऋ॒त॒ऽसाप॑ः। ऋ॒तऽवा॒नः। ऋ॒त॒ऽवृधः॑।
पि॒तृन्। तप॑स्वतः। य॒म॒। तान्। चि॒त्। ए॒व। अपि॑। ग॒च्छ॒ता॒त्॥४॥

सायण भाष्य-

ये चिद्ये च पूर्वे पूर्वपुरुषा ऋतसाप ऋतं सत्यं यज्ञं वा स्पृशंतः अत एवर्तवान ऋतेन युक्ता ऋतवृध ऋतस्य वर्धकाश्च भवंति तपस्वतस्तपसा युक्तांस्तानेव पितृन् हे यम नियतः त्वमपि गच्छ॥

अन्वय-

ये चित् पूर्वे ऋतसापः ऋतावानः ऋतावधः तपस्वतः तान् पितृन् चित् एव अपि यमः गच्छतात्।

हिन्दी अनुवाद-

(ये चित्) जो भी व्यक्ति (पूर्वे) पूर्वपुरुष पूर्वज ज्ञान से सम्पन्न होते हैं (ऋतसापः) सत्य का पालन करने वाले हैं (ऋतावानः) यज्ञ करने वाले हैं (ऋतावधः) सत्य का प्रचार प्रसार करके उसको बढाने वाले हैं (तपस्वतः) तपस्या करने वाले तपोनिष्ठ हैं (तान् पितृन्) उन पितरों को (चित् एव अपि) भी (यम) हे यम देवता! (गच्छतात्) यह हवि प्राप्त हो।

भावार्थ-

जो हमारे पूर्वज पूर्णज्ञानी है, सत्य का पालन करते हैं, यज्ञ करते हैं, सत्य का प्रचार करते हैं और निरन्तर तपस्या में संलग्न रहते हैं, उनको हे यम देवता यह हवि प्राप्त होवे।

संहिता पाठ

सहस्रंणीथाः कवयो ये गोपायंति सूर्यं।
ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात्।।५।।

पद पाठ-

सहस्रंऽनीथाः। कवयंः। ये। गोपायंति। सूर्यं।
ऋषींन्। तपंस्वतः। यम। तपःऽजान्। अपिं। गच्छतात्।।५।।

सायण भाष्य-

सहस्रनीथाः सहस्रनयनाः कवयः क्रांतदर्शिनो ये सूर्यममुमादित्यं गोपायंति रक्षंति तपस्वतस्तपसा युक्तांस्तपोजांस्तपसः सकाशादेवोत्पन्नांस्तानृषीन् हे यम नियत त्वमपिगच्छ।।१२।।

अन्वय-

सहस्रणीथाः कवयः ये सूर्यम् गोपायन्ति, यम तपोजान् तपस्वतः तान् ऋषीन् अपि गच्छतात्।

हिन्दी अनुवाद-

(सहस्रर्णीथाः) हजारों दृष्टियों वाले (कवयः) क्रान्त द्रष्टा जो व्यक्ति (सूर्यम्) कान्ति और प्रकाशवान् सूर्य को भी (गोपायन्ति) अपने ताप और तेज से तिरोहित कर देते हैं (यम) हे यम! (तपोजान्) मानों तपस्या से उत्पन्न होने वाले (तपस्या करने वाले) (तान्) उन (ऋषीन् अपि) मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषियों को भी यह हवि प्राप्त हो।

भावार्थ-

क्रान्तद्रष्ठा ऋषियों की हजारों दृष्टियां हैं। ये ज्ञान और कर्म से सदा तपस्या में लीन रहते है। हे यम देवता! उनको भी इस अत्त्येष्टि यज्ञ की हवि प्राप्त होती है। अन्त्येष्टि संस्कार में इस सूक्त द्वारा आहुति प्रदान की जाती है। प्रेत मार्ग पर ले जाने वाला देवता यम हैं। यम की बहन यमी इस सूक्त की द्रष्टा ऋषि है।

११. सूर्या सावित्री

ऋग्वेद दशम मण्डल ८५ सूक्त मन्त्र १-४७

ऋषि - सूर्या सावित्री

देवता - सोम

छन्द - त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्

सूक्त की सायण कृत पूर्व भूमिका -

सप्तमेऽनुवाके षट् सूक्तानि। तच सत्येनेति सप्तचत्वारिशदृचं प्रथमं सूक्तं सवितृसुतायाः सूर्याया आर्षं। नवोनव इति तिस्रोऽनृक्षरा इति द्वे गृभ्णामीति द्वे यदश्विना पृच्छमानावित्येषा पूषा त्वेतो नयत्वित्येकाघोरचक्षुरिति चैवमेता दशर्चस्त्रिष्टुभः। तृष्टमेतदित्येषोरोबृहत्यष्टकद्वादशद्वाष्टकवती। पूर्वापरं चरत इह प्रियं प्रजया नः प्रजां जनयत्वित्येतास्तिस्रो जगत्यः। शिष्टास्त्रयस्त्रिंशदनुष्टुभः। आदितः पंचानामृचां सोमो देवता। तत एकादशभिः सूर्या स्वविवाहं स्तुती। अतस्तत्र योऽर्थः प्रतिपाद्यते स एव देवतात्वेन विज्ञेयः। या तेनोच्यते सा देवतेति न्यायात्। सप्तदश्या देवा देवता। अष्टादश्याः सोमार्कौ। एकोनविंश्याश्चंद्रमाः। सुकिंशुकमित्याद्या नवर्चो विवाहमंत्रा आशिषः प्रतिपादकाः। अतस्तत्र तत्र प्रतिपाद्योऽर्थो देवता। परा देह्यश्रीरा तनूरिति द्वे वध्वा विवाहकाले परिहितस्य वाससः संस्पर्शनिंदयित्र्यौ। ये वध्वश्चंद्रमिति दंपत्योः क्षयरोगस्य नाशिनी। अतस्तद्देवताका। परिशिष्टानां षोडशानां सूर्या देवता। तथा चानुक्रांतं। सत्येन सप्तचत्वारिंशत् सर्वमनुक्रातं।। सूक्तविनियोगो लैंगिकः।।

संहिता पाठ-

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठंति दिवि सोमो अधि श्रितः।।१।।

पद पाठ-

सत्येन। उत्तभिता। भूमिः। सूर्येण। उत्तभिता। द्यौः।
ऋतेन। आदित्याः। तिष्ठंति। दिवि। सोमः। अधि। श्रितः।।१।।

सायण भाष्य-

सत्येन ब्रह्मणानंतात्मना। ब्रह्मा खलु देवानां मध्ये सत्यभूतः। तेनाधःस्थितेन भूमिरुत्तभिता। उपरि स्तंभिता। यथाधो न पतेत्तथा कृता। यदा। सत्येनानृतप्रतियोगिना धर्मेण भूमिरुत्तभितोद्धृता फलिता भवतीत्यर्थः। असति सत्ये भूम्यां सस्यादयो न फलंति। तथा सूर्येण देवेन द्यौरुत्तभिता। सूर्यो हि द्युस्थानत्वाद्दिवं दधार। ऋतेन यज्ञेनादित्या अदितेः पुत्रा देवास्तिष्ठंति। यज्ञेन यजमानदत्तेन खल्वाहुत्या देवा उपजीवंति। दिवि द्युलोके सोमो देवानामाप्यायनकारी वल्लीरूपो देवतारूपश्चाधि श्रितः। अधितिष्ठति। इति स्वपतिं सोमं सूर्या स्तौति।।

अन्वय-

सत्येन भूमिः उत्तभिता। सूर्येण द्यौः उत्तभिता, ऋतेन आदित्याः तिष्ठन्ति दिवि अधि साोमः श्रितः।

हिन्दी अनुवाद-

(सत्येन) सत्य के द्वारा (भूमि) पृथिवी (उत्तभिता) थमी हुई है (सूर्येण) सूर्य के द्वारा (द्यौः) द्युलोक (उत्तभिता) थामा हुआ है। (ऋतेन) सृष्टि के ऋत नियम के द्वारा (आदिन्याः) आदित्य (तिष्ठन्ति) ठहरे हुए हैं (दिवि अधि) द्यु लोक के ऊपर

(सोमः) सोम, चन्द्रमा (श्रितः) ठहरा हुआ है।

भावार्थ-

परमेश्वर के नित्य नियमों के द्वारा पृथिवी, धुलोक, आदित्य चन्द्रमा आदि नव नक्षत्र आदि ब्रह्माण्ड स्थित है। अतः परमेश्वर के सृष्टि नियम एवं ब्रह्माण्ड के नक्षत्र आदि अपने नित्य नियमों से स्थिर रह कर सृष्टि को बनाये रखते है।

संहिता पाठ-

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः।।२।।

पद पाठ-

सोमेन। आदित्याः। बलिनः। सोमेन। पृथिवी। मही।
अथो इति। नक्षत्राणां। एषां। उपऽस्थे। सोमः। आऽहितः।।२।।

सायण भाष्य-

सोमेनादित्या अदितेः पुत्रा इंद्रादयो बलिनो भवंति। ऐंद्रवाय्वादिग्रहपरिग्रहादिति भावः। तथा सोमेनाहुत्यात्मग्नौ हुतेन पृथिवी भूमिर्मही महती भवति। आहुत्या वृष्टिद्वारेण सस्यादिसंपत्तेः। अथो अपि चायं सोमो नक्षत्राणामेषां। न क्षं त्रायंत इति नक्षचा ग्रहचमसादयः। तेषामेषामुपस्थे सोमो रसात्मक आहितः। यदा। सिद्धानामेव नक्षत्राणामुपस्थ उपस्थाने द्युलोके सोम आहितः। तुतीयस्यातिमितो दिवि सोम आसीत्तं गायत्र्याहरत्। तै0 ब्रा0 ३.२.१.१.। इत्यादिश्रुतेः।। देवतारूपसोमपक्षे। सोमेनादित्या देवा बलिनो बलवंतो भवंति तस्यैकैककत्वास्वादनात्। प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविरित्यादिस्मृतेः।

सोमेन पृथिवी मही। अमृतसेकेनौषध्याद्यभिवृद्धा पृथिव्या बलवत्त्वं। चंद्रस्य नक्षत्राणामुपस्थे स्थितिः प्रसिद्धा।।

अन्वय-

सोमेन आदित्याः बलिनः सोमेन पृथिवी नही। अथ एषाम् नक्षत्राणाम् उपस्थे सोम आहित।।

हिन्दी अनुवाद--

(सोमेन) सोम रूप परमेश्वर के द्वारा (आदित्याः) अदिति के पुत्र अदित्य आदि देवता (बलिनः) सामर्थ्यशाली होते है (सोमेन) सोम के द्वारा (पृथिवी) यह पृथिवी (मही) विशाल महती होती है। (अथो) और (एषां) इन (नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों के (उपस्थे) स्थान में, आश्रय में (सोमः) सोम चन्द्रमा (आहितः) स्थापित है।

भावार्थ-

परमेश्वर रूप स्थापित शक्ति से ही आदित्य, पृथिवी आदि सब नक्षत्र शक्तिशाली होते हैं और अपने अपने स्थानों में स्थिर रहते हैं। इन नक्षत्र के मध्य स्थानों में सोम तत्व विद्यमान रहता है।

संहिता पाठ-

सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिषंत्त्योषधिं।

सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन।। ३।।

पद पाठ-

सोमं। मन्यते। पपिऽवान्। यत्। संऽपिंषंति। ओषधिं।

सोमं। यं। ब्रह्माणः। विदुः। न। तस्यं। अश्नाति। कः। चन।। ३।।

सायण भाष्य-

सोमं मन्यते। कः। यः पपिवान्। मैथुनकामार्थ चिकित्साद्यर्थ पीतः सोमो येन। यद्यमित्यर्थः। य सोममोषधिं वल्लीरूपं संपिंषंति। सामर्थ्याद्रासायनिकाः। न च स साक्षात्सोमः। तर्हि कः। उच्यते। सोमं हि तं मन्यते यं ब्रह्माणः। यद्ब्रह्मशब्दो ब्राह्मणशब्दपर्यायोऽस्ति कुतो नु चरसि ब्रह्मन् तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्नित्यादिप्रयोगात्। ब्राह्मणा इत्यर्थः। ते चर्त्विजो यजमानश्च यागसाधनभूतं संस्कर्तुं विदुः जानंति तस्याशं। यद्वा। कर्मणि षष्ठी। तं सोमं कश्चन नाश्नाति। कश्चिदप्ययज्वेति शेषः। यज्वैनं भक्षयितुमर्हति नान्य इत्यर्थः। एवमोषधिपक्षे।। अथ चंद्रपक्ष उच्यते। तं सोमं मन्यते पपिवान् पीतवान्यजमानो यद्यमोषधिरूपं संपिंषंत्यभिषवग्रावभिरध्वर्य्वादयो यजमानश्च। न च स सोमः। कस्तर्हि। यं ब्रह्माणो ब्राह्मणा अभिज्ञा दैवज्ञा विदुःकथयंति चंद्रमसं न तस्याश्नाति कश्चनादेवो देवेभ्योऽन्यो मनुष्यादिः। देवा अग्न्यादयो रश्मयो वा। यज्ञार्हसोमस्यासोमत्वं न निंदायै अपि त्वितरस्य स्तुत्या इति मंतव्यं। अपशवोऽन्ये गोअश्वेभ्य इत्यादिवत्।। एवमत्र सोम्या उभयथा योज्याः।।

अन्वय-

पपिवान् सोमम् मन्यते यत् ओपधिम् संपिषन्ति यं सोमं ब्रह्माणः विदुः तस्य कश्चन न अश्नाति।

हिन्दी अनुवाद-

(पपिवान्) चिकित्सा कार्य के लिए पान करने वाला तो (सोमम्) उसी सोम को (मन्यते) सोम मानता है (यत्) जिसको कि (संपिषन्ति) पीस कर और निचोड़ कर पान करते है। परन्तु (यम्) जिस (सोमम्) सोम को (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानी वेदवेत्ता जन (विदुः) सोम के रूप में जानते हैं (तस्य) उस सोम का (कश्चन) कोई भी व्यक्ति (न अश्नाति) भोग नहीं करता है।

भावार्थ-

सोम औषधि के रस को पीने वाला मनुष्य तो उसी सोम को जानता है, जिसे कूट पीस कर निचोड़ कर सोम के रूप में पान करता है। परन्तु ब्रह्मवेता विद्वान्‌जन उसको सोम जानता है, जिसको कि कोई खा पी नहीं सकता। वह तो दिव्य आनन्द प्रदान करने वाली कोई दिव्य शक्ति ही है।

संहिता पाठ-

आ॒च्छद्विधानैर्गुपि॒तो बार्हतैः सोम रक्षि॒तः।
ग्राव्णा॒मिच्छृण्वन्ति॑ष्ठसि॒ न ते॑ अश्नाति॒ पार्थिवः।।४।।

पद पाठ-

आ॒च्छत्ऽविधानैः। गुपि॒तः। बार्हतैः। सो॒म॒। र॒क्षि॒तः।
याव्णां। इत्। शृण्वन्। ति॒ष्ठ॒सि॒। न। ते॒। अ॒श्ना॒ति॒। पार्थिवः।।४।।

सायण भाष्य-

हे सोम आच्छद्विधानैः। आच्छादयंति विधानानि येषां विद्यंते त आच्छद्विधानाः। तैर्गुपितः। तथा बार्हतैर्गुपितः। स्वानभ्राजांघार्यादिभिः सप्तभिः सोमपाले रक्षितस्त्वं। एते वा अमुष्मिँल्लोके सोममरक्षन्। तै0सं0 ६.१.१०.५। इति ब्राह्मणं। ग्राव्णामिच्छृण्वन्नभिषवग्राव्णां ध्वनिं शृण्वन्नेव तिष्ठसि। ते त्वां पार्थिवः पार्थिवो जनो नाश्ताति। न हि द्युस्थश्चंन्द्ररूपोऽत्रत्यैः पानयोग्यो भवति। चंद्रमा वै सोमो देवानामन्नं तं पौर्णमास्यायामभिषुण्वंतीति वाजसनेयकं।।

अन्वय-

आच्छद्विधानैः गुपितः बार्हतैः रक्षितः सोमः ग्राव्णाम् इत् शृण्वन् एव तिष्ठसि तै पार्थिवः न अश्नाति।

हिन्दी अनुवाद--

(आच्छद्विधानै) दैवी विधान आदि विद्याओं द्वारा आच्छादित होकर (गुपितः) रक्षा किया जाता हुआ तथा (बार्हतैः) बृहत्साम आदि शक्तियों द्वारा (रक्षितः) रक्षा किया जाता हुआ (सोमः) सोम (ग्राव्णाम्) पाषाणो, मेधों की (इत् शृण्वन्) ध्वनि को सुनता हुआ (तिष्ठसि) जब स्थित रहता है (तेः) तुम्हारे (पार्थिवः) पृथिवी स्थित प्राणी उस सोम को (न अश्नाति) भोग नहीं करता है।

भावार्थ-

यह सोम दिव्य पदार्थ है और विद्याओं द्वारा रक्षित है तथा कोई सांसारिक व्यक्ति इसका भोग नहीं कर सकता। सांसारिक व्यक्ति सोम रस आदि कूटने छानने वाले पाषाणों की ध्वनि को सुनता है, परन्तु उस दिव्य सोम का भोग नहीं कर सकता।

संहिता पाठ-

यत्त्वा देव प्रपिबंति तत आ प्यायसे पुनः।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः।।५।।

पद पाठ-

यत्। त्वा। देव। प्रऽपिबंति। ततः। आ। प्यायसे। पुनरिति।
वायुः। सोमस्य। रक्षिता। समानां। मासः। आऽकृतिः।।५।।

सायण भाष्य-

हे देव सोम यद्यदा त्वा त्वां प्रपिबंत्योषधिरूपं त्रिष्वपि सवनेषु ततोऽनंतरमेव पुनरा प्यायसे। आ प्यायस्व सं। ऋ0 १.९१.१६ । इति प्रातःसवने सं ते पयांसि। ऋ0 १.९१.१८ । इत्युत्तरयोः सवनयोराप्यायसे। किंच वायुस्तव

सोमस्य रक्षिता। यथा न शुष्यति तथा। वायुः शोषकः प्रसिद्धो लोके। किंच मासः। परिमीयत इति मासः सोमः। स च समानां संवत्सराणामाकृतिराकर्ता व्यवच्छेदको भवति। संवत्सरे संवत्सरे वसंतादिकालेष्वनुष्ठीयमानत्वाद्वसंते वसंते ज्योतिषा यजेतेति श्रुतेः। यद्वा। सोमाधारवनस्पतिविकारग्रहद्वारेण वायुः सोमरसस्य रक्षिता भवति। वायुगोपा वनस्पतय इति श्रुतेः। एवं वल्लीरूपसोमपक्षे योजना। चंद्रपक्षे तु हे देव सोम यद्यदा त्वा त्वां प्रपिबंति रश्मयोऽपरपक्षे ततोऽनंतरमेव पूर्वपक्षे पुनरा प्यायसे। वायुश्च सोमस्य तव रक्षिता। वाय्वधीनत्वाच्चंद्रगतेः। किंच समानां संवत्सराणां मासः।। षष्ठयेकवचनमेतत्।। मासस्याकृतिश्च कर्ता त्वं चासि। एकैककलाक्षयसंवृद्धिभ्यां हि मासः पूर्यते तैः संवत्सर इति ।।२०।।

अन्वय-

देव त्वा यत् प्रपिबन्ति तत पुनः आ प्यायसे। वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मासः आकृतिः।।

हिन्दी अनुवाद--

हे (देव) ! दिव्य गुणों से सम्पन्न चन्द्रमा (यत्) जो कि (त्वा) तुमको (प्रपिबंत्ति) पूर्व पक्ष में कृष्ण पक्ष में रश्मियां पान कर जाती है, (ततः) तदन्तर तुम (पुनः) फिर शुक्ल पक्ष में (उत प्यायसे) पूर्ण हो जाते हो। (वायुः) वायु देवता (सोमस्य) चन्द्रमा का (रक्षिता) रक्षा करने वाला है। वह (समानां) संवत्सरों का (मासः) और महीनों का (आकृतिः) निष्पादन करने वाला है।

भावार्थ-

चन्द्रमा की किरणों को पूर्व पक्ष में पान कर लिया जाता है। वह उत्तर पक्ष में शुक्ल पक्ष में पुनः पूर्ण हो जाता है। वायु इसकी गति की रक्षा करता है। वह ही वर्षो और महीनों का निष्पादन करता है।

संहिता पाठ-

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतं।।६।।

पद पाठ-

रैभीं। आसीत्। अनुऽदेयीं। नाराशंसी। निऽओचनी।
सूर्यायाः। भद्रं। इत्। वासः। गाथया। एति। परिऽकृतं।।६।।

सायण भाष्य-

आभिः सूर्या स्वविवाहमस्तौदित्युक्तं। सूर्या सावित्री ब्रूते। रैभी। रैभ्यः काश्चनर्चः। रैभीः शंसति रेभंतो वै देवाश्चर्षयश्च स्वंर्ग लोकमायन्नित्यादिब्राह्मणविहिता रैभ्यः। ऐ0ब्रा0 ६.३२.। सा रैभ्यनुदेव्यासीत्। दीयमानवधूविनोदनायानुदीयमाना वयस्यासीत्। तथा नाराशंसी। प्राता रत्नं। ऋ0१.१२५.१.। इत्यादिका मनुष्याणां स्तुतयो नाराशंस्यः। सा नाराशंसी न्योचनी। उचतिः सेवाकर्मा। सा वधूशुश्रूषार्थ दीयमाना दास्यभवत्। सूर्याया मम भद्रं वासो विचित्रं दुकूलादिकमाच्छादनयोग्यं वस्त्रं गाथया परिष्कृतमलंकृतमेति। गाथा गीयत इत्यादिब्राह्मणोक्ता गाथा। तया गाथया यत्परिष्कृतमस्ति तद्वासोऽभवदिति।।

अन्वय-

रैभीं अनुदेयी आसीत् नाराशंसी न्योचनी सूर्यायाः वासः भद्रम् इत् गाथया परिष्कृतम् एति।

हिन्दी अनुवाद-

सूर्या सावित्री के विवाह के समय (रैभी) रैभी नामक ऋचा (अनुदेयी) विवाह के बाद उसके साथ चलने वाली वयस्या थी और (नाराशंसी) नाराशंसी ऋचा

(न्योचनी) उपवस्त्र थी (सूर्याया) सूर्या के विवाह के समय (वासः) उसका वस्त्र और उसकी कान्ति (भद्रम् इत्) सुन्दर आकर्षक थी और वह (गाथया) गाथा युक्त मन्त्रों से (परिष्कृतम्) अलंकृत रहता है।

भावार्थ-

सूर्या का जब सोम से विवाह होने लगा तो उसको बहुत सुन्दर अलंकृत वस्त्र पहनाये गये। उस समय रैभी और नाराशंसी मन्त्रों का गान किया गया। रैभी ऋचायें मानो विवाह वाद दिया जाये वाला यौतुक था और नाराशंसी मन्त्र ही उसकी ओढ़नी या उपवस्त्र थे।

संहिता पाठ-

चित्तिरां उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यंजनं।

द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिं।।७।।

पद पाठ-

चित्तिः। आः। उपऽबर्हणं। चक्षुः। आः। अभिऽअंजनं।

द्यौः। भूमिः। कोशः। आसीत्। यत्। अयात्। सूर्या। पतिं।।७।।

सायण भाष्य-

चित्तिर्देवतोपबर्हणमाः। आसीत। चक्षुरभ्यंजनमाः। आसीत्। तथा हि। वृत्रस्य कनीनिका परापतत्रिककुन्नामपर्वते। तेन चैककुदेनांजनसजातीयेन चक्षुषी आंजते। तच्चक्षुरेवांजनमासीदिति। द्यौश्च भूमिश्च कोश आसीत्। कोशस्थानीये अभूतां। यद्यदा सूर्या पतिं स्वकीयं नवभर्तारं सोममयात् अगच्छत् तदैवमुपकरणान्यासन्।

अन्वय-

यत् सूर्या पतिम् अयात् चित्तिः उपबर्हणम् आ, चक्षुः अभ्यञ्जनम् आ द्यौः भूमिः कोशः आसीत्।

हिन्दी अनुवाद-

(यत्) जब सावित्री सूर्या (पतिम्) अपने पति के साथ (अयात्) विदा होकर गई उस समय (चित्तिः) देवताओं का चैतन्य सिरहाना ही (उपबर्हणम् आ) तकिये के समान था, (चक्षुः) उसके नेत्र ही (अभ्यञ्जनम् आः) अंजन के समान थे। (द्यौः) द्युलोक और (भूमिः) पृथिवी लोक (कोशः) उसके कोश के समान थे।

भावार्थ-

पति के घर जाने पर जो यौतुक दहेज दिया जाता है उस समय उसका सिरहाना ही उपवर्हण होता है नेत्र ही अंजन होते हैं और द्युलोक और पृथिवी ही उसके कोश होते हैं।

संहिता पाठ-

स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छंद ओपशः।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः।।८।।

पद पाठ-

स्तोमाः। आसन्। प्रतिऽधयः। कुरीरं। छंदः। ओपशः।
सूर्यायाः। अश्विना। वरा। अग्निः। आसीत्। पुरःऽगवः।।८।।

सायण भाष्य-

सूर्याया रथस्य स्तोमास्त्रिवृदादयः प्रतिधय आसन्। प्रतिधीयंत इति प्रतिधय ईषातिर्यगायतका ष्ठादयः। तथा कुरीरं छंदः कुरीरनामकं छंदोऽनस ओपशोऽभवत्। येनोपशेरते स ओपशः। तादृशायाः सूर्याया अश्विनाश्विनौ वरा वरावास्तामिति शेषः। तस्या विवाहे पुरोगवः पुरोगंता पुरतो गंता यः पूर्वमेव गच्छति तत्स्थानीयोऽग्निरासीत्।। प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं

प्रायच्छत्सूर्यो सावित्रीं तस्यै सर्वे देवा वरा आगच्छन्नित्यादि हि ब्राह्मणं । ऐ०ब्रा० ४.७.। अत्रायमभिप्रायः। प्रजापतिः सविता स्वदुहितरं सोमाय प्राचच्छत्। सोमाय दास्यामीति मनीषामकरोत्। तस्मिन्समये पुत्र्या उपचारार्थं प्रदानान्युक्तान्यभवन्। तथा च सत्यश्विनौ प्रबलौ संतावाजिं पुरतो गत्वा तामलभेतामिति। उत्तरत्रापि सोमो वधूयुरभवदित्यादिनायमेवार्थः स्पष्टो भविष्यति। योषावृणीत जेन्येत्यादिकमुक्तं।

अन्वय-

स्तोमा सूर्यायाः प्रतिधयः आसन्। कुरीरम् छन्दः ओपशः अश्विना वरा पुरोगवः अग्निः आसीत्।

हिन्दी अनुवाद--

(स्तोमाः) रथ के अरे (सूर्यायाः) सूर्या के (प्रतिधयः) धारण करने वाले काष्ठ (आसन्) थे। (कुरीम्) कुरीर नामक (छन्दः) छन्द (ओपशः) रथ से आगे का भाग था। (अंश्विना) प्राण अपान नामक वायु (वरा) बराती थे (पुरोमवः) आगे चलने वाला पुरोहित (अग्निः) अग्नि ही (आसीत्) था।

भावार्थ-

प्रभु ने कल्पना की है कि जब सूर्या का सोम से विवाह हुआ तो स्तोम अर्थात् स्तोत्र उसके रथ के धारण करने वाले काष्ठ थे, कुरीर नामक छन्द रथ के आगे का भाग था, अश्विनी नामक प्राण और अपान वायु ही उसके बराती थे तथा सबसे आगे पुरोहित ही अग्नि था।

संहिता पाठ-

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसंतीं मनसा सवितादादात्।।९।।

पद पाठ-

सोमः। वधूऽयुः। अभवत्। अश्विना। आस्तां। उभा। वरा।
सूर्या। यत्। पत्ये। शंसंतीं। मनसा। सविता। अददात्।।९।।

सायण भाष्य-

सोमो वधूयुर्वधूकामो वरोऽभवत्। तस्मिन्समयेऽश्विनावुभौ वरा वरावास्तां। अभूतां। यद्यदा सूर्या पत्ये शंसंती पतिं कामयमानां। पर्याप्तयौनवनामित्यर्थः। सूर्यां मनसा सहिताय सोमाय वराय सविता तत्पितादददात् प्रादात दित्सां चकार।।

अन्वय-

सोमः वधुयुः अभवत्। अश्विनौ उभा वरा आस्ताम्। यत् पत्ये मनसा शंसत्तीं सूर्यां सविता अददात्।

हिन्दी अनुवाद-

(सोमः) सोम देवता (वधूयुः) वधू की कामना करने वाला (उाभवत्) होता है। (अश्विना) प्राण अपान वायु (उभा) दोनों (वरा) वर के साथी (आस्ताम्) होते हैं। (यत्) जबकि (पत्ये) पति के लिए (मनसा) अपने मन से (शंसन्तीम्) चाहती हुई (सूर्याम्) सूर्या को (सविता) उसके पिता सविता देवता ने (अददात्) प्रदान किया है।

भावार्थ-

सूर्या के विवाह के समय सोम देवता धचू की कामना करने वाला, प्राण-अपान वायु दो वशती थे, जबकि पति की कामना करने वाली सूर्या के लिये वर को देने का उसके पिता सविता ने निश्चय किया।

संहिता पाठ-

मनो अस्या अन आसीद्द्यौरासीदुत च्छदिः।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात्सूर्या गृहं।।१०।।

पद पाठ-

मर्नः। अ॒स्याः॒। अनः। आ॒सी॒त्। द्यौः। आ॒सी॒त्। उ॒त। छ॒दिः।

शुक्रौ। अ॒न॒वड्वाहौ। आ॒स्ता॒ं। यत्। अयात्। सूर्या। गृहं।।१०।।

सायण भाष्य-

अस्याः सूर्यायाः पत्युर्गृहं गच्छंत्या अनो रथो मन आसीत्। या पतिगृहं त्वया गच्छामीति मतिरस्ति सान आसीत्। उतापि च तस्या अनसो द्यौर्द्युलोकश्छदिरुपर्यपिधानमासीत्, शुकौ दीप्तौ सूर्याचंद्रमसावनड्वाहौ रथस्य वोढारावास्तां। अभवतां। यद्यदा सूर्या गृहं सोममयात् अगात्।।२१।।

अन्वय-

यत् सूर्या गृहम् अयात् अस्या मनः अनः आसीत्, उत द्यौः छदिः आसीत् शुक्रौ अनड्वाहौ आस्ताम्।

हिन्दी अनुवाद-

(यत्) जब कि सविता पुत्री (सूर्या) ने (गृहम्) अपने पति के घर की ओर (अयात्) प्रस्थान किया उस समय (अस्या) इस सूर्या का (मनः) मन (अनः) रथ (आसीत्) था (उत) और (द्यौः) द्युलोक आकाश (छदि) छत (आसीत्) था। (शुक्रौ) दो चमकते हुए शुक्र तारे (अनड्वाहां) रथ के दो बैल (आस्ताम्) थे।

भावार्थ-

जब सूर्या अपने पिता के घर से पति के घर को प्रस्थान करती है तो उसका मन रथ होता है, पति के घर पहुँचने के लिए जो अति तीव्र गति होता है, धुलोक ऊपर की छत होता है और प्रकाशमान् दो शुक्र तारे रथ को खींचने वाले दो बैल होते है।

संहिता पाठ-

ऋ॒क्सा॒माभ्या॑म॒भिहि॑तौ॒ गावौ॑ ते साम॒नावि॑तः।
श्रोत्रं॑ ते च॒क्रे आ॑स्तां दि॒वि पंथा॑श्चराच॒रः॥११॥

पद पाठ-

ऋ॒क्ऽसामाभ्या॑। अ॒भिऽहिं॑तौ। गावौ॑। ते॒। सा॒म॒नौ। इ॒त॒ः।
श्रोत्रं॑। ते॒। च॒क्रे इति॑। आ॒स्ता॒ं। दि॒वि। पंथा॑ः। च॒रा॒च॒रः॥११॥

सायण भाष्य-

हे सूर्ये देवि ते तवर्क्सामाभ्यामभिधानीस्थानाभ्यामभिहितौ गावौ गोस्थानीयौ सूर्याचंद्रमसौ सामनौ सामानौ संतावितः। गच्छतः। अनोवाहौ पत्युर्गृहं प्रति गच्छतः। ते तव श्रोत्रं। श्रोत्रे इत्यर्थः। वरस्य गुणग्राहिणी श्रोत्रे एव चक्रे आस्तां। मनोरूपस्य रथस्य श्रोत्रे चक्रे अभवतामित्यर्थः। दिवि पंथाश्चराचरश्चलाचलोऽत्यंतं गमनसाधनभूतो मार्गोऽभूत्। रथसंचारप्रदेशो द्युलोक आसीत्॥

अन्वय-

ते गावौ ऋक्सामाभ्याम् अभिहितौ सामनौ इतः। ते चक्रे श्रोत्रम् आस्ताम्। दिवि चराचरः पन्थाः।

हिन्दी अनुवाद-

(ते) पतिगृह की ओर प्रस्थान करती हुई तुम सूर्या के (गावौ) जुवे के दो बैल (ऋक्सामाभ्याम्) ऋक् और साम नाम से (अभिहितौ) अभिहित होकर (सामानौ) साम नाम होकर (इतः) यहां से गये थे (ते) तुम्हारे और (श्रोत्रम्) श्रोत्र (चक्रे) रथ के दो चक्र (आस्ताम्) हुये थे (दिवि) द्युलोक में, आकाश में (चराचरः) चर और अचर, स्थाचर और जगंम (पन्थाः) तम्हारा मार्ग था।

भावार्थ-

सूर्या के रथ के बाहक सूर्य और चन्द्र रूपी दो बैल थे जो ऋक् और साम नाम से वहां से आये थे। रथ के दो चक्र ही श्रोत्र थे। आकाश में चलाचल ही उसका मार्ग था।

संहिता पाठ-

शुचीं ते च॒क्रे या॒त्या व्या॒नो अक्ष॒ आहंतः।
अनों मन॒स्मयं सूर्यारोहत्प्रय॒ती पतिं।।१२।।

पद पाठ-

शुची॒ इतिं। ते॒। च॒क्रे इतिं। या॒त्याः। वि॒ऽआ॒नः। अक्षः। आऽहंतः।
अनंः। म॒न॒स्मयं। सूर्या। आ। अ॒रो॒ह॒त्। प्र॒ऽय॒ती। पतिं।।१२।।

सायण भाष्य-

यात्या गच्छंत्यास्ते तवानसश्चके चंक्रमणशीले रथांगे शुची श्रोत्रे आस्तां। व्यानस्तव व्यानो वायुरक्षः। उभयरथचक्रच्छिद्रगामिनी या काष्ठा सा च रथस्य सर्वं भारं वहति। सोऽक्षो व्यानोऽभूत्। मनस्मयं मनोमयमनः शकटं सूर्या पतिं सोमं प्रति प्रकर्षेण गच्छंत्यारोहत्। आरूढवती। पतिं प्रति जिगमिषोर्मनोरूपस्य रथस्य पत्युर्गुणश्राविणी श्रोत्रे एव चक्रे अभूतां व्यानो धारको वायुश्चेष्टकोऽक्षोऽभूदित्यर्थः।।

अन्वय-

यात्या शुची ते चक्रे व्यानः अक्षः आहतः। मनस्मयं अनः पतिं प्रयती सूर्या अव अरोहत्।

हिन्दी अनुवाद-

(यात्याः) पति के घर जाती हुई (ते) तुझ सूर्या के (शुची चक्रे) दो श्रोत्र चक्र

हैं (व्यानः) ध्यान वायु (अक्षः) अक्ष के रूप में (आहतः) लगा हुआ है। (मनस्मयम्) मनोमय (अनः) रथ पर (पतिं) पति की और (प्रयती) प्रस्थान करती हुई (सूर्या) सूर्या आ (अरोहत्) आरूढ़ हुई।

भावार्थ-

जब सूर्या पति के घर जाती हुई रथ पर आरूढ़ होती है तो रथ के दो पवित्र चक्र होते है व्यान वायु अक्ष के रूप में लगा होता है।

संहिता पाठ-

सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यंते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ।।१३।।

पद पाठ-

सूर्यायाः। वहतुः। प्र। अगात्। सविता। यं। अवऽअसृजत्।
अघासु। हन्यंते। गावः। अर्जुन्योः। परिं। उह्यते ।।१३।।

सायण भाष्य-

सोमाय प्रदित्सितायाः सूर्याया वहतुः। कन्याप्रियार्थं दातव्यो गवादिपदार्थो वहतुः। स च प्रागात्। तस्या अपि पूर्वमगच्छत्। यं वहतुं सवितास्याः। पितावासृजत् अवसृष्टवान्। प्रादादित्यर्थः। कदा सागच्छत् कदा वहतुरित्युभयोः काल उच्यते। अघासु। मघास्वित्यर्थः। मघानक्षत्रेषु गावः सवित्रा दत्ता गावः सोमगृहं प्रति हन्यतें। दंडैस्ताड्यंते प्रेरणार्थं। अर्जुन्योः। फल्गुन्योरित्यर्थः। तयोर्नक्षत्रयोः सवितुः सकाशात् परि सोमगृहं प्रत्युह्यते। नीयते रथेन।।

अन्वय-

सूर्यायाः वहतुः प्रागात्। सविता यम् अवासृजत्। अघासु गावः

हन्यन्ते, अर्जुन्योः परि उह्यते।

हिन्दी अनुवाद-

(सूर्यायाः) सूर्या का (वहतुः) विवाह (प्रागात्) हो गया है। (सविता) उसके पिता सविता देवता ने (यम्) जिसको (अवासृजत्) उसे पतिगृह के लिए विदा कर दिया है। (अधासु) अधा नक्षत्रो में भार्गशीर्ष महीने में, जबकि गरमी कम हो रही होने लगती है, (गावः) सूर्य की किरणे (हन्यन्ते) मारी जाती है, मन्द होने लगती है और (अर्जुन्यः) रात्रियां (परिउह्यते) कठिनता में बीतती हैं।

भावार्थ-

विवाह के बाद कन्या का पिता उसको पति गृह के लिए विदा करता है। विवाह कार्य मघा नक्षत्र उदय होने पर किया जाता है। उस समय ग्रीष्म समाप्त होकर शीत ऋतु का प्रारम्भ होता है।

संहिता पाठ-

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेणं वहतुं सूर्यायाः।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन्पुत्रः पितरावववृणीत पूषा।।१४।।

पद पाठ-

यत्। अश्विना। पृच्छमानौ। अयातं। त्रिऽचक्रेण। वहतुं। सूर्यायाः।
विश्वे। देवाः। अनु। तत्। वां। अजानन्। पुत्रः। पितरौ। अवृणीत। पूषा।।१४।।

सायण भाष्य-

हे अश्विनाश्विनौ यद्यदा पृच्छमानौ सवितारं प्रष्टुमयातं अगच्छतां केन साधनेनायातं तदुच्यते। त्रिचक्रेण चक्रत्रययुक्तेन रथेन। किं पृच्छमानौ। सूर्याया वहतुं। विवाहमित्यर्थः। तत्तदानीं वां युवां सवितारं प्रति गच्छंतौ विश्वे सर्वे देवा

अन्वजानन्। अनुज्ञातवंतः। तथा पितरौ पुत्रोऽश्विनोः पुत्रः पूषावृणीत। वृतवान्।

अन्वय-

यत् अश्विना सूर्यायाः वहतुं पृच्छमानौ त्रिचक्रेण अवयातम्, तत् विश्वे देवाः अनुअजानन्ः पूषा पुत्रः पितरौ अवृणीत्।

हिन्दी अनुवाद-

(यत्) जबकि (अश्विना) अश्विनी देवता प्राण और अपान (सूर्यायाः) सूर्या के (वहतुं) विवाह के विषय में (पृच्छमानौ) पूछते हुये, अनुमति लेते हुये (त्रिचक्रेण) तीन चक्रों वाले रथ पर आरूढ़ होकर (अवयातम्) आयेथे, तब (तत्) इस प्रस्ताव का (विश्वे) सभी (देवाः) देवताओं ने दिव्य शक्तियों ने (अनु अजानन्) अनुमोदन किया था और (पुत्रः) पुत्र भूत (पूषा) वायु देवता ने (पितरौ) प्राण अपान रूपी माता पिता का (अवृणोत्) समर्थन किया था।

भावार्थ-

सूर्या के विवाह में अश्विनी देवता भाग लेते हैं। प्राण-अपान ही अश्विनी देवता है। सब देवता, दिव्यपदार्थ इनका अनुमोदन करते हैं। पूषा ही वायु है। प्राण, अपान और वायु की अनुकूलता में ही विवाह कार्य सम्पन्न किया जाता है।

संहिता पाठ-

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप।
क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थथुः।।१५।।

पद पाठ-

यत्। अयातं। शुभः। पती इति। वरेऽयं। सूर्यां। उप।
क्व। एकं। चक्रं। वां। आसीत्। क्व। देष्ट्राय। तस्थथुः।।१५।।

सायण भाष्य-

हे शुभस्पत्ति उदकस्य स्वामिनौ यद्यावयातं अगच्छतं। कं प्रति। वरेयं वरणीयायाः सूर्यायाः संबंधिनं वरैर्याचितव्यं वा। सवितारमित्यर्थः। किमर्थं। सूर्यामुप गंतुं। वां भवतोः संप्रति दृश्यमानमिदमेकं चक्रं क्वासीत्पुरा। क्व वां युवां देष्ट्राय दानाय प्रवृत्तौ तस्थथुरित्यश्विनोर्निवासं पृच्छति।।२२।।

अन्वय

शुभम्स्पनी यत् सूर्याम् उप वरेयम् अयातम् वाम् एकं चक्रं क्व आसीत्, देष्ट्राय क्व तस्थथुः।

हिन्दी अनुवाद-

(शुभस्पती) जल के उत्पादक और रक्षक प्राण और अपान अश्विनी देवता (यत्) जबकि (सूर्यायाःउप) सूर्या के पास (वरेयम्) वर को कन्या देने के लिए (अयातम्) सूर्य के पास जाते है। (वाम्) तो उनका (एकं चक्रम्) एक पहिया (क्व) कहाँ (आसीत्) रहता था और (देष्ट्राय) कन्या दान करने के लिए वे (क्व) कहां पर (तस्थथुः) निवास करते हैं।

भावार्थ-

अश्विनी देवों को प्राण और अपान वायु का उत्पादक और रक्षक देवता कहा गया है और वे शुभस्पनी हैं। ये जब सूर्या के विवाह के लिए सूर्य के समीप जाते हैं तो उनके रथ के तीन पहियों में एक उनके पास नहीं रहता।

संहिता पाठ-

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विंदुः।
अथैकं चक्रं यदगुहा तदद्धातय इद्विंदुः।।१६।।

पद पाठ-

द्वे इति। ते। चक्रे इति। सूर्ये। ब्रह्माणः। ऋतुऽथा। विदुः।
अथ। एकं। चक्रं। यत्। गुहा। तत्। अद्धातयः। इत्। विदुः।।१६।।

सायण भाष्य-

अथ स्वयमेव स्वात्मानं प्रति सूर्या वदति। हे सूर्ये ते तव द्वे चक्रे प्रज्ञाते पुरा दृष्टे द्वे एवं चंद्रसूर्यात्मके ऋतुश्चर्तुषु विनिर्दिष्टे चक्रे ब्रह्माणो ब्राह्मणा विदुः। अथैकं चक्रं तृतीयं संवत्सरात्मकं गुहा गुहायां निहितं यदस्ति तदद्धातय इत्। एतन्मेधाविनामसु पठितं। मेधाविन एव विदुः। जानंति।।

अन्वय-

सूर्ये ते द्वे चक्रे ऋतुथा ब्रह्माणः तद् विदुः। अथ एकं चक्रं यद् गुहा तत् अद्धातयः इत् विदुः।

हिन्दी अनुवाद-

(सूर्ये) हे सूर्ये! (ते) तुम्हारे रथ के (द्वे चक्रे) दो चक्र है वे (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार निविष्ट होते हैं। उनको (ब्रह्माणः) ब्रह्मवित् विद्वज्जन ही (विदुः) जानते हैं (अथ) और (एकं चक्रम) एक चक्र संवत्सर है, (यत्) जो कि (गुहा) गुप्त रूप से निहित है, (तत्) उसको (अद्धातयः इत्) कालवित् विद्वज्जत ही (विदुः) जानते हैं।

भावार्थ-

सूर्या के सूर्य और चन्द्रमा रूपी दो चक्र होते हैं जो ऋतुओं के अनुसार सामर्थ्यशाली होते है। एक चक्र संवत्सर रूप गुप्त रूप से रहता है। उसको कालवित् ज्योतिर्विद् ही जान पाते है।

संहिता पाठ-

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च।

ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः।।१७।।

पद पाठ-

सूर्यायै। देवेभ्यः। मित्राय। वरुणाय च।

ये। भूतस्य। प्रऽचेतसः। इदं। तेभ्यः। अकरं। नमः।।१७।।

सायण भाष्य-

सूर्यायै सूर्यस्य पत्न्यै देवेभ्योऽग्न्यादिभ्यो मित्राय वरुणाय च ये च भूतस्य भूतजातस्य प्रचेतसः सुमतयोऽभिमतप्रदा भवंति तेभ्यः सर्वेभ्य इदं नमो नमस्कारमकरं। करोमि।

अन्वय-

सूर्यायै देवेभ्यः मित्राय वरुणाय च । ये भूतस्य प्रचेतसः तेभ्यः नमः अकरम्।

हिन्दी अनुवाद-

(सूर्षायै) सूर्या के दिये, (देवेभ्यः) सभी देवताओं के लिए (मित्राय) मित्र देवता के लिये (च) और (वरुणाय) वरुण देवता के लिए और जो (भूतस्य) भूत काल के (प्रचेतसः) सूचना देने वाले है (तेभ्यः) उन सबके लिए (नमः) हम नमस्कार (अकरम्) करते है।

भावार्थ-

सूर्य सभी दिव्य पदार्थ, मित्र, वरुण, भूत ग्राम की सूचना देने वाले देवताओं के लिये हवि तैयार करते हैं।

संहिता पाठ-

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळंतौ परि यातो अध्वरं।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्टे ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः।।१८।

पद पाठ-

पूर्वऽअपरं। चरतः। मायया। एतौ। शिशू इति।
क्रीळंतौ। परिं। यातः। अध्वरं।
विश्वानि। अन्यः। भुवना। अभिऽचष्टे।
ऋतून्। अन्यः। विऽदधत्। जायते। पुनरितिं।।१८।।

सायण भाष्य-

कश्चित्पूर्व गच्दति सूर्यः। अन्यस्तनुचरति चन्द्रमाः। एवं पूर्वापरं पौवीपर्येण मायया स्वप्रज्ञानेनैतावादित्यचंद्रौ चरतः। गच्छतो दिवि। तौ शिशू। शिशुवद्भ्रमणाज्जायमानत्वाद्वा शिशू इत्युच्येते। शिशू संतौ क्रीळंतावंतरिक्षे विहरंतावध्वरं परि यातः। यज्ञं प्रतिगच्छतः। तयोरन्य आदित्यो विश्वानि भुवनान्यभिचष्टे। अभिपश्यति। ऋतून्वसंतादीनन्यश्चंद्रमा विदधत्कुर्वन्मासानर्धमासांश्च कुर्वन्पुनर्जायते। यद्युभयोरपि पुनर्जातिरस्ति तथापि सूर्यस्य सर्वदा प्रवृद्धेरुदयो नाभिप्रेतः। चंद्रस्य तु हृसवृद्धिसद्भ्यभावात्पुनः पुनर्जायत इत्युक्तिर्युक्ता। चंद्रमा वै जायते पुनः। तै0ब्रा0 ३.९.५.४-। इत्यादिश्रुतेः।।

अतिमूर्तिनाम्न्येकाहे शुकलपक्षे चांद्रमसीष्टिः। तत्र नवोनव इत्येषा याज्या। सूचितं च। नवोनवो भवति जायमानस्तरणिर्विश्वदर्शतः।

अन्वय-

एतौ क्रीडन्तौ शिशू अम्बरं परि मायया पूर्वापरं चरत यातः। अन्यः विश्वानि भुवना अमिचष्टे अन्यः ऋतून् विदधत् पुनः जायते।

हिन्दी अनुवाद-

(एतौ) ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा (क्रीडन्तौ) क्रीडा करते हुए (शिशु) बालकों के समान (अम्बरं परि) अस्तरिक्ष में (मायया) अपनी माया से (पूर्वापरम्) एक पहले और दूसरे बाद में (चरतः) चालते हुए (यातः) गति करते हैं। (अन्यः) इनमें से कोई दूसरा अर्थात् सूर्य (विश्वानि) सम्पूर्ण (भुवना) भुवनों में (अभिचष्टे) प्राप्त होकर सबको देखता है। (अन्यः) और दूसरा चन्द्रमा (ऋतून्) ऋतुओं का (विदधत्) निर्माण करता हुआ (पुनः) फिर से (जायते) निर्मित हो जाता है।

भावार्थ-

सूर्य और चन्द्रमा दो शिशुओं के समान आकाश में क्रीड़ा करते हुए गति करते हैं। इनमें से सूर्य सभी भुवनों को प्रकाशित करता है और चन्द्रमा ऋतुओं का निर्माण करता है।

संहिता पाठ-

नवोंनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रे।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन्प्र चंद्रमास्तिरते दीर्घमायुः।।१९।।

पद पाठ-

नवःऽनवः। भवति। जायमानः।
अह्नां। केतुः। उषसां। एति। अग्रे।
भागं। देवेभ्यः। वि। दधाति। आऽयन्।
प्र। चन्द्रमाः। तिरते। दीर्घ। आयुः।।१९।।

सायण भाष्य-

अयं चन्द्रमा जायमानः प्रतिदिनं जायमान एकैककलाधिक्येनोत्पद्यमानः

सन्नवोनवो भवति। प्रतिदिनं नूतन एव भवति। एतत्पूर्वपक्षाद्यभिप्रायं। तथाह्नां दिवसानां केतुः प्रज्ञापकः प्रतिपदादीनां तिथीनां चंद्रकलाह्रासवृद्ध्यधीनत्वात्। तादृशश्चंद्रमा उषसां प्रभातानामग्रमेति। एतत्कृष्णपक्षांताभिप्रायं। केचनैतं पादमादित्यदैवत्यमाहुः। तस्मिन्पक्षेऽह्नांकेतुत्वमुषसामग्रगतिश्च प्रसिद्धेः। देवेभ्यो भागं हविर्भागं वि दधाति। करोति। उभयपक्षांते। किं कुर्वन्। आयन् आयन् प्रतिदिनं ह्रासवृद्धचा पक्षांतमभिगच्छन्। एतदर्धमासाभिप्रायं । चंद्रमा उक्तलक्षणो देवो दीर्घमायुस्तिरते। वर्धयति।।

अन्वय

अह्नाम् केतुः जायमानः नवः नवः भवति उषसाम् एति अग्रम्। आयन् देवेभ्यः भागं विदधाति चन्द्रमा दीर्धम् आयुः प्र तिरते।

हिन्दी अनुवाद-

(अह्नाम्) दिनों का और तिथियों का (केतुः) ज्ञान कराने वाला चन्द्रमा (जायमानः) पुनः अपनी कलाओं से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (नवः नवः) प्रतिदिन नया और नया (भवति) हो जाता है। (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) अग्र भाग को यह (एति) प्राप्त होता है। (आयन्) पक्ष के अन्तिम भाग को प्राप्त होता हुआ (देवेभ्यः) देवताओं के लिए (भागम्) उनके अंश को, हविभाग को (विदधाति) विभाग करता है, प्रदान करता है। (चन्द्रमाः) इस प्रकार यह चन्द्रमा (दीर्धम्) लम्बी (आयुः) आयु (प्रतिरते) प्रदान करता है।

भावार्थ-

कलाओं से भर कर चन्द्रमा तिथियों और दिनों का निर्माण करता है और इस प्रकार नया और नया होता है। यह उषाओं के अग्रभाग को प्रभात को प्राप्त होता है। पक्षान्त में यह देवताओं के हविर्भाग को प्रदान कराता है और लोगों को लम्बी आयु प्रदान करता है।

संहिता पाठ-

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रं।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व।।२०।।

पद पाठ-

सुऽकिंशुकं। शल्मलिं। विश्वऽरूपं।
हिरण्यऽवर्णं सुऽवृत्तं। सुऽचक्रं।
आ। रोह। सूर्ये। अमृतस्य। लोकं।
स्योनं। पत्यै। वहतुं। कृणुष्व।।२०।।

सायण भाष्य-

सुकिंशुकं शोभनकिंशुकवृक्षनिर्मितं तथा शल्मलिं शल्मलिवृक्षनिर्मितं विश्वरूपं नानारूपं हिरणवर्णं हितरमणीयवर्णं हिरण्यालंकारयुक्तं वा सुवृत्तं सुष्ठुवर्तनं सुचक्रं शोभनचक्रोपेतं रथं हे सूर्ये आ रोह। अमृतस्य लोकं स्थानं स्योनं सुखकरं पत्ये सोमाय वहतुं वहनमात्मनः प्रापणं कृणुष्व। कुरुष्व। अत्र निरुक्तं १२.८.१ द्रष्टव्यं।।२३।।

अन्वय-

सूर्ये सुकिंशुकं शल्मिनं विश्वरूपम् हिरण्यवर्णम् सुवृत्तम् सुचक्रम् आरोह पत्ये वहतुं स्योनं अमृतस्य लोकं कृणुष्व।

हिन्दी अनुवाद-

(सूर्येः) हे सूर्ये तुम (सुकिंशुकं) शुभ पलाश वृक्ष से बने हुए (शल्मिनं) उत्तम सेमल वृक्ष से बने हुए (विश्वरूपम्) अति सुन्दर विश्वरूप वाले (हिरण्यवर्णम्) सुनहरे चमकीले रंग वाले (सुवृत्तंम्) उत्तम रूप से व्यवहार किये जा सकने वाले (सुचक्रम) उत्तम आरामदायक पहिये वाले रथ पर (आरोह) आरूढ हो जाओ और

(पत्ये) अपने पति के साथ (वहतुं) विवाह करने के लिए (स्योनं) सुखकारी (अमृतस्य) मृत्यु से रहित दीर्घ जीवन के (लोकं) स्थान को (कृणुष्व) प्राप्त करो।

भावार्थ-

पत्नी को चाहिये कि पति को सुख देने वाले स्वर्ग समान स्थान पर विवाह संस्कार के अनन्तर वह ऐसे रथ पर आरूढ होकर पति के साथ आवे जो कि सुन्दर सुदृढ लकड़ी को बना हो सुन्दर सजा हुआ, चमकीला और आरामदायक हो।

संहिता पाठ-

उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि।।२१।

पद पाठ-

उत्। ईर्ष्व। अतः। पतिऽवती। हि। एषा।
विश्वऽवसुं। नमसा। गीःऽभिः। ईळे।
अन्यां। इच्छ। पितृऽसदं। विऽअक्तां।
सः। ते। भागः। जनुषा। तस्य। विद्धि।।२१।।

सायण भाष्य-

आभिर्नृणां विवाहः स्तूयते। हे विश्वावसो अतः स्थानात्कन्यासमीपादुदीर्ष्व। उत्तिष्ठ। एषा कन्या पतिवती हि संजाता। अत उदीर्ष्वेति वातः शब्दो योज्यः। विश्वावसुमेतन्नामानं गंधर्वं नमसा नमस्कारेण गीर्भिः स्तुतिभिश्चेळे। स्तौमि। तर्ह्येनां विहाय कां स्वीकरोमीति यदि ब्रूषे तह्यन्यां पितृषदं पितृकुले स्थितां व्यक्तामनूढेति परिस्फुटां विगतांजनां वा। स्तनोद्गमादिराहित्येनाप्रौढामित्यर्थः। स

तादृशः पदार्थस्ते तव भागः कल्पितः। तस्य तं भागं विद्धि जानीहि जनुषा जन्मना। लभस्वेत्यर्थः।।

अन्वय-

विश्वावसुं नमसा गीर्भिः ईळें, उत् ईर्ष्व हि एषा पतिवती। अन्याम् पितृसदम् व्यक्ताम् इच्छ सः ते भागः तस्य जनुषा विद्धि।

हिन्दी अनुवाद-

(विश्वाविसुं) सबको बसाने वाले अथवा सब धनो के स्वामी परमेश्वर की मैं (नमसा) नमस्कार द्वारा और (गीर्भिः) स्तुति वचनों द्वारा (ईडे) स्तुति करता हूँ। उत् (ईर्ष्व) तुम उठ कर खडे हो जाओ। इससे भिन्न और अपने से भिन्न और वर्ष वाली दूसरे घर में न ले जाई गई (पितृसदम्) माता-पिता पर आश्रित (व्यक्ताम्) सुस्पष्ट यौवन को प्राप्त हुई कन्या की (इच्छ) तुम कामना करो। (सः) वह ही (ते) तुम्हारा (भाग) भाग का अंश भाग्य है। (जनुषा) उस कन्या को उसी घर में जन्म हुआ है (तस्य) उस कन्या रूप भाग को तुम (विद्धि) जानो।

भावार्थ-

कन्या का पिता वर से कहता है हे प्रभो। तुम सब धनो के स्वामी हो। तुम्हें नमस्कार है, तुम्हारे प्रति स्तुति वचन कहे गये हैं। अब सूर्या का क्योंकि विवाह हो गया है, अतः उस वर का पिता वर से कहता है- दूसरे घर की कन्या को, जो कि अपने भिन्नं स्वभावार्थ- की है माता पिता के घर में रहती है। उसकी इच्छा कर। वही तेरे भाग्य में है। जन्म से ही वह तुम्हारे हिस्से में है।

संहिता पाठ-

उदी॒र्ष्वातो विश्वावसो॒ नम॒सेळामहे त्वा।
अ॒न्यामि॑च्छ प्रफ॒र्व्यं सं जा॒यां पत्या सृज।।२२।।

पद पाठ-

उत्। ई॒र्ष्व॒। अतः। वि॒श्वा॒व॒सो॒ इति॑ विश्वऽवसों
नम॑सा। ई॒ळा॒म॒हे॒। त्वा॒।
अ॒न्यां। इ॒च्छ॒। प्र॒ऽफ॒र्व्यं॑।
सं। जा॒यां। पत्या॑। सृ॒ज॒।२२।।

सायण भाष्य-

अतोऽस्माच्छयनाद्धे विश्वावसो कन्यास्वामिन्गंधर्व उदीर्ष्व। उद्गच्छ।। ईर गतौ आदादिकः। अनुदात्तेत्। तस्य लोटि रूपं।। विश्वावसुर्नाम गंधर्वः कन्यानामधिपतिर्यतः। लभामि तेन कन्यामिति हि मन्त्रः। स तादृश देव त्वां नमसा नमस्कारेणेळामहे। स्तुमः। स त्वमन्यां प्रफर्व्यं बृहन्नितंबां कन्यामिच्छ। जायां मां पत्या सह पुनः सं सृज।।

अन्वय-

विश्वायसो त्वा नयसा ईडामहे। अतः उदीर्ष्व्य। अन्यां प्रफर्व्यां जायाम् इच्छ पत्या संसृज।

हिन्दी अनुवाद-

(विश्वायसो) हे विश्व को गृहस्याश्रम में वसाने वाले (त्वा) तुम्हारी हम (नमसा) नमस्कार के साथ (ईळामहे) स्तुति करते हैं। (अतः) इसलिये आप (उदीर्ष्व) इस स्थान से उठकर खड़े हो जाओ। (अन्याम्) दूसरी अपने से भिन्न गोत्र की (प्रफर्व्यां) हृष्ट पुष्ट अङ्गों वाली (जायां) पत्नी की (इच्छ) कामना करो जो कि (पत्या) पति के साथ (संसृज) मिलन को प्राप्त हो।

भावार्थ-

हे गृहस्थाश्रम में जाने वाले वर ! कन्या पक्ष के लोग नमस्कार के द्वारा आदर से करते हैं। तुम अपने से भिन्न गोत्र की स्वस्थ अंगों वाली

पत्नी की कामना करो। वह भी तुम पति के साथ मिलन को प्राप्त होवे।

संहिता पाठ-

अनृक्षरा ऋजवः संतु पंथा येभिः सखायो यंति नो वरेयं।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात्सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः।।२३।

पद पाठ-

अनृक्षराः। ऋजवः। संतु। पंथाः।
येभिः। सखायः। यंति। नः। वरेऽयं।
सं। अर्यमा। सं। भगः। नः। निनीयात्।
सं। जाःपत्यं। सुऽयमं। अस्तु। देवाः।।२३।।

सायण भाष्य-

हे देवाः पंथाः पंथानो मार्गा अनृक्षराः। अक्षरः कंटक उच्यते। कंटकरहिता ऋजवोऽकुटिलाश्च संतु येभिर्यैः पथिभिर्नोऽस्माकं सखायो वरप्रेषिता वरेयं वरैर्याचितव्यं पितरं प्रति यंति गच्छंति ते पंथा इति। किंचार्यमा देवो नोऽस्मान् सं निनीयात्। सम्यक् प्रापयेत्। तथा भगो देवः सं निनीयात्। हे देवाः आसंगतमस्तु पतिकुलमिति शेषः। तथेदं जास्पत्यं जायापत्योर्युगलं सुयममस्तु। सुमिथुनमस्तु।।

पत्न्या योक्तृविमोचने प्र त्वा मुंचामीत्येषा। सूचितं च। अथास्या योक्तं विचृतेत्प्र त्वा मुंचामि वरुणस्य पाशात्। आ० १.११.। इति।।

अन्वय-

नः पन्थाः अनृक्षराः ऋजवः। सन्तु। येभिः नः सखायः वरेयं यन्ति। नः अर्यमा भगः सं निनीयात्। देवाः नः जास्पत्यं सुयमम्। सम् अस्तु।

हिन्दी अनुवाद-

(नः) हमारे (पन्थाः) मार्ग (अनृक्षराः) कांटो से रहित, (ऋजवः) सरल, (सन्तु) होवें। (येभिः) जिन मार्गों से (नः) हमारे (सखायः) मित्रगण और स्नेहीजन (वरेयम्) कलयाणकारी फल को (यन्ति प्राप्त होते है। (नः) हमारा (अर्यमा) न्यायकारी देवता (भगः) ऐश्वर्य को देने वाला सुखकारी देवता (सं निनीयात्) उत्तम मार्गो से जावे। (देवा) देवता (नः) हमारे (जास्पत्यम्) दम्पती भाव - को (सुयमम्) संयम करने वाला (अस्तु) कर देवें।

भावार्थ-

हमारे मार्ग कण्टकविहीन और सरल हों। हमारे स्नेही जन उत्तम फल प्रदान करने वाले हों। न्यायकारी विद्वान् हमें सुख और ऐश्वर्य प्रदान करें। देवगण हमारे जीवन में संयम संभृत करें।

संहिता पाठ-

प्र त्वा मुंचामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि।।२४।।

पद पाठ-

प्र। त्वा। मुंचामि। वरुणस्य। पाशात्।
येन। त्वा। अबन्धात्। सविता। सुऽशेवः।
ऋतस्य। योनौ। सुऽकृतस्य। लोके।
अरिष्टां। त्वा। सह। पत्या। दधामि।।२४।।

सायण भाष्य-

जातं प्राणिनं सवित्रा प्रेरितो वरुण आत्मपाशैर्बध्नाति। तस्माद्वरुणस्य

पाशात् हे वधु त्वा त्वां प्र मुंचामि येन त्वा त्वां सविता वरुणस्य प्रेरकः सुशेवः सुखोऽबध्रात् बंधनं कृतवान्। यज्ञांगपक्षे पत्नीं योक्त्रेण वध्नाति। बंधनस्य वरुणोऽभिमानी। अतो वरुणपाशाद्योक्त्रात्प्र मुंचामि येन योक्त्रेण संविता कर्मणामनुज्ञाता देव ऋत्विक्पाशेनाबध्रात्। तं मोचयित्वा चर्तस्य यज्ञस्य योनौ स्थाने यागभूमौ सुकृतस्य लोके कर्मक्षेत्रे भूलोके चारिष्टामहिंसितां त्वां पुत्राद्यर्थं पत्या सह दधामि। स्थापयामि।।

अन्वय-

त्वा वरुणस्य राशत् प्रमुञ्चामि। येन सुशेवः सविता त्वा अवध्नात्। ऋतस्य यौवो सुझतस्य लोके पत्या सह त्वा अरिष्टाम् दधामि।

हिन्दी अनुवाद-

(त्वा) तुझ वधू को मैं (वरुणस्य) वरुण देवता के अर्थात् ब्रह्मचर्य के (पाशा) जाल से, नियम से (प्रमुञ्चामि) बुड़ाता हूँ। (येन) जिस जाल से (सुशेवः) सुख देने वाने, काल्या करने वाले (सविता) तुम्हारे फिर सविता (अवध्नात्) बांध दिया है (ऋतस्य) सत्य नियमों के (यौवौ) स्थान में (सुकृतस्य) पुण्य कर्मो के (लोके) संसार में गृहस्थ आश्रम में (पत्या) मुझ पति के (सह) साथ (अस्त्रिाम्) आपत्तियों, दुःखों कष्टो रहित तुम पत्नी को मैं (दधामि) धारण करता हूँ।

भावार्थ-

जब तक कन्या का विवाह नहीं होता, तब तक पिता के संरक्षण में वह ब्रह्मचर्य पूर्वक रहती है। विवाह के अनन्तर वह पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई सदाचार से पति की संरक्षा में रहती है। पति उसके सभी कष्टों को दूर करता है।

संहिता पाठ-

प्रेतो मुंचामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करं।

यथेयमिंद्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति।।२५।।

पद पाठ-

प्र। इतः। मुंचामि। न। अमुतः। सुऽबद्धां। अमुतः। करं।

यथा। इयं। इंद्र। मीढ्वः। सुऽपुत्रा। सुऽभगा। असति।।२५।।

सायण भाष्य-

इतः पितृकुलाप्र मुंचामि त्वां नामुतो भर्तृगृहात्प्रमुंचामि। अमुतो भर्तृगृहे सुबद्धां करं। यथेयं कन्या हे इंद्र मीढ्वः सेक्तः सुपुत्रा सुभगा सुष्ठु भाग्या वासति भवति तथा कुरु।। २४।।

विवाहानंतरभाविनि प्रयाणे पूषा त्वेतो नयत्वित्यनया रथादियानमारोहयेत्। सूत्रितं च। पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्येति यानमारोहयेत्। आ0गृ0 १.८.१।।

अन्वय-

प्र इतः मुञ्चामि अमुतः न। अग्रतः सुबद्धां करम् यथा मीढ्वः इन्द्रः इयं सुपुत्रा सुभगा उसति।

हिन्दी अनुवाद-

हे वधू! तुमको (इतः) यहां से पितृ से (मुञ्चामि) मुक्त करता हूँ (अमुतः) उधर पतिगृह से (न) नहीं। (अमुतः) उधर पति से तुझे मैं (सुबद्धाम्) अच्छी प्रकार बन्धन से मुक्त करता हूँ। (यथा) जिससे कि (मीढ्वः) वीर्य का सिंचन करने वाले (इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली पुरुष (इयं) यह (सुपुत्रा) उत्तम पुत्रों वाली और (सुभगा) सौभाग्यशालिनी (असति) होये।

भावार्थ-

वधू का पिता कन्या को पितृकुल से मुक्त करता है और पतिकुल से सुसम्बद्ध करता है और उसके पुत्रवती तथा सौभाग्यशालिनी होने की कामना करता है।

संहिता पाठ-

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि।।२६।।

पद पाठ-

पूषा। त्वा। इतः। नयतु। हस्तऽगृह्य।
अश्विना। त्वा। प्र। वहतां। रथेन।
गृहान्। गच्छ। गृहऽपत्नी। यथा। असः।
वशिनी। त्वं। विदथं। आ। वदासि।।२६।।

सायण भाष्य-

हस्तगृह्य ग्राह्यहस्तः पूषा त्वा त्वामितो नयतु। प्रापयतु। अश्विनाश्विनौ त्वा त्वां रथेन प्र वहतां। प्रगमयतां। गृहान् भर्तृसंबंधिनो गच्छ त्वं गृहपत्नी यथासः भवसि स्वगृहस्वामिनी भवसि। वशिनी सर्वेषां गृहगतानां वशं प्रापयित्री पत्युर्वशे वर्तमाना वा विदथं पतिगृहमा वदासि। आवदसि। गृहस्थितं भृत्यादिजनमावद।। इह प्रियमित्येषा वध्वा गृहप्रवेशनो। सूचितं च। इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामिति गृहं प्रवेशयेत। आ.गृ.। १.८.८ इति।

अन्वय-

पूषा त्वा इतः हस्तगृह्यं नयतु। अश्विना स्वा रथेन प्रवहताम्। गृहान् गच्छ यथा गृहपत्नीअसः। वशिनी त्वं विदथम् आ वदासि।

हिन्दी अनुवाद-

हे वधू! (पूषा) पोषण करने वाला पुरुष (त्वा) तुझको (इतः) यहां पितृग्रह से (हस्तगृह्य) हाथ पकड़ कर (नयतु) ले जावे (अश्विना) अश्विनी देवता (त्वा) तुम (रथेन) रथ पर आरूढ़ करा कर (प्रवहताम्)। लें जावें। (यथा) जिस प्रकार से (गृहपत्नी) गृह की स्वामिनी (असः) होती है, (गृहान्) अपने घरों में (गच्छ) तुम जाओ। (वशिनी) घर के सब सदस्यों को वश में करने वाली (त्वं) तुम (विदथम्) पति के घर के सब लोगों से (आवदासि) अनुकूल बोलती रहो।

भावार्थ-

हे वधू! तुम्हारा पालन पोषण करने वाला पति तुमको हाथ पकड़ कर अपने घर ले जाता है और उसके मित्र तुमको रथ पर बैठा कर ले जाते है। वहां तुम घर की स्वामिनी बन कर जाती हो और घर में सबके अनुकूल प्रेमपूर्ण अनुकूल व्यवहार करती हो।

संहिता पाठ-

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं सं सृजस्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः।।२७।।

पद पाठ

इह। प्रियं। प्रऽजया। ते। सं। ऋध्यतां।
अस्मिन्। गृहे। गार्हऽपत्याय। जागृहि।
एना। पत्या। तन्वं। सं। सृजस्व।
अध। जिव्री इति। विदथं। आ। वदाथः।।२७।।

सायण भाष्य-

हे वधु ते तवेहास्मिन्पतिकुले प्रियं प्रजया सह समृध्यतां। अस्मिन्गृहे गार्हपत्याय गृहपतित्वाय जागृहि। बुध्यस्व। एनानेन पत्या सह तन्वं स्वीयं शरीरं सं सृजस्व। संसृष्टा भव। अधाथ जिव्री जीर्णौ जायापती युवां विदथं गृहमा वदाथः। आभिमुख्येन वदतं।।

अन्वय-

इह ते प्रियम्। प्रजया समृध्यताम्। अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। एना पत्या तन्वं स जस्व अध जिव्री विदथम् आवदाथः।

हिन्दी अनुवाद-

हे वधू ! (इह) इस घर में (ते) तुम्हारा (प्रियम्) प्रिय हो, सुख हो और कल्याण हो। (प्रजया) सन्तानों के साथ (ते) तुम्हारी (समृध्यतांम्) समृद्धि हो (अस्मिन्) इस (गृहे) घर में (गार्हपत्याय) गृहस्थ धर्म का पालन करने के लिए (जागृति)। तुम जागरूक रहो। (एना) इस (पत्या) पति के साथ (तन्वम्) अपने शरीर को (ससृजस्व) संगम करके संश्लिष्ट करो। (अध) और तदनन्तर तुम (जिव्री) जीर्ण होकर वृद्धावस्था तक (विदधम्) घर में सब सदस्यों के साथ (आवदाथ::) प्रेमपूर्वक वार्ता करते रहो।

भावार्थ-

पति के घर में वधू को सब प्रकार से सुख मिले, इसका कल्याण हो। उसकी पुत्रों के द्वारा समृद्धि हो। वह हर प्रकार से गृहस्थ धर्म का पालन करे। गृहस्थ के कर्त्तव्यों को पूरा करे। उसके पति का उसके शरीर के साथ समागम हो और वे वृद्धावस्था तक घर में सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार और वार्तालाप करते रहें।

संहिता पाठ-

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते।
एधंते अस्या ज्ञातयः पतिर्बंधेषु बध्यते।।२८।।

पद पाठ-

नीलऽलोहितं। भवति। कृत्या। आसक्तिः। वि। अज्यते।
एधंते। अस्याः। ज्ञातयः। पतिः। बंधेषु। बध्यते।।२८।।

सायण भाष्य

कृत्याभिचाराभिमानिनी देवता नीललोहितं भवति। नीलं च लोहितं च तस्या रूपं भवतीत्यर्थः। सा कृत्यासक्तिर्द्धरासबृयस्त्वं संवडा व्यज्यते। त्यज्यत इत्यर्थः। तस्यां कृत्यायामपगतायामस्या वध्वा ज्ञातय एधंते। वर्धते। पतिर्वंधेषु सांसारिकेषु वध्यते।।

अन्वय-

नीललेहितं भवति कृत्या आसक्तिः व्यज्यते अस्याः ज्ञातयः एधन्ते पतिः वन्धेषु बध्यते।

हिन्दी अनुवाद-

(नीललोहितं) वधू को मासिक धर्म (भवति) होता है (कृत्या) घर के कार्यों में (आसक्तिः) निरन्तर लगाव (व्यज्यते) प्रकट होता है। (अस्याः) इस पुत्रवधू के (ज्ञातयः) सम्बन्धी (एधन्ते) निरन्तर बढ़ते जाते हैं और (पतिः) उसका पति (बन्धंषु) सांसारिक बन्धनों में (वध्यते) अधिक से अधिक बन्धता जाता है।

भावार्थ-

नव वधू पति के घर आ जाती है तब गर्भावस्था न होने तक वह मासिक धर्म से होती है। उस समय जो रक्तस्राव होता है, वह नीले

लाल रंग का होता है। उसे नील लोहित कहा गया है। उसे निरन्तर घर के कार्य में अधिक से अधिक आसक्ति होती है। उसके सम्बन्धियों की संख्या भी बढ़ती जाही हैं तथा उसका पति निरन्तर बन्धनों में फंसता जाता है।

इस मन्त्र का प्रयोग अभिचार कृत्यों में अधिक से अधिक होता है।

संहिता पाठ –

परां देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा बसु।
कृत्यैषा पद्वतीं भूत्व्या जाया विशते पतिं॥२९॥

पद पाठ–

परां। देहि। शामुल्यं। ब्रह्मऽभ्यः। वि। भज। वसु।
कृत्या। एषा। पत्ऽवतीं। भूत्वी। आ। जाया। विशते। पतिं॥२९॥

सायण भाष्य–

शामुल्यं। शामलमित्यर्थः। शमलं शरीरं मलं। शरीरवच्छन्नस्य मलस्य धारकं वस्त्रं परा देहि। परात्यज। धृतप्रायश्चित्तार्थं ब्रह्मभ्यो ब्राह्मणोभ्यो वसु धनं वि भज। प्रयच्छेत्यर्थः किमर्थं वधूवासः परित्याग इति चेत् उच्यते। एषा कृत्या पद्वती पादवती सती जाया भूत्वी भूत्वा पतिं विशते। कृत्यारूपवासःप्रवेशात् कृत्या जाया भूत्वा विशत इत्युपचर्यते। अतस्तत्परित्यागे कृत्यैव त्यक्ता भवतीत्यर्थः। यदि वधूवासः स्वयं,निधत्ते तदैवं भवतीति वधूवासः संस्पर्शनं निंदायुक्तं॥

अन्वय–

शामुल्यं परा देहि ब्रह्मभ्यो वसु विभज एना जाया कृत्वा पद्वती भूत्व्या पतिम् आ विशते।

हिन्दी अनुवाद-

(शामुल्यं) शरीरस्थ मल को, मल से युक्त मासिक धर्म के वस्त्रों को (परा देहि) अपने से दूर कर दो। (ब्रह्मभ्य:) ब्राह्मणों के लिए (वसु) धनों को (विभज) वितरित करो। (एना) यह वधू (जाया) पुत्र को उत्पन्न करने वाली (कृत्वा) गृह के कार्यों को करने वाली (पद्वती) अपने पैरों पर खड़ी होने वाली स्वयं अपने पर निर्भर रहने वाली (भूत्व्या) होकर (पतिम्) अपने पति के हृदय में (आविशते) प्रवेश करती है। पति के हृदय को अपने वशीभूत करती है।

भावार्थ -

पत्नी का कर्तव्य है कि वे अपने शरीर के मल को, मासिक धर्म आदि में होने वाली गन्दगी को स्वच्छ करती रहे। वह ब्राह्मणों को दान करती करती रहे। सन्तान का प्रसव करती रहे और अपने घर के कार्यों को करती रहकर आत्म निर्भर बने। तभी वह पति के हृदय को वश में कर सकती है।

संहिता पाठ-

अ॒श्री॒रा त॒नूर्भ॑वति॒ रुश॑ती पा॒पया॑मुया।
पति॒र्यद्व॒ध्वो॒३॒॑ वास॑सा॒ स्वमंग॑मभि॒धित्स॑ते ॥३०॥

पद पाठ-

अ॒श्री॒रा। त॒नू:। भ॒व॒ति॒। रुश॑ती। पा॒पया॑। अ॒मुया।
पति॑:। यत्। व॒ध्व:। वास॑सा। स्वं। अंगं॑। अ॒भि॒ऽधित्स॑ते ॥३०॥

सायण भाष्य-

अत्रापि वधूवास:संस्पर्शनिंदोच्यते। तनूर्वरस्य संबंधिन्यश्रीराश्रीका भवति। कथं स्यादिति उच्यते। रुशती। रुशदिति वर्णनाम। दीप्तयामुयानया

पापरूपया कृत्यया युक्ता चेत्तनूः। तदेवाह। पतिर्यद्यदि वध्वो वाससा स्वमंगभिधित्सते परिधातुमिच्छति॥

अन्वय–

वध्वः वाससा स्वम् अङ्गम् अभिधित्सति रुशती अमुया पापया तनूः अश्रीरा भवति।

हिन्दी अनुवाद–

यदि (पतिः) पति (वध्वः) वधू के (वाससा) वस्त्र से मासिक धर्म से मलिन वस्त्र से (स्वम्) अपने (अङ्गम्) शरीर को (अभिधित्सति) संयुक्त करना चाहता है, संयोग करना चाहता है, तब (रुशती) रूप कान्ति से सम्पन्न (अमुया) इस पत्नी के (पापया) पाप से युक्त शरीर से सम्पर्क में आकर उसका (तनूः) शरीर (अश्रीरा) कान्ति से हीन (भवति) हो जाता है।

भावार्थ –

पत्नी के मासिक धर्म होने पर पति को कभी भी उससे सम्पर्क नहीं करना चाहिए, सम्भोग नहीं करना चाहिए। इससे पति का शरीर कान्तिहीन ओर रोगी हो जाता है।

संहिता पाठ–

ये व॒ध्व॒श्चंद्रं व॒ह॒तुं यक्ष्मा॒ यंति॒ जना॒दनुं।
पुन॒स्तान्य॒ज्ञिया॑ दे॒वा नयंतु य॒त आगंताः ॥३१॥

पद पाठ–

ये। व॒ध्वः। च॒न्द्रं। व॒ह॒तुं। यक्ष्माः। यंति। जनात्। अनु।
पुन॒रिति। तान। य॒ज्ञियाः। दे॒वाः नयंतु। यतः। आऽगंताः ॥३१॥

सायण भाष्य –

वध्वश्चंद्रं हिरण्यरूपं वहतुं ये यक्ष्मा व्याधयोऽनु यंति प्राप्नुवंति जनादस्मद्विरोधिनः सकाशात्। यद्वा। जनाद्यमाख्यात्। तान्प्रनर्नयंतु प्रापयंतु यज्ञिया यज्ञार्हा देवा इंद्रादयः। यत आगता यस्मात्ते यक्ष्मा आगताः तत्र तान्नयंतु।। वध्वाः प्रयाणे मा विदन्नित्येषा याज्या। सूचितं च। कल्याणेषु देशवृक्षचतुष्पथेषु मा विदन्परिपंथिन इति जपेत्।

अन्वय–

ये यक्ष्माः वध्वः चन्द्रम् वहतुं जनात् अनु यन्ति यज्ञियाः देवाः तान् पुनः नयन्तु यतः आगताः।

हिन्दी अनुवाद–

(ये) जो (यक्ष्माः) यक्ष्मा आदि रोग (वध्वः) नव वधू के (चन्द्रम्) कान्तियुक्त आह्लदकारी (वहतुं) विवाह को, विवाह के वाद के शरीर को (जनात्) उत्पन्न करने वाले माता-पिता से, पैतृक रूप में (अनु यन्ति) उसके वाद आ जाते है, (यज्ञियाः देवाः) यज्ञ में आहूत देवता अर्थात् चिकित्सक गण (तान्) उन रोगों को (पुनः) फिर से (नयन्तु) ले जावे, वापिस कर दे, (यतः) जहां से कि वे रोग (आगताः) इस वधू में आये हैं।

भावार्थ–

यदि वधू में कोई रोग पैतृव परम्परा से आ गये है तथा नव वधू के कान्तिमान शरीर में विषाद पैदा करते हैं तो पति को चाहिए कि उसकी उचित प्रकार से चिकित्सा कराये।

संहिता पाठ–

मा विदन्परिपंथिनो य आसीदंति दंपती।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रांत्वरातयः ।।३२।।

पद पाठ–

मा। विदन्। परिऽपंथनः। ये। आसीऽदंति। दंपती इति दंऽपती। सुऽगेभिः। दुःऽगं। अति। इता। अप। द्रांतु अरातयः ॥३२॥

सायण भाष्य–

परिपंथिनः पर्यवस्थातारः शत्रवो मा विदन् मा प्रापयन् ये परिपंथिनो दंपती आसीदंति अभिगच्छंति। सुगेभिः सुगैर्मार्गैर्दुर्गं दुःखेन गंतुं शक्यं दुर्गमं देशमतीतां। अतिगच्छतां। अरातयोऽदातारः शत्रवोऽप द्रांतु। अपगच्छतु॥

अन्वय–

ये दम्पती आसीदन्ति परिपन्थिनः मा विदन्। सुगेमिः दुर्गम् अति इताम् अरातयः अपद्रान्तु।

हिन्दी अनुवाद–

(ये) जो (दम्पती) पति–पत्नी (आसीदन्ति) यहां आकर स्थित होते हैं, यहां आकर पति–पत्नि भाव की प्राप्त होते है, वे (परिपन्थिनः) शत्रुत्व के भाव को (मां विदन्) न प्राप्त करें। पति–पत्नी भाव को प्राप्त हुये वे दोनों (सुगेभिः) सुगम मार्गों से (दुर्गम्) सब दुर्गतियों को दुःखों को (अति इताम्) पार कर जावें। (अरातयः) शत्रुगण या कृपणजन (अपद्रान्तु) उनके दूर हो जावे।

भावार्थ –

प्रभु से प्रार्थना है कि जिनमें एक बार पति–पत्नी भाव हो गया है, उनसे कभी वह दूर न हो। उनमें कभी भी शत्रुभाव उत्पन्न न हो। पति–पत्नी के एक बार मिल जाने पर वे कभी अलग न हो। उनसे सभी दुःख आपत्तियां दूर हो जावें और उनमें कृपणता कभी न आवे।

संहिता पाठ–

सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं वि परेतन ॥३३॥

पद पाठ–

सुऽमंगलीः। इयं। वधूः। इमां। संऽएत। पश्यत।
सौभाग्यं। अस्यै। दत्त्वाय। अथ। अस्तं। वि। परा। इतन॥३३॥

सायण भाष्य–

इयं वधूः सुमंगलीः शोभनमंगला। अत इमां सर्व आशीः कर्तारः समेत। संगतच्छत। तां पश्यत च। तां संगताश्च दृष्ट्वा ऊढायै सौभाग्यं दत्त्वाय दत्त्वाथस्तं। गृहनामैतत्। स्वस्वसंबंधिनं वि परेतन। विविधं परागच्छत।

अन्वय–

इयं वधूः सुमङ्गलीः समेत। इमाम् पश्यत। अस्यै सौभाग्यम् दत्त्वाय। अथ अस्तं वि परेतन।

हिन्दी अनुवाद–

(इयम्) यह (वधूः) वधू (सुमङ्गलीः) शोभन मङ्गल वाली कल्याण कारिणी है। (समेत) आप लोग एकत्रित होकर आइये और (इमां) इसको (पश्यत) देखिये। (अस्यै) इस पुत्रवधू के लिये (सौभाग्यम्) सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद (दत्त्वाय) देकर (अथ) इसके बाद (अस्तं) अपने घर को (विपरेतन) वापिस लौट जाइये।

भावार्थ–

विवाह संस्कार में उपस्थित होने वाले अभ्यागतों से कन्या व वर के सभी अभिभावक प्रार्थना करते हैं– हे सज्जनो! यह कन्या जो कि वधू होने जा

रही है, सबके लिये मङ्गलकारिणी है। आप सब आकर इसके रूप को देखिये, इसको सौभाग्य का आशीर्वाद दीजिये और अपने घरों को लौट जाइये।

संहिता पाठ-

तृष्टमेतत्कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात्स इद्वाधूयमर्हति॥३४॥

पद पाठ-

तृष्टं। एतत्। कटुकं। एतत्। अपाष्ठऽवत्। विषऽवत्। न एतत्। अत्तवे।
सूर्यां। यः। ब्रह्मा। विद्यात्। सः। इत्। वाधूऽयं। अर्हति॥३४॥

सायण भाष्य-

अनयापि वधूवस्त्रपरित्यागः प्रतिपाद्यते। एतद्वस्त्रं तृष्टं दाहजनकं। तथैतत्कटुकं। तथापाष्ठवत्। अपाष्ठमपस्थितमृजीषं। तद्वत्। तथा विषवत्। नैतद्वस्त्रमत्तवे। अत्तव्यं अनुपयोग्यं। यो ब्रह्मा। ब्राह्मणः। सूर्यामिदानीं प्रस्तुतां देवीं विद्यात् सम्यग्जानीयात् स इत्स एव वाधूयं वधूवस्त्रर्हति॥

अन्वय-

एतत् तृष्टम्, एतत् कटुकम् अपाष्ठवत् एतत् विषवत् एतत् अत्तवे न। यो ब्रह्मा सूर्यां विद्यात् स इत् वाधूयम् अर्हति।

हिन्दी अनुवाद-

(एतत्) वधू का यह आर्तव से संलग्न वस्त्र (तृष्टम्) दाह उत्पन्न करने वाला है। (एतत्) यह वस्त्र (कटुकम्) कटु अनुभव कराने वाला है। (अपाष्ठवत्) दूर ही रहने योग्य है। (विषवत्) विष के समान त्याज्य है। (एतत्) यह (अत्तवे) उपभोग करने योग्य (न) नहीं है। (यः) जो (ब्रह्मा) विद्याओं का वेत्ता विद्वान

पुरुष (सूर्याम्) सूर्या वधू को, सूर्य की गति के अनुसार उसके आर्तव की अवस्था को (विद्यात्) भली प्रकार से जानता है, समझ लेता है, (स इत्) वह व्यक्ति ही (वाधूयम्) वधू के साथ सम्बन्ध की (अर्हति) प्राप्त करने के योग्य है।

भावार्थ–

वधू के आर्तव के समय का सम्बन्ध पुरुष के लिये अति दाहजनक, कष्ट देने वाला, दूर रखने योग्य और विष के समान होता है। बुद्धिमान पुरुष को इस विषय में जानना चाहिए। जो मनुष्य इस विषय को भलीप्रकार जातना है, वही वधू के साथ सम्बन्ध बनाने के योग्य है।

संहिता पाठ–

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनं।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुंधति॥३५॥

पद पाठ–

आऽशसनं। विऽशसनं। अथो इति। अधिऽविकर्तनं।
सूर्यायाः। पश्य। रूपाणि। तानि। ब्रह्मा। तु। शुंधति॥३५॥

सायण भाष्य–

आशसनं तूषाधानं तच्चान्यवर्णं भवति। विशसनं शिरसि निधीयमानं। तादृशं दशांते निधीयमानमधिविकर्तनं यत्त्रिधा वासो विकृंतंति। तान्याशसनादीनि वासांस्यवस्यितानि सूर्याया रूपाणि भवंति। तानि पश्य। एवंभूतान्याशसनादीनि पुरा सूर्यास्वशरीरे स्थितान्यमंगलानि वासांसि विधत्ते। तानि रूपाणि सूर्याविद्ब्रह्मा तु ब्राह्मण एव तस्माद्वाससः सकाशाच्छुंधति। अपनयति॥ विवाहे कन्याहस्तग्रहणे गृभ्णामीत्येषा। सूत्रितं च। गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तमित्यंगुष्टमेव गृह्णीयात्।

अन्वय–

आशसनम् विशसनम् अथो अधि विकर्तनम्। सूर्यायाः रूपाणि पश्य। तानि ब्रह्मा तु शुन्धति।

हिन्दी अनुवाद–

(आशसनम्) पति के परिवार के प्रति धृष्टता का व्यवहार करना (विशसनम्) विशेष रूप से धृष्टता करना (अथो) और (अधि विकर्तनम्) कठोर कटु वचन बोलना (सूर्यायाः) वधू के (रूपाणि) रूपों को (पश्य) देखो, (तानि) उन रूपों को (ब्रह्मा तु) विद्वान पुरुष ही (शुन्धति) शुद्ध कर सकता है।

भावार्थ–

वधू पति के घर में आकर अनेक बार बहुत घृष्ट हो जाती है और कटु वचन बोलने लगती है। उसकी इन भावनाओं को विद्वान जानकार ही समझ सकता है। वही इसको शुद्ध कर व्यवहार में ठीक कर सकता है।

संहिता पाठ–

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥३६॥

पद पाठ–

गृभ्णामि। ते। सौभगऽत्वाय। हस्तं।
मया। पत्या। जरत्ऽअष्टिः। यथा। असः।
भगः। अर्यमा। सविता। पुरंऽधिः।
मह्यं। त्वा। अदुः। गार्हऽपत्याय। देवाः॥३६॥

सायण भाष्य–

हे वधु ते तव हस्तमहं गृह्णामि। गृभ्णामि। किमर्थ। सौभगत्वाय सौभाग्याय। मया पत्या त्वं यथा जरदष्टिः प्राप्तवार्धक्यासः भवसि। भगोऽर्यमा सविता पुरंधिः पूषा एते देवास्त्वा त्वां मह्यमदुः। दत्तवंतः। किमर्थं। गार्हपत्याय। यथाहं गृहपतिः स्यामिति॥

अन्वय–

सौभगत्याय ने हस्तं गृभ्णामि। मया पत्या यथा जरदष्टिः असः। भगः अर्यमा सविता पुरन्धिः देवा मह्यं मार्हपत्याय त्वा अदुः।

हिन्दी अनुवाद–

हे सूर्ये (सौभगत्वाय)सौभाग्य के लिये(ते)तुम्हारे(हस्तम्)हाथ को मैं (गृभ्णामि)ग्रहण करता हूँ,पकडता हूँ। (मया)मुझ (पत्या)पति केसाथ (यथा)जिस प्रकार से (जरदष्टिः)वृद्धावस्था तक, शरीर के जीर्ण होने तक तुम(असः)रहती रहो। (भगः) ऐश्वर्यशाली देवता,(अर्यमा)न्यायकारी देवता(सविता)सबको उत्पन्न करने वाला देवता (पुरन्धिः)सबको धारण करने वाला और पोषण करने वाला देवता(देवाः)सब देवताओं ने (मह्यम्)मुझे (गार्हपत्याय)गृहस्थ धर्म का पालन करने के लिये(त्वा)तुझ वधू को(अदुः) दिया है।

भावार्थ –

पुरुष सौभाग्य प्राप्त करने के लिये ही वधू का हाथ पकड़ता है। पति-पत्नी का सम्बन्ध वृद्धावस्था तक, मृत्युहोने तक रहता है। देवता ही इस सम्बन्ध का निर्धारण करते हैं और गृहस्थ धर्म का पालन करने के लिये वधू को पति के घर भेजते हैं।

संहिता पाठ–

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपंति।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशंतः प्रहराम शेपं॥३७॥

पद पाठ–

तां। पूषन्। शिवऽतमां। आ। ईरयस्व।
यस्यां। बीजं। मनुष्याः। वपंति।
या। नः। ऊरू इति। उशती। विऽश्रयाते।
यस्यां। उशंतः। प्रऽहराम। शेपं॥३७॥

सायण भाष्य–

हे पूषन्पोषकैतन्नामक देव शिवतमामत्यंतमंगलभूतां तामेरयस्व। आ ईरय। सर्वतःप्रेरय। यस्यामूरौ बीजं रेतोलक्षणं मनुष्या वपंति आदध। या नोऽस्माकमुरू उशती कामयमाना विश्रयाते। यस्यामूरावुशंतः कामयमाना वयं शेपं स्पर्शनयोग्यं पुंस्प्रजननं प्रहराम। ऊरौ व्यंजनसंबंधं करवामेत्यर्थः॥

अन्वय–

पूषन् तां शिवतमाम् आ ईरयस्व यस्यां मनुष्याः बीजं वपन्ति। या नः उशतीः ऊरू विश्रयाते, यस्याम् उशन्तः शेपम् प्रहरामः।

हिन्दी अनुवाद–

(पूषन्)सबका पोषण करने वाले हे देवता(तां)उस (शिवतमाम्) अत्यधिक कल्याण करने वाली वधू को(आ ईरयस्व)हमारे पास आने के लिये प्रेरित करो, (यस्यां)जिस वधू में (मनुष्याः)पुरुष (बीज)सन्तान का बीज(वपन्ति)बोते हैं। (या) जो वधू (नः) हमारी (उशती)कामना करती हुई (ऊरू) अपनी जांघों को (विश्रयाते) फैलाती है और (यस्यां) जिस वधू में(उशन्तः)कामना करते हुये हम (शेषम्)वीर्य सिंचन करने वाली इन्द्रिय का

(प्रहराम:)प्रहार करते हैं।

भावार्थ –

कल्याण करने वाली वधू को देवता ही पास आने के लिये प्रेरित करते है और सन्तान को प्राप्त करने के लिये उसमें पुरुष वीर्य रूपी बीज बोते हैं। जब वह पुरुष की कामना करती हुई जांघों को फैलाती है तो पुरुष अपनी जननेन्द्रिय का अपनी पत्नी के अंग पर प्रहार करता हैं।

संहिता पाठ–

तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥३८॥

पद पाठ–

तुभ्यं। अग्नें। परिं। अवहन्। सूर्यां। वहतुना। सह।
पुनरितिं। पतिऽभ्यः। जायां। दाः। अग्ने। प्रऽजया। सह ॥३८॥

सायण भाष्य–

गंधर्वा हे अग्ने तुभ्यमग्ने पर्यवहन्। प्रायच्छन्नित्यर्थः। कां। सूर्यां। केन सह। वहतुना सह सोमाय प्रायच्छः। तद्वदिदानीमपि हे अग्ने पुनः पतिभ्योऽस्मभ्यं जायां प्रजया सह दाः। देहि॥

अन्वय–

अग्ने तुभ्यं परि वहतुना सह सूर्याम् अवहन्। पुनः पतिभ्यः प्रजया सह जायां अग्ने दाः।

हिन्दी अनुवाद–

(अग्ने) हे अग्नि देवता! (तुभ्यं) तुम्हारे (परि) चारों ओर (वहतुना सह) विवाह संस्कार के साथ और उसके यौतुक के साथ (सूर्याम्) जब सूर्या वधू को (अवहन्) प्राप्त कराया था, प्रदक्षिणा कराई थी। (पुनः) फिर इसके बाद (पतिभ्यः) इस पति के लिये (प्रजया सह) सन्तान सहित (जायाम्) पत्नी को (अग्ने) हे अग्नि देव तुमने (दाः) प्रदान किया।

भावार्थ–

विवाह संस्कार में पहले अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिणा करके अग्नि देवता पत्नी को प्राप्त कराता है। तदन्तर पत्नी के साथ सन्तान को भी प्राप्त कराता है।

संहिता पाठ–

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा।

दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतं॥३९॥

पद पाठ–

पुनरिति। पत्नीं। अग्निः। अदात्। आयुषा। सह। वर्चसा।

दीर्घऽआयुः। अस्याः। यः। पतिः। जीवाति। शरदः। शतं ॥३९॥

सायण भाष्य–

पुनः स्वगृहीतां पत्नीमग्निरायुषा सह वर्चसा सहादात्। प्रायच्छत्। अस्या अग्निदत्ताया यः पतिः पुमान् स दीर्घायुः सञ्शरदः शतं शतसंवत्सरं जीवाति। जीवतु।

अन्वय–

अग्निः आयुषा वर्चसा सह पुनः पत्नीम् अदात्। अस्याः यः पतिः दीर्घायुः शरदः शतं जीवाति।

हिन्दी अनुवाद–

(अग्निः) अग्नि देवता ने, वधू रूप में विद्यमान इस सूर्या को (आयुषा) लम्बी आयु के और (वर्चसा) कान्ति और तेज के (सह) साथ (पत्नीम्) पत्नी को मुझ पति के लिये (अदात्) दिया है। (अस्याः) इस वधू का (यः) जो (पतिः) पति है, वह (दीर्घायुः) लम्बी आयु वाला होकर (शरदः शतम्) सौ वर्ष की आयु का होकर (जीवाति) जीवित रहे।

भावार्थ–

आशंसा की गई है कि पति की जो आयु लम्बी होती है और उसमें तेजस्विता होती है, वह योग्य पत्नी की ऊष्मा अर्थात् शक्ति के कारण होती है। पत्नी ही अपनी शक्ति से पति को दीर्घ आयु तथा तेजस्विता प्रदान करती है। अतः आशंसा की गई है कि उस पत्नी का पति दीर्घ आयु का होकर सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहे।

संहिता पाठ–

सोमः प्रथमो विविदे गंधर्वो विविद उत्तरः।

तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥४०॥

पद पाठ–

सोमः। प्रथमः। विविदे। गंधर्वः। विविदे। उत्ऽतरः।

तृतीयः। अग्निः। ते। पतिः। तुरीयः। ते। मनुष्यऽजाः॥४०॥

सायण भाष्य–

जातां कन्यां सोमः प्रथमभावी सन् विविदे। लब्धवान्। गंधर्व उत्तरः सन् विविदे। लब्धवान्। अग्निस्तृतीयः पतिस्ते तव। पश्चान्मनुष्यजाः पतिस्तुरीयश्चतुर्थः।

अन्वय-

सोमः प्रथमः विविदे। गन्धर्वः उत्तरः विविदे। तृतीयः अग्निः ते पतिः। ते तुरीयः मनुष्यजाः।

हिन्दी अनुवाद-

विवाह की आयु को प्राप्त होने वाली हे वधू (सोमः) सोम शक्ति को (प्रथमः) प्रथम पति के रूप में तुम (विविदे) प्राप्त करती हो। (गन्धर्वः) गन्धर्व शक्ति को (उत्तरः) बाद में द्वितीय पति के रूप में तुम प्राप्त करती हो। (तृतीयः) तीसरा (अग्निः) अग्नि सृजनात्मक शक्ति (ते) तुम्हारा (पतिः) पति होता है और (तुरीयः) चौथा पति (ते) तुम्हारा (मनुष्यजाः) मनुष्य से उत्पन्न होने वाला पुरुष पति होता है।

भावार्थ-

नारी की चार अवस्थायें होती हैं-प्रथम सोम अवस्था, जो कि उसकी किशोर सौम्य अवस्था है। दूसरी गन्धर्व अवस्था, जबकि उसको रजोदर्शन होता है। उसके शरीर में यौवन के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं और यौवन की मोहक सुगन्ध भर जाती है, तीसरी अग्नि अवस्था है। यह शरीर की अद्‌भुत कान्तिमय अवस्था है। स्त्री का शरीर सन्तान के प्रसव के योग्य हो जाता है, तब ही स्त्री का किसी पुरुष से विवाह होना चाहिए। यह उसकी तुरीय अवस्था है।

संहिता पाठ–

सोमो॑ ददद्गंध॒र्वाय॑ गंध॒र्वो द॑दद॒ग्नये॑।
र॒यिं च॑ पु॒त्रांश्चा॑दाद॒ग्निर्मह्य॒मथो॑ इ॒माम्॥४१॥

पद पाठ–

सोम॑ः। द॒द॒त्। गं॒ध॒र्वाय॑। गं॒ध॒र्वः। द॒द॒त्। अ॒ग्नये॑।
र॒यिम्। च॒। पु॒त्रान्। च॒। अ॒दा॒त्। अ॒ग्निः। मह्य॑म्। अथो॒ इति॑। इ॒माम्॥४१॥

सायण भाष्य–

सोमो गंधर्वाय प्रथमं ददत्। प्रादात्। गंधर्वोऽग्नये प्रादात्। अथो अपि चाग्निरिमां कन्यां रयिं धनं पुत्रांश्च मह्यमदात्।

अन्वय–

सोमः गन्धर्वाय ददत्। गन्धर्वः अग्नये ददत्। अथ अग्निः इमाम् मह्यम् अदात् रयिं च पुत्रान् च।

हिन्दी अनुवाद–

(सोमः) सोम शक्ति ने इस कन्या को (गन्धर्वाय) गन्धर्व शक्ति के लिये (ददत्) दिया है। (गन्धर्वः) गन्धर्व शक्ति ने (अग्नये) अग्नि शक्ति के लिये (ददत्) दिया है। (अथ) इसके बाद (अग्निः) अग्नि शक्ति ने (इमाम्) इस वधू को (मह्यम्) मुझ मनुष्य पुरुष के लिये (अदात्) दिया है। (अथ) और इसके साथ ही (रयिं) धन सम्पत्ति ऐश्वर्य को और (पुत्रान्) पुत्रों को (अदात्) दिया है।

भावार्थ–

नारी की प्रथम अवस्था सोम की है, जबकि वह किशोरी भी होती है। जबकि दूसरी अवस्था गन्धर्व की है, जबकि इसमें मासिक ऋतुस्राव होने लगता है और यौवन के पदार्पण के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। तीसरी

अवस्था अग्नि की है, जबकि उसके अंदर ऊष्मा और शक्ति उत्पन्न हो जाती है। तब उसका किसी पुरुष से विवाह हो जाता है। विवाह के अनन्तर गृहस्थ होकर वह धन सम्पत्ति का अर्जन करता है, उसकी सन्तानें उत्पन्न होकर परिवार निरन्तर बढ़ाता जाता है।

संहिता पाठ–

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतं।
क्रीळंतौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥

पद पाठ–

इह। एव। स्तं। मा। वि। यौष्टं। विश्वं। आयुः। वि। अश्नुतं।
क्रीळंतौ। पुत्रैः। नप्तृऽभिः। मोदमानौ। स्वे। गृहे।॥४२॥

सायण भाष्य–

इहैव स्तं। इहैवास्मिँल्लोके स्तं। भवतं। मा वि यौष्टं। मा पृथग्भूतं। विश्वमायुर्व्यश्नुतं। किंच पुत्रैर्नप्तृभिः पौत्रैः सह स्वे गृहे मोदमानौ भवतमिति शेषः।

अन्वय–

इह एव स्तम् मा वियौष्टम्। विश्वम् आयुः व्यश्नुतम्। स्वे गृहे पुत्रैः नप्तृभिः क्रीडन्तौ मोदमानौ स्तम्।

हिन्दी अनुवाद–

(इह) यहां पर (एव) ही (स्तम्) तुम दोनों रहो (मा वियौष्टम्) कभी नहीं वियुक्त रहो। (विश्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु को (व्यश्नुतम्) तुम प्राप्त करो। (स्वे) अपने (गृहे) घर में (पुत्रैः) पुत्रों के साथ (नप्तृभिः) और नातियों के साथ (क्रीडन्तौ) क्रीड़ा करते हुए तथा (मोदमानौ) प्रसन्न होते हुये (स्तम्) तुम यहीं रहो।

भावार्थ-

प्रभु आशीर्वाद देते हैं कि तुम पति-पत्नी दोनों मिलकर यहां प्रेमपूर्वक रहो। तुम्हारा एक दूसरे से कभी वियोग न हो और तुम अपनी पूरी आयु का उपभोग करो, जब तुम वृद्ध हो जाओ और तुम्हारे पुत्र-पौत्र हो जावें तो उनके साथ क्रीड़ा करते हुए तुम अपने घर में मृत्यु पर्यन्त रहो।

संहिता पाठ-

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा।
अदुर्मगलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।४३।।

पद पाठ-

आ। नः। प्रऽजां। जनयतु। प्रजाऽपतिः।
आऽजरसाय। सं। अनक्तु। अर्यमा।
अदुःऽमंगलीः। पतिऽलोकं। आ। विश।
शं। नः। भव। द्विऽपदे। शं। चतुःऽपदे ।।४३।।

सायण भाष्य-

प्रजापतिर्देवो नोऽस्माकं प्रजामा जनयतु। अर्यमा चाजरसाय जरापर्यन्तं जीवनाय समनक्तु। संगमयतु। सा त्वमदुर्मंगलीर्दुर्मंगलरहिता सुमंगली। यद्वा। या मंगलाचारान्दूषयति सा दुर्मंगली। ततोऽन्यादुर्मंगली। तादृशी सती पतिलोकं पतिसमीपमा विश। प्राप्नुहि। नोऽस्माकं द्विपदे शं भव। तथा च शं चतुष्पदे भव।

अन्वय-

प्रजापतिः नः प्रजाम् आ जनयतु। अर्यमा आ जरसाय समनक्तु अदुर्मङ्गलीः पतिलोकम् आ विश। नः द्विपदे शं भव चतुष्पदे शम्।

हिन्दी अनुवाद–

(प्रजापतिः) सब प्रजाओं का रचयिता परमात्मा (नः) हमारी (प्रजाम्) सन्तानों को (जनयतु) उत्पन्न करे। (अर्यमा) न्यायकारी परमात्मा (आ जरसाय) वृद्धावस्था पर्यन्त (सम् अनक्तु) हमको तृप्त रखे। (अदुर्भङ्गलीः) शुभ मङ्गलकारी होती हुई सूर्या पत्नी (पति लोकम्) अपने पति के लोक में, घर में (आ विश) प्रवेश करे। (नः) हमारे (द्विपदे) दो पैर वाले मनुष्यों के लिये (शम्) कल्याण करने वाली (भव) होवो और (चतुष्पदे) चार पैर वाले पशुओं के लिये (शम्) कल्याण करने वाली होओ।

भावार्थ–

प्रजापति परमात्मा हमारे लिये सन्तानों को उत्पन्न करे। न्यायकारी परमात्मा वृद्धावस्था तक हमको तृप्त रखे। इस सुमङ्गली वधू को उत्तम पति लोक प्राप्त हो। हमारे घर में सब मनुष्य और पशुओं का कल्याण होवे।

संहिता पाठ–

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥४४॥

पद पाठ–

अघोरऽचक्षुः। अपतिऽघ्नी। एधि।
शिवा। पशुऽभ्यः। सुऽमनाः। सुऽवर्चाः।
वीरऽसूः। देवऽकामा। स्योना।
शं। नः। भव। द्विऽपदे। शं। चतुःऽपदे॥४४॥

सायण भाष्य–

हे वधु त्वमघोरचक्षुः क्रोधादभयंकरचक्षुरेधि। भव। तथापतिघ्नी भव। तथा पशुभ्यः शिवा हितकरी भव सुमनाः सुवर्चाश्च भव। वीरसूः पुत्राणामेव

प्रसवित्री देवकामा स्योना सुखकरा च भव।

अन्वय–

अघोरचक्षुः अपतिघ्नी एधि पशुभ्यः शिवा सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूः देवृकामा स्योना नः द्विपदे शं चतुष्पदे शम्।

हिन्दी अनुवाद –

हे वधू तुम (अघोरचक्षुः) भयरहित सौम्य दृष्टि वाली (अपतिघ्नी) पति की रक्षा करने वाली, (एधि) वृद्धि को प्राप्त होओ। (पशुभ्यः) घर के पशुओं के लिये (शिवा) कल्याण करने वाली (सुमनाः) सुन्दर और सुखद मन वाली और (सुवर्चा) सुन्दर मुख की कान्ति वाली तथा ज्ञानशील होओ। (वीरसूः) वीर पुत्रों को जन्म देने वाली और (देवृकामा) आपत्ति के समय आवश्यकता पड़ने पर देवरों की कामना करने वाली तथा (स्योना) सबको सुख देने वाली होओ। (नः) हमारे (द्विपदे) दो पैर वाले मनुष्यों के लिये (शम्) कल्याण करने वाली (भव) बनो और (चतुष्पदे) चार पैर वाले पशुओं के लिये (शम्) कल्याण करने वाली बनो।

भावार्थ–

वधू को सौम्य दृष्टि वाली, पति की रक्षा करने वाली, वृद्धिशील, पशुओं का कल्याण करने वाली, सुन्दर, प्रसन्न मन वाली और तेजस्विनी होना चाहिये। उसे वीर सन्तानों को जन्म देना चाहिये और समय पड़ने पर देवरों की कामना करनी चाहिये। सबके लिये सुखकारी होना चाहिये। वह घर के मनुष्यों और चौपायों का कल्याण करने वाली हो।

संहिता पाठ–

इमां त्वमिंद्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि।।४५।।

पद पाठ–

इमां। त्वं। इंद्र। मीढ्वः। सुऽपुत्रां सुऽभगां। कृणु।
दश। अस्यां। पुत्रान्। आ। धेहि। पतिं। एकादशं। कृधि।।४५।।

सायण भाष्य–

हे इंद्र त्वमिमां वधूं सुपुत्रां सुभगां च कृणु। कृधि। अस्यां वध्वां दश पुत्राना धेहि। पतिमेकादशं कृधि। दश पुत्राः पतिरेकादशो यथा स्यात्तथा कृधि। कृणु।।

अन्वय–

मीढ्वः इन्द्र त्वम् इमां सुभगां सुपुत्रां कृणु। अस्यां दश पुत्रान् आधेहि एकादशं पतिं कृधि।

हिन्दी अनुवाद–

(मीढ्वः) वीर्य का सेवन करने वाले (इन्द्रः) हे इन्द्रदेव! (त्वं) तुम (इमां) तब इस वधू को (सुभगां) सौभाग्यशालिनी और (सुपुत्राम्) उत्तम पुत्रों वाली (कृणु) बनाओ। (अस्यां) इस वधू में (दश) दस (पुत्रान्) पुत्रों का (आ धेहि) आधान करो। (पतिम्) पति को (एकादशम्) ग्यारहवां (कृधि) कर दो।

भावार्थ–

वीर्य का सेवन करने वाले हे इन्द्र देवता, तुम इस वधू को सौभाग्यशालिनी बनाओ और पुत्रवती बनाओ। तुम इस वधू में दस पुत्रों का आधान करो और ग्यारहवां स्वयं इसका पति होवे।

संहिता पाठ–

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव।
ननांदरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।।४६।।

पद पाठ–

सं॒ऽराज्ञी। श्वशु॑रे। भ॒व॒। सं॒ऽराज्ञी। श्वश्वा॒ं। भ॒व॒।
ननां॑दरि। सं॒ऽराज्ञी। भ॒व॒। सं॒ऽराज्ञी। अधि॑। दे॒वृषु॑।।४६।।

सायण भाष्य–

हे वधु श्वश्रुरादिषु त्वं सम्राज्ञी भव। देवृषु। देवरेष्वित्यर्थ। समंजंत्वित्येषा वरस्य दधिप्राशने वधूवरयोर्हृदयस्पर्शने वा विनियुक्ता। तथा च सूत्रितं। समजंतु विश्वे देवा इति दघ्न: प्राश्य प्रतिप्रयच्छेदाज्यशेषेण व्यनक्ति हृदये।

अन्वय–

सम्राज्ञी श्वशुरे भव। सम्राज्ञी श्वश्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव:। देवृषु अधि सम्राज्ञी।

हिन्दी अनुवाद–

हे वधु तुम (सम्राज्ञी) शासन करने वाली (श्वशुरे) अपने श्वसुर, पति के पिता के लिये (भव) बनो। (सम्राज्ञी) शासन करने वाली (श्वश्र्वां) अपनी सास, पति की माता के लिये बनो, (ननान्दरि) ननद (पति की बहन) के प्रति (सम्राज्ञी) शासन करने वाली बनो। (देवृषु अधि) देवरों (पति के भाईयों) के प्रति (सम्राज्ञी) शासन करने वाली बनो।

भावार्थ–

वधू का व्यवहार घर के सब सदस्यों के प्रति इतना मधुर होना चाहिये कि घर में सब सदस्य उसके शासन को प्रेमपूर्वक स्वीकार करें।

संहिता पाठ–

समंजंतु विश्वे दे॒वा: समापो॒ हृदयानि नौ।
सं मात॒रिश्वा॒ सं धा॒ता समु देष्ट्री दधातु नौ।।४७।।

पद पाठ–

सं। अंजंतु। विश्वे। देवाः।
सं। आपः। हृदयानि। नौ।
सं। मातरिश्वा। सं। धाता।
सं। ऊं इति। देष्ट्री। दधातु। नौ।।४७।।

सायण भाष्य–

विश्वे देवाः सर्वे देवा नौ हृदयानि मानसानि समंजंतु। सम्यगंजंतु। अपगतदुःखादिक्लेशानि कृत्वा लौकिकवैदिकविषयेषु प्रकाशयुक्तानि कुर्वंत्वित्यर्थः। आपश्च समंजंतु। तथा मातरिश्वा नौ हृदयानि सं दधातु। आवयोर्बुद्धीः परस्परानुकूलाः करोत्वित्यर्थः। धाता च सं दधातु। देष्ट्री दात्री फलानां। सरस्वतीत्यर्थः। सा च सं दधातु। संधानं करोतु।।

अन्वय–

विश्वे देवाः समञ्जन्तु। नौ सम् आपः। हृदयानि मातारिश्वा संधाता। देष्ट्री नौ संदधातु।

हिन्दी अनुवाद–

(विश्वे) समस्त (देवाः) देवता (समञ्जन्तु) भली प्रकार से जान जावें, उनके गुण और स्वभाव अच्छी प्रकार से समझ लिये जायें। (नौ) हम दोनों पति–पत्नी (समापः) पानी के समान एक दूसरे में मिल जावें। (हृदयानि) हृदयों को(मातरिश्वा) वायु देवता (संधाता) मिलाकर एक कर दे। (देष्ट्री) हृदयों को निर्देश देने वाली सरस्वती देवी (नौ) हम दोनों को (संदधातु) समान मन वाला कर दें।

भावार्थ–

हम दोनों पति–पत्नी के मन, बुद्धि और विचार मिलकर एक हो जावें। हमारे हृदय उसी प्रकार मिल कर एक हो जावें, जैसे पानी मिलकर एक हो जाते हैं। हममें परस्पर सामंजस्य हो अलगाव की भावना बिल्कुल न हो। सूर्य, वायु और सरस्वती हमारे हृदयों को एकत्व प्रदान करें।

१२. घोषा काक्षीवती (१)

दशम मण्डल सूक्त ३९, मन्त्र १-१४

ऋषि-घोषा काक्षीवती

देवता-अश्विनौ

छन्दः -त्रिष्टुप्, जगती

सूक्त की सायणकृत पूर्वभूमिका-

यो वामिति चतुर्दशर्चं सूक्तं। कक्षीवतो दुहिता घोषा नाम ब्रह्मवादिन्यृषिः। अत्या त्रिष्टुप्। शिष्टा जगत्यः। अश्विनौ देवता। तथा चानुक्रांत। यो वा षळूना काक्षीवती घोषाश्विनं हि त्रिष्टुवतमिति।। प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोजीगते छंदसीदमादीनि त्रीणि सूक्तानि। सूचितं च। यो वां परिज्मेति त्रीणि त्रिश्चिन्नो अद्य।

संहिता पाठ -

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे।।१।।

पद पाठ-

यः । वां। परिऽज्मा। सुऽवृत् । अश्विना। रथः।
दोषां । उषसः। हव्यः। हविष्मता।
शश्वतऽतमासः। तं । ऊं इति। वां। इदं। वयं।
पितुः । न । नाम । सुऽहवं। हवामहे ।।१।।

सायण भाष्य –

हे अश्विनाश्विनौ वां युवयो: परिज्मा परितो गंता सुवृत्सुष्ठु वर्तमानो यो रथो दोषां रात्रिमुषसश्च। अहोरात्रयोरित्यर्थ:। हविष्मता यजमानेन हव्यो ह्वातव्यो वां युवयो: स्वभूतं सुहवं शोभनाह्वानं तमु तमेव रथं शश्वत्तमासोऽतिशयेन चिरंतना वयं पितुर्न यथा पितुरिदं नाम तथा हवामहे। ह्वयाम:॥

अन्वय –

अश्विना परिज्मा सुवृत् वाम् य: रथ: हविष्मता दोषा: उषास: हव्य: शश्वत्तमास: वयं वां सुहवं पितु: इदं नाम न हवामहे।

हिन्दी अनुवाद –

(अश्विना) हे अश्विनी देवताओं! (परिज्मा) सब ओर परिक्रमा करने वाले (सुवृत्) अच्छी प्रकार से निर्मित (वां) आप दोनों का (य:) जो (रथ:) रथ (हविष्मता) यज्ञ करने वाले यजमान के द्वारा (दोषा:) रात्रियों में (उषास:) उषा कालों में अर्थात् दिन और रात (हव्या:) पुकारा जाता है, आह्वान किया जाता है। (शश्वत्तमास:) निरन्तर सतत् रूप से (वयं) हम यजमान (वाम्) आपके (सुहवम्) उत्तम पुकार वाले (पितु:) पिता के (इदं) इस (नाम न) नाम के समान (हवामहे) पुकारते हैं।

भावार्थ–

अश्विनी देवताओं का परिक्रमा करता हुआ रथ रात और दिन सब यज्ञ करने वाले यजमानों द्वारा पुकारा जाता है। यह पिता के नाम की तरह प्रशंसनीय है और सब उसको पुकारते हैं।

संहिता पाठ–

चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरंधीरीरयतं तदुश्मसि।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतं॥

पद पाठ–

चोदयतं। सूनृताः। पिन्वतं। धियः।

उत्। पुरंऽधीः। ईरयतं। तत् । उश्मसि।

यशसं। भागं । कृणुतं । नः। अश्विना।

सोमं। न। चारुं। मघवत्ऽसु। नः। कृतं॥२॥

सायण भाष्य –

हे अश्विनाश्विनौ युवा सूनृता वाच उषसा वा चोदयतं। प्रेरयतं। अस्माकं धियः कर्माणि च पिन्वतं पूरयतं। पुरंधीर्बह्वीः प्रज्ञाश्चोदीरयतं। उद्गमयतं। प्रेरयतं। उत्पादयतामित्यर्थः। तदेतत्त्रयमुश्मसि। वयं कामयामहे। किंच नोऽस्माकं यशसं यशस्विनं भागं भजनीयं धनादिकं कृणुतं। कुरुतं। चारु कल्याणं न सोमं न सोममिव नोऽस्मान्मघवत्सु धनवत्सु कृतं। कुरुतं॥

अन्वय –

अश्विना सूनृताः नोदयतम् धियः पिन्वतम् उत् पुरन्ध्रीः ईरयतम् तत् उश्मसि। यशसः भागं कृणुतम्। मघवत्सु नः चारुं सोमं न कृतम्।

हिन्दी अनुवाद –

(अश्विना) हे अश्विनी देवताओ! आप हमारे लिये (सूनृताः) उत्तम मधुरं वाणियों की (चोदयतम्) प्रेरणा दीजिये, (धियः) हमारी बुद्धियों को (पिन्वतम्) परिपूर्ण करा दीजिये। (उत्) और (पुरन्ध्रीः) हमारी प्रज्ञाओं को

(इरियतम्) सत्कर्म की ओर प्रेरित कीजिये। (तत्) इन सब प्रयोजनों की हम (उश्मसि) कामना करते हैं। हमारे लिये (यशसं) यशस्वी (भागम्) धन के भाग को (कृणुतम्) सम्पन्न कीजिए। (मघवत्सु) धन सम्पन्न व्यक्तियों के मध्य में (नः) हमारे लिये (चारुं) सुन्दर उत्तम (सोमं न) सोम के समान (कृतम्) सम्पादित कर दीजिये।

भावार्थ-

यजमान अश्विनी देवताओं से तीन कामनाएं करते हैं- वे उनकी वाणियों को उत्तम और मधुर बनावें। बुद्धियों को उत्तम मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करें तथा प्रजा को उन्नति के लिए प्रेरणा दें। जो लोक में यशस्वी धन है, उनका भाग यजमानों को प्राप्त हो और वे सोम के समान व्यवहार करें।

संहिता पाठ-

अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित्।
अंधस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित्॥३॥

पद पाठ-

अमाऽजुरः। चित्। भवथः। युवं। भगः।
अनाशोः। चित्। अवितारा। अपमस्य। चित्।
अंधस्य। चित्। नासत्या। कृशस्य। चित्।
युवां। इत्। आहुः। भिषजा। रुतस्य। चित्॥३॥

सायण भाष्य –

हे नासत्या नासत्यौ युवं युवाममाजुरश्चित्पितृगृहे जूर्यंत्या अपि दुर्भगाया घोषाया भगो भवथः। शोभनरूपेणात्मानं परिणमय्य पतिं दत्तवंतौ स्थ इत्यर्थः। तथा च निगमांतरं। घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यंत्या अश्विनावदत्तं। ऋ० १.११७.७. इति। अनाशोश्चिदनशनस्याप्यवितारा रक्षितारौ युवां भवथः। अपमस्य चिज्जात्यातिनिकृष्टस्यापि रक्षितारौ भवथः। अंधस्य चिच्चक्षुर्विकलस्यापि रक्षितारौ भवथः। कृशस्य चिद्दुर्बलस्यापि रक्षितारौ भवथः। किंच युवामिद्युवामेवर्तस्य चिद्यज्ञस्यापि भिषजौ वैद्यावाहुर्विद्वांसः॥

अन्वय –

नासत्या युवम् अमाजुरः चित् भगः भवथः। अनाशोः चित् अवितारः, अपमस्य चित्। अन्धस्य चित् कृशस्य चित् रुतस्य चित् भिषजा इत् युवाम् आहुः।

हिन्दी अनुवाद–

(नासत्या) हे अश्विनी देवताओं (युवम्) तुम दोनों (अमाजुरः चित्) रोग से जीर्ण व्यक्ति के (भगः) ऐश्वर्य तथा सौभाग्य (भवथाः) होते हो। (अनाशोः चित्) न खाने वालों के, भूखे व्यक्ति के (अवितारः) रक्षा करने वाले होते हो और (अपमस्य चित्) छोटे से छोटे व्यक्ति के भी रक्षक होते हो। तुम (अन्धस्य चित्) अन्धे व्यक्ति के भी और (कृशस्य) दुर्बल व्यक्ति के भी (रुतस्य चित्) रोगी व्यक्ति के भी (भिषजा इत्) चिकित्सक, उपचार करने वाले (आहुः) कहे गये हो।

भावार्थ–

अश्विनी देवताओं को सत्यभूत सत्ताधारी होने से नासत्या कहा गया

है। वे सबका पूर्ण कल्याण करने वाले हैं। वे भूखे व्यक्तियों को अन्न देते हैं। रोगों से जीर्ण व्यक्ति की चिकित्सा करते हैं। छोटे से छोटे व्यक्ति के भी वे रक्षक हैं। अन्धे को वे राह दिखाते हैं, निर्बल को बल देते हैं और रोगियों के चिकित्सक कहलाते हैं।

संहिता पाठ–

युवं च्यवान सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या॥४॥

पद पाठ–

युवं। च्यवानं। सनयं। यथा। रथं।
पुनः। युवानं। चरथाय। तक्षथुः।
निः। तौग्र्यं। ऊहथुः। अत्ऽभ्यः। परि। विश्वा।
इत। ता। वां। सवनेषु। प्रवऽवाच्या॥४॥

सायण भाष्य –

हे अश्विनौ युवं युवां सनयं पुराणं च्यवानमृषिं यथा रथं जीर्णं रथमिव पुनर्युवानं तरुणं चरथाय चरणार्थं तक्षथुः। ततक्षथुः। अकुरुतमित्यर्थः। तथा च यास्कः। युवं च्यवानं सनयं पुराणं यथा रथं पुनर्युवानं चरणाय ततक्षथुर्युवा प्रयौति कर्माणि तक्षतिः करोतिकर्मा। नि० ४.१९। इति। किंच युवां तौग्र्यं तुग्रपुत्रं भुज्युमद्भ्यः परि समुद्रस्योपरि निरूहथुः। किंच वां युवयोर्विश्वा विश्वानि ता तानि कर्माणि सवनेषु यज्ञेषु प्रवाच्या प्रवाच्यानि प्रकर्षेण वक्तव्यानि॥

अन्वय -

युवं च्यवानं सनयं रथं यथा पुनः युवानम् चरथाय तक्षथुः। तौग्र्यम् अद्भ्यः परि निः ऊहथुः विश्वा इत् ताः वां सवनेषु प्रवाच्याः।

हिन्दी अनुवाद -

हे अश्विनी देवताओ! (युवम्) तुम दोनों (च्यवानम्) क्षीण होते हुए वृद्ध च्यवन को (सनयं) पुराने (रथं) रथ के (यथा) समान (युवानम्) युवा बनाकर (चरथाय) भ्रमण करने के लिये लोक व्यवहार करने के लिये (तक्षथुः) निर्मित कर दिया था। (तौग्र्यम्) शुद्ध किये हुए जल को (अद्भ्यः) सामान्य जनों से (परि) ऊपर (निःऊहथुः) ऊपर स्थान दिया था। (सायण का कथन है- तुग्र के पुत्र भुज्यु को समुद्र के जलों को पार कराया था।) अतः (विश्वा इत्) आपके सभी कार्य (ताः) वे सब (सवनेषु) यज्ञोत्सर्वो में (प्रवाच्याः) कहे जाते हैं, प्रशंसित होते हैं।

भावार्थ-

जैसे पुराने रथ को कारीगर नूतन रूप देकर चलने योग्य बना देता है, वैसे ही अश्विनी देवताओं ने वृद्ध और रोगी च्यवन को युवा बनाकर विचरण के योग्य बना दिया था। अतः अश्विनी के इन कार्यों की प्रशंसा यज्ञों के अवसरों पर होती है।

संहिता पाठ-

पुराणा वां वीर्या३' प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा।
ता वां न नव्यावर्वसे करामहेऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत्।।५।।

पद पाठ–

पुराणा। वां। वीर्या। प्र। ब्रवा। जनें।

अथो इति। ह। आसथुः। भिषजा। मयःऽभुवा।

ता। वां। नु। नव्यौ। अवसे। करामहे।

अयं। नासत्या। श्रत्। अरिः। यथा। दधत्।।५।।

सायण भाष्य –

हे अश्विनौ वां युवयोः पुराणा पुराणानि वीर्याणि जने लोके प्र ब्रव। प्रब्रवीमि। अथो अपि च हे नासत्या नासत्यौ युवां मयोभुवा सुखस्य भावयितारौ भिषजा भिषजौ वैद्यावासथुः। बभूवथुः। ता तौ युवामवसे रक्षणाय नव्यौ स्तुत्यौ करामहे। कुर्मः। अयमरिर्गता पतिर्यजमानो यथा श्रद्दधत्। श्रद्दध्यादिति।।

अन्वय –

वां पुराणा वीर्या जने प्रब्रवा। अथो ह नासत्या भयोभुवा भिषजा आसथुः ता वाम् नु नव्यो अवसे करामहे, अयम् अरिः यथा श्रत् दधत्।

हिन्दी अनुवाद–

हे अश्विनी देवताओ! (वां) तुम्हारे (पुराणाः) पूर्व काल के (वीर्या) पराक्रम के कार्यों का मैं (जने) सब लोगों में (प्रब्रवा) प्रवचन करता हूं। (अथ) और (ह) निश्चय से (नासत्या) हे अश्विनी देवताओ (भयोभुवा) सबको सुख देने वाले, कल्याण करने वाले (भिषजा) चिकित्सक होकर तुम (आसथुः) स्थित होते हो। (ता) इसलिये (वां) तुम दोनों (नु) निश्चय से (नव्यो) स्तुति किये जाते हुए (अवसे) रक्षा करने के लिये (करामहे) किये

जाते हो। (अयं) यह (अरिः) गतिशील यजमान (यथा) जिससे कि (श्रत्) श्रद्धा और विश्वास को (दधत्) धारण करे।

भावार्थ–

अश्विनी देवता सुखकारी और कल्याणकारी चिकित्सक हैं और उनके अनेक प्राचीन पराक्रम प्रसिद्ध हैं। अपनी रक्षा करने के लिये उनकी स्तुति करना उचित है। इससे सब जनों में उनके प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न होता है।

संहिता पाठ–

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतं।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतं॥६॥

पद पाठ–

इयं। वां अह्वे। शृणुतं। मे। अश्विना।
पुत्रायऽइव। पितरा। मह्यं। शिक्षतं।
अनापिः। अज्ञाः। असजात्या। अमतिः।
पुरा। तस्याः। अभिऽशस्तेः। अव। स्पृतं॥६॥

सायण भाष्य –

हे अश्विनाश्विनौ वां युवामियं घोषाहमह्वे। आह्वयामि। मे मम संबंधिनमिममाह्वानं शृणुतं। श्रुत्वा चाह्वानं मह्यं पुत्रायेव यथा पुत्राय पितरा मातापितरौ तद्वच्छिक्षतं। धनं दत्तं। अनापिरबंधुरज्ञा अकृतज्ञासजात्यामतिर-श्रद्धेया चाभिशस्तिर्मामागच्छति। तस्या अभिशस्तेः पुरा प्रागेवाव स्पृतं। मामवपारयतं।

अन्वय–

अश्विना इयं वाम् अह्वे मे शृणुतम्। पुत्राय इव पितरा मह्यं शिक्षतम्। अनापि: अज्ञा: असजात्या अमति: अभिशस्ते: अयं तस्या: पुरा अवस्पृतम्।

हिन्दी अनुवाद –

(अश्विना) हे अश्विनी देवताओ (इयम्) यह मैं (वाम) तुम दोनों चिकित्सकों का (अह्वे) आवाहन करती रही हूं। आप (मे) मेरी बात को (शृणुतम्) सुनिये। (पुत्राय) पुत्र के लिये (इव) जिस प्रकार (पितरा) माता-पिता समझाते हैं, उसी प्रकार से (मह्यम्) आप मुझको (शिक्षतम्) सिखाइये, स्वास्थ्य की शिक्षा दीजिये। (अनापि:) जो किसी का बन्धु नहीं है, (अज्ञा:) अकृतज्ञ है (असजात्या:) जाति से रहित है (अमति:) बुद्धि से शून्य है (अभि शस्ते:) आशीर्वाद से पूर्व ही (अयं) यह मैं हूं (तस्या: पुरा) उससे पहले ही (अवस्पृतम्) मेरी रक्षा करो।

भावार्थ–

रोग से पीड़ित रोगिणी पूर्ण रूप से चिकित्सक के प्रति समर्पित होकर उसकी शरण में पुकार करती है। यह सबको अपने पिता के समान रक्षक समझती है कि वह उसका दिशा-निर्देश करेगा और स्वास्थ्य के नियमों को समझायेगा। रोगों को आने से पूर्व ही आपत्तियों से उसकी रक्षा करेगा।

संहिता पाठ–

युवं रथेन विमदाय शुंध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणां।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरंधये।।७।।

पद पाठ–

युवं। रथेन। विऽमदाय। शुध्युवं।
नि। ऊहथुः। पुरुऽमित्रस्य। योषणां।
युवं। हवं। वध्रिऽमत्याः। अगच्छतं।
युवं। सुऽसुतिं। चक्रथुः। पुरंऽधये॥७॥

सायण भाष्य–

हे अश्विनौ युवं युवां पुरुमित्रस्य पुरुमित्रनामधेयस्य योषणां दुहितरं शुध्युवं नाम जायां विमदाय विमदनामधेयायर्षये रथेन स्वसेनापरिवृतेन रथेन न्यूहथुः। प्रापयतं। विमदस्य गृहं नीतवंतौ स्थ इत्यर्थः। तथा च निगमांतरं। यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन। ऋ० १.११६.१। इति। किंच युवं युवां वध्रिमत्याः संग्रामे शत्रुभिश्छिन्नहस्ताया हवमाह्वानमगच्छतं। आगत्य च तस्यै हिरण्मयं हस्तं प्रायच्छतं। तथा च निगमांतरं। अजोहवोन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरंधिः श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तं। ऋ. १.११६.१३.। इति। किंच युवं युवां पुरंधये बद्धप्रज्ञायै वध्रिमत्यै सुषुतिं सुप्रसवं शोभनमैश्वर्य वा चक्रथुः। कृतवंतौ स्थः॥

अन्वय –

युवं पुरुमित्रस्य योषणाम् शुन्ध्युवम्। विमदाय रथेव निःऊहथुः। यूयं हवं वध्रमत्याः अगच्छतम्। युवं सुसुतिं पुरंधये चक्रथुः।

हिन्दी अनुवाद –

हे अश्विनी देवताओ! (युवं) तुम दोनों देवता (पुरुमित्रस्य) पुरुमित्र नामक राजा की (योषणां) पुत्री को (शुन्ध्युवम्) शुद्ध, स्वास्थ्य और कल्याण प्रदान करते हो और विमद नामक ऋषि के लिये (विमदाय) विशेष मद और

प्रसन्नता प्रदान करने के लिये (रथेन) अपनी सेना में परिवृत रथ द्वारा (निः ऊहथुः) अलंकृत करके आरूढ़ करते हो। (युवं) तुम दोनों (वध्रिमत्याः) संग्रामों में कटे हुए हाथ वाले उस पुरुमित्र की या बन्ध्या नारी की (हवम्) पुकार को (अगच्छतम्) जानते हो। (युवं) तुम दोनों (पुरंधये) शरीर को धारण करने के लिये, सामर्थ्यशाली बनाने के लिये (सुसुतिं) शोभन ऐश्वर्य को (चक्रथुः) प्रदान करते हो।

भावार्थ–

देवता सबके मित्र हैं। वे ही सबकी बुद्धि को शुद्ध करते हैं और शरीर को रोगरहित करके विशेष आनन्द को प्रदान करते हैं। शरीर को धारण करने की शक्ति प्रदान करते हैं और ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। सायण ने यहां ऐतिहासिक घटना कही है। पुरुमित्र नामक व्यक्ति की पुत्री शुन्ध्यु नाम की पत्नी थी। उसको अश्विनी देवताओं ने स्वस्थ करके रथ पर आरूढ़ करके घर पहुंचाया।

संहिता पाठ–

युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः।
युवं वंदनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः॥८॥

पद पाठ–

युवं। विप्रस्य। जरणां। उपऽईयुषः।
पुनरिति। कलेः। अकृणुतं। युवत्। वयः।
युवं। वंदनं। ऋश्यऽदात्। उत्। ऊपथुः। युवं।
सद्यः। विश्पलां। एतवे। कृथः॥८॥

सायण भाष्य-

हे अश्विनौ युवं युवां विप्रस्य मेधवनो जरणां जरामुपेयुष उपगतवतः कलैः कलिनामधेयस्यर्षेर्वयः पुनरपि युवद्युवत्वयुक्तमकृणुतं। अकुरुतं। तथा च निगमांतरं। कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः। ऋ.१.११२.१५। इति। किंच युवं युवां वंदनं जायावियोगसंतापेन कूपपतितं वंदनाख्यमृषि-मृश्यदात्कूपादुदूपथुः। उदैरयतं। तथा निगमांतरं। उद्वंदनमैरयतं स्वर्दृशे। ऋ.१.११२.५। इति। किंच युवं युवां विश्पलां। खेलस्य राज्ञः सेनायां योद्ध्री विश्पला नाम काचित् स्त्री। तां संग्रामे शत्रुभिश्छिन्नजंघां सद्यस्तदैवैतवे गमनाय कृथः। अकुरुतं। तथा च निगमांतरं। चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्यायां। सद्यो जंघामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तं। ऋ. १.११६.१५। इति।

अन्वय-

युवं जरणाम् उपेयुषः विप्रस्य कलेः पुनः युवत् वयः अकृणुतम्। युवं वन्दनम् ऋश्यदात् उत् ऊपथुः युवं विश्पलाम् सद्यः एतवे कृथः।

हिन्दी अनुवाद -

हे अश्विनी देवताओं !(युवं) तुम दोनों ने (जरणाम्) वृद्धावस्था को (उपेयुषः) प्राप्त होने वाले (विप्रस्य) मेधावी विद्वान् (कलेः) कर्मशील और कलि ऋषि को (पुनः) फिर (युवत् वयः) युवा अवस्था का (अकृणुतम्) कर दिया गया है। (युवं) तुम दोनों ने (वन्दनम्) वन्दना करने वाले व्यक्ति को (ऋश्यदात्) व्याधि की आपत्ति से (उत् ऊहथुः) ऊपर बाहर निकाल दिया था और (युवं) तुम दोनों ने (विश्पलां) प्रजा की रक्षा करने वाली रानी को (सद्यः) तत्काल ही (एतवे) चलने के लिये गति करने में (कृथः) समर्थ कर दिया था।

भावार्थ-

इस मन्त्र में चिकित्सक की सामर्थ्य और योग्यता का संकेत किया गया हे। वह वृद्धावस्था को प्राप्त मेधावी मनुष्य को पुनः युवा बना सकता है। भक्त को रोग से मुक्त कर सकता है और चलने में असमर्थ व्यक्ति को चलने योग्य बना सकता है।

सायण ने यहां घटनाओं का संकेत किया है कि अश्विनी देवताओं ने कलि नामक विप्र को पुनः युवा बना दिया था। पत्नी के वियोग में कुएं में गिरे वन्दन नामक ऋषि को बाहर निकाल दिया था और विश्पला नाम की रानी की युद्ध में टूटी टांग को जोड़कर चलने योग्य बना दिया था।

संहिता पाठ-

युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वंतं चक्रथुः सप्तवध्रये॥९॥

पद पाठ-

युवं। ह। रेभं। वृषणा। गुहा। हितं।
उत्। ऐरयतं। ममृऽवांसं। अश्विना।
युवं। ऋबीसं। उत। तप्तं। अत्रये।
ओमन्ऽवंतं। चक्रथुः। सप्तऽवध्रये॥९॥

सायण भाष्य-

हे वृषणा वर्षितारावश्विनाश्विनौ युवं युवां गुहा गुहायां हितमसुरैर्निहितं ममृवासं म्रियमाणं रेभं रेभाख्यमृषिमुदैरयतं। उत्तारितवंतौ स्थः। तथा च निगमांतरं। दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्रथितमप्स्वंतः। विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः

-सोममिव स्रुवेण। ऋ.१.११६.२४.। इति। उत किंच युवं युवां तप्तमृबीसमग्निकुंडमत्रयेऽत्रेरर्थायौमन्वंतमवनवंतं चक्रथुः। वृथ्या निशमय्य शीतं कृतवंतौ स्थ इत्यर्थः। तथा च निगमांतरं। हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तं। ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति। ऋ. १.११६.८.। इति। किंच युवां सप्तवध्रयेऽश्वमेधेन राज्ञा केनचिदपराधेन काष्ठमयमंजूषायां निहितस्य सप्तवध्रिनामधेयस्यर्षेरर्थाय चक्रथुः। मंजूषोद्घाटनं कृतवंतौ स्थ इत्यर्थः। तथा च निगमांतरं। वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यंत्या इव। श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुंचतं। ऋ.५.७८.५.। इति॥

अन्वय-

वृषणा अश्विना युवं गुहा हितं ममृवांमं रेभम् उत् ऐरयतम्। युवं सप्तवंध्रये अत्रये उत तप्तम् ऋवीसं ओमन्वन्तं चक्रथुः।

हिन्दी अनुवाद-

(वृषणा) सुरव की वर्षा करने वाले शक्तिशाली (अश्विना) हे अश्विनी देवताओ! (युवम्) तुम दोनों (गुहा) गुप्त स्थानों या शरीर के गुप्त अङ्गों में (हितं) छिपे हुए (ममृवांसम्) प्राणों को त्याग कराने वाले (रेभम्) प्रलाप को रेझ नामक ऋषि को (उदैरयतम्) बाहर निकाल देते हो। (युवम्) तुम दोनों (सप्तबन्ध्रये) रस-रक्त आदि सात धातुओं को शरीर में बांधे रखने के लिये (अत्रये) वाणी की रक्षा के लिये (तप्तं) तप्त (उत) और (ऋबीसम्) जलीय पदार्थों को (ओमन्वन्तं) रक्षात्मक शक्ति से युक्त (चक्रथुः) करते हो।

भावार्थ-

इस मन्त्र में अश्विनी देवों से प्रार्थना की गई है कि वे मनुष्य को मष्तिष्क रोगों से मुक्त करें। जब मनुष्य के मस्तिष्क की गुहा में रोग छिपा हो और वह मृत्यु की अवस्था में पहुंच जाये तब उसके शरीर की रस-रक्त

आदि सातों धातुओं को बांधे रखने के लिये और वाणी की रक्षा के लिये रक्षात्मक शक्ति बढ़ानी चाहिये।

संहिता पाठ–

युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वंनवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनं।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवं॥१०॥

पद पाठ–

युवं। श्वेतं। पेदवें। अश्विना। अश्वं।
नवऽभिः। वाजैः। नवती। च। वाजिनं।
चर्कृत्यं। ददथुः। द्रवयत्ऽसखं। भगं।
न। नृऽभ्यः। हव्यं। मयःऽभुवं॥१०॥

सायण भाष्य–

हे अश्विनाश्विनौ युवं युवां पेदवे पेदुनामधेयाय राज्ञे श्वेतं श्वेतवर्णं वाजिनं बलिनं नवभिर्नवतीनवत्यश्वैः सहितं चर्कृत्यं संग्रामाणामत्यर्थं कर्तारं शत्रूणां वा द्रवयत्सखं शत्रुसखीनां द्रावयितारं हव्यं ह्वातव्यं मयोभुवं सुखस्य भावयितारमश्वं नृभ्यो मनुष्येभ्यो भगं न भजनीयं धनमिव ददथुः। प्रायच्छत॥

अन्वय–

अश्विना युवं पेदवे नवभिः नवती वाजैः वजिनं चर्कृत्यं द्रवयत्सखं हव्यं मयोभुवं श्वेतम् अश्वं नृभ्यः भगं न ददथुः।

हिन्दी अनुवाद –

(अश्विना) हे अश्विनी देवताओ! (युवम्) तुम दोनों (पेदवे) इस कर्मठ तथा प्रजापालक राजा के लिये (नवभिः नवती) नब्बे और नौ अर्थात्

निन्यानब्बे (वाजैः) शक्तियों से सम्पन्न (वाजिनं) बलशाली (चर्कृत्यं) चलने में समर्थ (द्रवयत्सखं) शारीरिक शक्तियों को प्रदान करने में समर्थ (हव्यं) हवि के योग्य (भयोमुवम्) कल्याण करने वाले (श्वेतं) श्वेत वर्ण के (अश्वम्) शीघ्र गति वाले अश्व को (नृभ्यः) मनुष्यों के लिये (भगं न) ऐश्वर्य के समान (ददथुः) प्रदान करते हों।

भावार्थ–

अश्विनी देवता की कृपा से प्रजा जनों को उत्तम अश्व प्रदान किये जाते हैं। जो राजाओं की सवारी के योग्य होते हैं। ९९ गुणों तथा शक्तियों से युक्त होते हैं, कल्याणकारी होते हैं, श्वेत वर्ण के होते हैं और प्रजाजनों के ऐश्वर्य के तुल्य होते हैं।

संहिता पाठ–

न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयं।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह॥११॥

पद पाठ–

न। तं। राजानौ। अदिते। कुतः। चन। न।
अंहः। अश्नोति। दुऽइतं। नकिः। भयं।
यं। अश्विना। सुऽहवा। रुद्रवर्तनी इति रुद्रऽवर्तनी।
पुरःऽरथं। कृणुथः। पत्न्या। सह॥११॥

सायण भाष्य–

हे राजानावीश्वरावदिते अदीनौ सुहवौ स्वाह्वानौ रुद्रवर्तनी स्तोत्रयुक्तमार्गौ हे अश्विनाश्विनौ युवां य जनं पुरोरथमग्रतोरथं पत्न्या सह

स्वयंवरे कृणुथः तं जनं कुतश्चन कुतोऽप्यंहः पापं नाश्नोति। न व्याप्नोति। दुरितं दुर्गतिरपि नाश्नोति। नकिर्न च भयं संसारभयं न प्राप्नोति॥

अन्वय-

राजानौ अदिते सुहवौ रुद्रवर्तनी अश्विना युवं पत्न्या सह यं पुरोरथं कृणुथः तं कुतश्चन अंहः दुरितं न अश्नोति न किः भयम्।

हिन्दी अनुवाद-

(राजानौ) दीप्तिशाली होते हुये (अदिते) दीनता से रहित हुये (सुहयौ) अच्छी प्रकार से आह्वान किये जाते हुए (रुद्रवर्तनी) रुद्रों के मार्ग पर चलने वाले (अश्विना) हे अश्विनी देवताओ!(युवं) तुम दोनों (पत्न्या सह) पालक शक्ति के साथ (यं) जिस स्तोता को (पुरोरथं) उत्तम रथ अर्थात् शरीर वाला (कृणुथः) कर देते हो, (तं) उस व्यक्ति को (कुतश्चन) कहीं से भी (अंहः) पाप या शारीरिक दोष और (दुरितं) दुष्परिणाम या व्याधि (न) नहीं (अश्नोति) व्याप्त होता है, (न किः) और नाहीं (भयम्) किसी का भय होता है।

भावार्थ-

दीप्तिशाली अश्विनी देवता दीनता से रहित है। अच्छी प्रकार से पुकारे जाने पर वे स्तोता को वे अपनी पत्नी के साथ सब प्रकार का आरोग्य प्रदान करते हैं। उसको किसी प्रकार का रोग या पाप व्याप्त नहीं करता है और वह सभी भयों से मुक्त रहता है।

संहिता पाठ-

आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः॥१२॥

पद पाठ–

आ । तेन। यातं। मनसः। जवीयसा।

रथं। यं। वां। ऋभवः। चक्रुः। अश्विना।

यस्य। योगे। दुहिता। जायते। दिवः।

उभे इति। अहनी इति। सुदिने इति सुऽदिने। विवस्वतः॥१२॥

सायण भाष्य–

हे अश्विनाश्विनौ वां युवयोर्यं रथमृभवश्चक्रुः अकार्षुः यस्य रथस्य योगे संबंधे सति दिवो दुहितोषा जायते प्रादुर्भवति यस्य च यीगे विवस्वतो भास्करादुभे अहनी अहोरात्रे सुदिने शोभने जायेते तेन रथेन मनसोऽपि जवीयसा वेगवत्तरेणा यातं। युवामागच्छतं॥

अन्वय–

अश्विना मनसः जवीयसा तेन यातम्, यं वां रथम् ऋभवः चक्रुः। यस्य योगे दिवः दुहिता जायते विवस्वतः उभे अहनी सुदिने।

हिन्दी अनुवाद–

(अश्विना) हे अश्विनी देवताओ (मनसः) मन से भी अधिक (जवीयसा) वेगशाली (तेन) उस प्रकाश रूप रथ से (यातं) तुम चलते हो, (यं) जिस (वां) आपके (रथं) रथ को (ऋभवः) प्रकाश की किरणें (चक्रुः) संचालित करती हैं। (यस्य) जिस रथ के (योगे) सम्बन्ध के होने पर (दिवः) सूर्य की अर्थात् दिन की (दुहिता) पुत्री उषा (जायते) प्रादुर्भूत होती है। और (विनस्वत) सूर्य से (उभे) दोनों ही (अहनी) दिन और रात (सुदिने) शोभन कल्याणकारी होते हैं।

भावार्थ-

अश्विनी देवताओं का संचालन भी प्रकाश के रथ से होता है। प्रातःकाल सूर्य की पुत्री रूप उषा का प्रादुर्भाव होता है और यह दिन और रात शुभ कल्याणकारी होते हैं।

संहिता पाठ-

ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना।
वृकस्य चिद्वर्तिकामंतरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसितामसुंचतं॥१३॥

पद पाठ-

ता। वर्तिः। यातं। जयुषा। वि। पर्वतं।
अपिन्वतं। शयवे। धेनुं। अश्विना।
वृकस्य। चित्। वर्तिकां। अंतः। आस्यात्।
युवं । शचीभिः। ग्रसितां। अमुंचतं ॥१३॥

सायण भाष्य -

हे अश्विनाश्विनौ ता तौ युवां जयुषा जयशीलेन रथेन पर्वतमद्रिं प्रति वर्तिर्मार्गं वि यातं। विविधं गच्छथः। तथा च निगमांतरं। वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं वृषणा वध्रिमत्याः। ऋ०६.६२.७.। इति। किंच युवां शयवे शयोरर्थाय धेनुमपिन्वतं। निवृत्तप्रसवां वृद्धां गां प्रभूतस्य पयसो दोग्ध्रीं कृतवंतौ स्थ इत्यर्थः। तथा च निगमांतरं। युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय। ऋ० १.११८.८.। इति। किंच युवं युवां वृकस्यांतरनुप्रविष्टां ग्रसितां वृकेण ग्रस्तां वर्तिकां। वर्तिका नाम चटका। तामास्याद्वृकस्य सुखाच्छचीभिः

प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वामुंचतं। अमोचयतं। तथा च निगमांतरं। अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुंचतं वृकस्य। ऋ० १.११७.१६.। इति।

अन्वय –

ता अश्विना जयुषा रथेन पर्वतं वर्ति वियातम्। शयवे धेनुम् अपिन्वतं युवं शमीभिः वृकस्य चित् आस्यात् अन्तः ग्रसितां वर्तिकाम् अमुञ्चतम्।

हिन्दी अनुवाद –

(ता) वे (अश्विना) अश्विनी देवता (जयुषा) विजयशील (रथेन) प्रकाश के रथ से (पर्वतं वर्ति) पर्वत पर जाने वाले मार्ग पर (वियातम्) चले जाते हो। (शयवे) अंतरिक्ष में शयन करने वाले, मेघ के लिये (धेनुम्) वाणी को, मेघों की गर्जना को (अपिन्वनं) पूर्ण करते हुये, भरपूर उत्पन्न करते हुए (युवं) तुम दोनों (शचीभिः) वायु की शक्तियों से (वृकस्य चित्) भेड़िये के समान मेघों के (आस्यात्) मुख से (अन्तः) भीतर (ग्रसिताम्) ग्रसी गई, निगली गई (वर्तिकां) वर्तिका रूप जलधारा को (अमुञ्चतम्) मुक्त करते हो।

भावार्थ–

अपने प्रकाश रूप रथ से अश्विनी देवता पर्वतों पर भी यात्रा करते हैं। यहां अन्तरिक्ष में रहने वाले मेघ गर्जना करते हैं और उनसे जलधाराएं मुक्त होती हैं।

संहिता पाठ–

एत वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथं।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः॥१४॥

पद पाठ–

एतं। वां। स्तोमं। अश्विनौ। अकर्म।

अतंक्षाम। भृगवः। न। रथं।

नि। अमृक्षाम। योषणां। न। मर्ये।

नित्यं। न। सूनुं। तनयं। दधानाः॥१४॥

सायण भाष्य।

हे अश्विनाश्विनौ ततो वां युवयोरेतं यथोक्तं स्तोत्रमकर्म। अकुर्म। तदेवाह। भृगवो न भृगव इव रथमतक्षाम। वयं स्तोत्रं संस्कृतवंतः। कर्मयोगादृभवो भृगव उच्यंते। अथवा रथकारा भृगवः। किंच वयं नित्यं शाश्वतं तनयं यागादीनां कर्मणां तनितारं सूनुं नीरसं पुत्रमिव स्तोमं दधाना धारयंतो मर्ये मनुष्ये न्यमृक्षाम। युवयोः स्तुतिं नितरां संस्कृतवंतः। तत्र दृष्टांतः। योषणां न। यथा जायां तद्वदित्यर्थः॥

अन्वय–

अश्विनो भृगवः रथं न अकर्म एतं स्तोमम् वाम् न मर्ये योषणाम् नि अमृक्षाम। न नित्यं तनयं सूनुम् दधानाः।

हिन्दी अनुवाद–

(अश्विनौ) हे अश्विनी देवताओ ! (भृगवः) भृगु अर्थात् रथ बनाने वाले (रथं न) जिस प्रकार रथ को (अकर्म) बनाते हैं, उसी प्रकार (एतं) इस (स्तोमम्) स्तुति वचन को हम (वाम्) आप दोनों के लिये (अतक्षाम) उच्चारित करते हैं। (न मर्ये) जिस प्रकार मनुष्य को (योषणाम्) स्त्रियों को सौंपा जाता है, उसी प्रकार आपके लिये हम उनको (नि अमृक्षाम) सौंप देते हैं। और (न) जिस प्रकार से (नित्यम्) सर्वदा (तनयं) कुल का विस्तार करने

वाले (सूनुम्) पुत्र को (दधानाः) धारण करते हुये माता-पिता उसका पालन करते हैं, उसी प्रकार आप भी हमारा पालन करें।

भावार्थ-

अश्विनी देवता उसी प्रकार प्रशंसा और स्तुति के पात्र हैं, जिस प्रकार कोई कुशल रथकार रथ को बनाता है, जिस प्रकार उत्तम स्त्रियों को गुणी पुरुष सौंपे जाते हैं और वे उनकी देखभाल करती हैं, पिता अपने पुत्रों की देखभाल और पालन-पोषण करते हैं, उसी प्रकार अश्विनी देवता सबकी देखभाल करते हैं।

****

१३. घोषा काक्षीवती (२)

ऋग्वेद दशम मण्डल सूक्त ४०, मन्त्र १-१४

ऋषि-घोषा काक्षीवती

देवता-अश्विनौ

छन्दः - जगती

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका-

रथं यांतमिति चतुर्दशर्चमेकादशं सूक्तं। काक्षीवत्या घोषाया आर्षं। जागतमाश्विनं। रथं यांतमित्यनु क्रांतं। प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोरुक्तो विनियोगः।

संहिता पाठ-

रथं यांतं कुह को ह वा नरा प्रति द्युमंतं सुवितायं भूषति।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे वस्तोर्वस्तोवहमानं धिया शमि॥१॥

पद पाठ-

रथं। यांतं। कुहं। कः। ह। वां। नरा।
प्रतिं। द्युऽमंतं। सुवितायं। भूषति।
प्रातःऽयावानं। विऽभ्वं। विशेऽविशे।
वस्तोःऽवस्तोः। वहमानं। धिया। शमि॥१॥

सायण भाष्य-

हे नरा कर्मणा नेतारावश्विनौ वां युवयोः संबंधिनः द्युमंतं दीप्तिमंतं

प्रातर्यावाणं यज्ञं प्रति प्रातःकाले गंतारं विभ्वं विभुं व्यापिनिं विशे विशे सर्वेषु मनुष्येषु वस्तोर्वस्तोरन्वहं वहमानं धनं प्रापयंतं यांतं गच्छतं रथं कस्मिन्देशे को ह कः खलु यजमानः शमि यज्ञरूपे कर्मणि धिया स्तुतिरूपेण कर्मणा सुवितायाभ्युदयार्थं प्रति भूषति। अलंकरोति। कस्मिन्देशे यज्ञे कोऽन्यो यजमानो युवां स्तुतिभिर्हविर्भिश्च पूजितवान् येनास्मद्यज्ञं प्रति विलंबेनागतवंतौ स्थ इत्यभिप्रायः।

अन्वय–

नरा वां द्युमन्तं प्रातर्यावाणं शमि प्रति यान्तं विशे विशे वस्तोः वस्तो, शमि वहमानं विम्बं रथं कुह कः धिया सुविताय प्रतिभूषति।

हिन्दी अनुवाद –

(नरा) नेतृत्व करने वाले हे अश्विनी देवताओ ! (वां) तुम्हारे (घुमन्तं) दीप्तिमान् (प्रातर्यावाणं) प्रातः होने पर जाने वाले (शमि प्रति) यज्ञ के प्रति (यान्तं) जाते हुए (विशे विशे) पूजा के प्रत्येक व्यक्ति के लिये (वस्तोः वस्तोः) दिन-दिन, प्रतिदिन (वहमानं) ऐश्वर्य का वहन करने वाले (विम्बं) व्याप्त होने वाले महान् (रथं) रथ का (कुह) कहां (कः) कौन व्यक्ति (सुविताय) सुख-शांति तथा उन्नति के लिये (धिया) बुद्धि और कर्म से (प्रतिभूषति) अलंकृत कर सकता है।

भावार्थ–

अश्विनी देवताओं का रथ प्रातःकाल घूमता है। वह सबको ऐश्वर्य और उपदेश देता है। प्रतिदिन प्रत्येक प्रजाजन को यह उपदेश प्राप्त होता है। अतः प्रतिदिन प्रातःकाल यज्ञ करना चाहिए और स्तोत्र वचनों से इन देवताओं की स्तुति का गान करना चाहिए।

संहिता पाठ–

कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ॥२॥

पद पाठ–

कुह। स्वित्। दोषा। कुह। वस्तोः। अश्विना।
कुह। अभिऽपित्वं। करतः। कुह। ऊषतुः।
कः। वां। शयुऽत्रा। विधवाऽइव। देवरं।
मर्यं। न। योषा। कृणुते। सधऽस्थे। आ॥२॥

सायण भाष्य–

हे अश्विनाश्विनौ कुह स्वित् क्व चिद्दोषा रात्रि भवथ इति शेषः। कुह वस्तोः क्व वा दिवा भवथः कुह क्व वाभिपित्वमभिप्राप्तिं करतः। कुरुथः। कुह क्व वोषथुः। वसथः किंच वां युवां को यजमानः सधस्थे सहस्थाने वेद्याख्य आ कृणुते। आकुरुते। परिचरणार्थमात्माभिमुखीकरोति। तत्र दृष्टांतौ दर्शयति। शयुत्रा शयने विधवेव यथा मृतभर्तृका नारी देवरं भर्तृभ्रातरमभिमुखीकरोति। मर्यं न यथा च सर्वं मनुष्यं योषा सर्वा नारी संभोगकालेऽभिमुखीकरोति तद्वदित्यर्थः। तथा च यास्कः। क्व स्विद्रात्रौ भवथः क्व दिवा क्वाभिप्राप्तिं कुरुथः क्व वसथः को वां शयने विधवेव देवरं देवरः कस्माद्द्वितीयो वर उच्यते विधवा विधातृका भवति विधवनाद्वा विधावनाद्वेति चर्मशिरा अपि वा धव इति मनुष्यनाम तद्वियोगाद्विधवा देवरो दीव्यतिकर्मा मर्यो मनुष्यो मरणधर्मा योषा यौतेराकुरुते सधस्थाने। नि० ३.१५। इति।

अन्वय–

अश्विना दोषा कुह स्वित् वस्तोः कुह अभिपित्वम् कुह करतः

कुह ऊषतुः। शयुत्रा देवरम् विधवा इव सधस्थे मर्यं योषा न वाम् आकृणुते।

हिन्दी अनुवाद –

(अश्विना) हे अश्विनी देवताओ! (दोषा) रात्रियों भर (कुह स्वित्) तुम कहां रहते हो और (वस्तोः) दिन भर (कुह स्वित्) तुम कहां रहते हो। (अभिपित्वम्) तुम्हारा आगमन होने पर तुम (कुह) कहां पर (ऊषतुः) निवास करते हो। (शयुत्रा) शयन करते में (देवरम्) देवर के पास (विधवा इव) विधवा के समान (सधस्थे) साथ रहने के घर में (योषा) पत्नी (मर्यम् इम) पति पुरुष के समान आन दोनों का सम्मान (आकृणुते) आगे आकर करता है।

भावार्थ–

इस मन्त्र में स्त्री–पुरुष के परस्पर व्यवहार करने, साथ रहने, गृहस्थ धर्म का पालन करने, विधवा के देवर के साथ नियोग करने आदि व्यवहारों का निर्वाह करने का निर्देश किया गया है।

संहिता पाठ–

प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहं।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः॥३॥

पद पाठ–

प्रातः। जरेथे इति। जरणाऽइव। कापया।
वस्तोःऽवस्तोः। यजता। गच्छथः। गृहं।
कस्य। ध्वस्रा। भवथः। कस्य। वा। नरा।
राजपुत्राऽइव। सवना। अव। गच्छथः॥३॥

सायण भाष्य–

हे नरा नेतारावश्विनो युवां प्रातः प्रातःकाले जरेथे। स्तोतृभिः स्तूयेथे। तत्र दृष्टांतः। जरणेव यथा जरणावेश्वर्येण वृद्धौ राजानौ कापया। प्रातःप्रबोधकस्य वंदिनो वाणी कापा। तया स्तूयेते। तद्वदित्यर्थः। किंच वस्तोर्वस्तोरन्वहं यजता यष्टव्यौ युवा गृहं यजमानस्य मंदिरं गच्छथः। प्राप्नुथः। तौ युवां कस्य यजमानसंबंधिनो दोषस्य ध्वस्रा ध्वंसकौ विनाशयितारौ भवथः। कस्य यजमानस्य सवना सवनानि राजपुत्रेव राजकुमाराविव युवामव गच्छथः। प्राप्नुथः।

अन्वय।

नरा कापया जरणा इव प्रातः जरेथे। वस्तोःवस्तोः यजता गृहं गच्छथ। कस्य ध्वस्रा भवथः वा राजपुत्रा इव कस्य सवना अवगच्छथ।

हिन्दी अनुवाद–

(नरा) नेतृत्व करने वाले हे अश्विनी देवताओ! (कापया) स्तुति का गान करके (जरणा इव) स्तुति किये जाने वाले वृद्ध जनों के समान (प्रातः) प्रातः समय में (जरेथे) किसके द्वारा स्तुति किये जाते हो? (वस्तोः वस्तोः) प्रतिदिन (यजता) यजन के योग्य आप (गृहम्) यजमान के घर (गच्छथः) आप जाते हो। (कस्य) किस यजमान के किस दोष से उसके (ध्वस्रा) ध्वंसक, विनाश करने वाले (भवथः) आप होते हो। (वा) अथवा (राजपुत्रा इव) राजकुमारों के समान (कस्य) किसके (सवना) यज्ञ में (अव गच्छथ) सम्मिलित होने के लिए तुम जाते हो।

भावार्थ–

स्तुति करने योग्य वृद्धजनों की प्रातःकाल ही स्तुति पाठक स्तुति

करते हैं। यजन करने योग्य यजमानों के घर लोग प्रतिदिन जाते हैं। राजकुमारों के समान वे उनके यज्ञों में सम्मिलित होते हैं।

संहिता पाठ–

युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती॥४॥

पद पाठ–

युवां। मृगाऽइव। वारणा। मृगण्यवः।
दोषा। वस्तोः। हविषा। नि। ह्वयामहे।
युवं। होत्रां। ऋतुऽथा। जुह्वते। नरा। इषं।
जनाय। वहथः। शुभः। पती इति ॥४॥

सायण भाष्य–

हे अश्विनौ युवां वारणा वारणौ मृगेव यथा शार्दूलौ मृगण्यवो मृगयवः तद्वद्वयं दोषा रात्रौ वस्तोरहनि हविषा नि ह्वयामहे। नियमेन ह्वयामः। किंच हे नरा नेतारावश्विनौ युवं युवामृतुथा काले काले होत्रामाहुतिं जुह्वते। जुह्वति। यजमाना इति शेषः। किंच युवां शुभः शुभस्य वृष्टयुदकस्य पती स्वामिनौ संतौ जनाय जनार्थमिषमन्नं वहथः प्रापयथः।

अन्वय–

मृगण्यवः वारणा मृगा इव युवा दोषा वस्तोः हविषा नि ह्वयामहे। नरा युवं ऋतुथा होत्रां जुह्वते। शुभस्पती जनाय इषं वहथः।

हिन्दी अनुवाद–

(मृगण्यवः) शिकारी लोग (वारणा मृगा इव) सिंह आदि को खाने

आदि का लालच देकर बुलाते हैं, उसी प्रकार (युवां इव) हे अश्विनी देवताओ आपका (दोषा) रात्रियों और (एस्तोः) दिनों में (हविषा) हवियों द्वारा (नि ह्वयामहे) हम आहवान करते हैं। आप (ऋतुथा) प्रत्येक ऋतु के अनुसार (होत्राम्) आहुति को भी (जुह्वते) ग्रहण करते हैं। (शुभस्पती) कृषि के जल के स्वामी आप (जनाय) सब लोगों के लिये (इषम्) अन्न को (वहथः) वहन करते हो, प्राप्त कराते हो।

भावार्थ–

रात दिन यजमान गण आहुति अर्पित करके अश्विनी देवताओं का आवाहन करते हैं। वे वृष्टि के जल के स्वामी हैं। वृष्टि होने पर ही अन्न होता है। इस प्रकार ये देवता लोगों को अन्न प्राप्त कराते हैं।

संहिता पाठ–

युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते॥५॥

पद पाठ–

युवां। ह। घोषा। परि। अश्विना। यती।
राज्ञः। ऊचे। दुहिता। पृच्छे। वां। नरा।
भूतं। मे। अह्ने। उत। भूतं। अक्तवे।
अश्वऽवते। रथिने। शक्तं। अर्वते॥५॥

सायण भाष्य–

हे नरा नेतारावश्विनौ युवां खलु परि परितो यती गच्छंती राज्ञो दीप्तस्य कक्षीवतो दुहिता पुत्री घोषा घोषाख्याहमूचे। संनिहितेभ्यो वृद्धेभ्य

उक्तवत्यस्मि। किंच वां युवां पृच्छे। वृद्धान्संनिहितान् कीदृशावश्विनाविति पृच्छामि। तथा सति मे ममाह्ने दिवसाय दिवसनिर्वर्त्यकर्मणे भूतं। भवतं उतापि चाक्तवे रात्र्यै रात्रिनिर्वर्त्यकर्मणे भूतं। भवतं तथाश्ववतेऽश्वयुक्ताय रथिने रथवते चार्वते भ्रातृव्याय शक्तं। निरसने शक्तौ भवतं।

अन्वय–

नरा अश्विना परि यती राज्ञः दुहिता घोषां श्रुवाम् ऊचे पृच्छे मे अह्ने भूतम् उत अक्तवे भूतम् अश्वावते रथिमे अर्वते शक्तम्।

हिन्दी अनुवाद–

(नरा) नेतृत्व करने वाले (अश्विना) हे अश्विनी देवताओ! (परि यती) चारों ओर घूमती हुई (राज्ञः) राजा, कान्तिमान पुरुष की (दुहिता) पुत्री (घोषा) और विवाहिता काक्षीवती घोषा (वां युवाम्) आप दोनों से (ऊचे) कहती हैं और (पृच्छे) पूछती हैं कि मेरे (अह्ने) दिन की व्यवस्था में (भूतम्) क्या हुआ है, (उत) और (अक्तवे) रात्रि की व्यवस्था के लिये (भूतम्) क्या हुआ है, (अश्वावते) तीव्रगामी, (रथिने) रथ में जुते हुए (अर्वते) शक्तिशाली पुरुष के लिये (शक्तम्) जो मुझको ग्रहण करने में समर्थ हैं, उसके लिये निर्देश करो।

भावार्थ–

इस मन्त्र में नियोग का उल्लेख किया गया है। विवाहिता स्त्री पति का देहावसान हो जाने पर उस पुरुष के पास जाने की अभिलाषा प्रकट करती है जो उसको भोजन आदि दे सके। रात्रि में शयन आदि की व्यवस्था कर सके। शक्तिशाली हो, और सन्तानोत्पत्ति में समर्थ हो।

सँहिता पाठ–

युवं क॒वी ष्ठ॒: पर्यश्विना॒ रथ॒ं विशो॒ न कुत्सो॑ जरि॒तुर्न॑शायथ:।
युवोर्ह॒ मक्षा॒ पर्यश्विना॒ मध्वा॒सा भरत निष्कृतं न योष॑णा॥६॥

पद पाठ–

युवं। क॒वी इति॑। स्थ॒:। परि॑। अ॒श्वि॒ना॒। रथं॑।
विश॑:। न। कुत्स॑:। ज॒रि॒तु:। न॒शा॒य॒थ॒:।
युवो:। ह॒। मक्षा॑। परि॑। अ॒श्वि॒ना॒। मधु॑। आ॒सा।
भ॒र॒त॒। नि॒:ऽकृतं। न। योष॑णां ॥६॥

सायण भाष्य–

हे अश्विनाश्विनौ कवी मेधाविनौ युवं युवां रथं परि ष्ठः। परितो भवथः। अथ जरितुः स्तोतुर्यज्ञं प्रति गमनाय नशायथः। रथं प्राप्नुथः। तत्र दृष्टान्तः। कुत्सो न यथा कुत्सश्चेंद्रश्च सरथमधितिष्ठतः। तथा च मंत्रातरं। यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः। ऋ० ४.१६.११.। इति। किंच हे अश्विनाश्विनौ युवोर्ह युवयोः खलु स्वभूतं मधु मक्षा मक्षिकासास्येन परि भरत। बिभर्ति। तत्र दृष्टांतः। निष्कृतं न यथा निष्कृतं संस्कृतं मधु योषणा नारी। तद्वदित्यर्थः। तथा च मंत्रांतरं। उत स्वा वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिवो हुवन्यति। ऋ० १.११९.९.। इति।

अन्वय–

कवी अश्विना कुत्सः न युवं रथं परि स्थः जरितुः विशः परिनशायथः। युवोः अश्विना मधु मक्षा आसा परिभरत न योषणा निष्कृतम्।

हिन्दी अनुवाद–

(कवी) क्रान्तदर्शी (अश्विना) हे अश्विनी देवताओ (कुत्सः न)

व्रजधारी इन्द्र के समान (युवम्) तुम दोनों (रथम्) रथ पर (परि स्थः) स्थित होते हो। (जरितुः) स्तुति करने वाले की (विशः) प्रजाजनों को (परिनशायथः) प्राप्त होते हो। (युवोः) तुम दोनों के निमित्त से (अश्विना) हे अश्विनी देवताओ (मधु) हवि के रूप में जो मधु दिया जाता है, उसको (मक्षा) मधु मक्खियां (आसा) मुख में (परिभरत) धारण करती है, (योषणा न) जिस प्रकार महिलायें (निःकृतम्) सुसंस्कृत मधु को धारण करती है।

भावार्थ–

क्रांतदर्शी अश्विनी देवता व्रज के समान कठोर हैं और स्तुति पाठकों के पास रथ पर आरूढ़ होकर आते हैं। उनको सुसंस्कृत मधु के रूप में हव्य अर्पित किया जाता है।

संहिता पाठ–

युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिंजारमुशनामुपारथुः।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्न आ चके॥७॥

पद पाठ–

युवं। ह। भुज्युं। युवं। अश्विना। वशं।
युवं। शिंजारं। उशनां। उप। आरथुः।
युवोः। ररावा। परिं। सख्यं। आसते।
युवोः। अहं। अवसा। सुम्नं। आ। चके॥७॥

सायण भाष्य–

हे अश्विनाश्विनौ युवं ह युवां खलु भुज्युं समुद्रमध्ये विपन्ननावं तुग्रपुत्रं भुज्युमुपारथुः। उत्तारयितुमुपगतवंतौ भवथः। किंच युवं युवां वशं

हस्तिबलेन शत्रुभिः पराजयमानं वशनामधेयं राजानं रक्षणायोपारथुः। किंच युवं युवां शिंजारमत्रिमग्निकूटादुत्तारयितुमुशनां कमनीयां स्तुतिं च श्रोतुमुपारथुः। तथा च मंत्रांतरं। अत्रिं शिंजारमश्विना। ऋ० ८.५.२५.। इति। किंच युवोर्युवयोः सख्यं मित्रत्वं ररावा हविषां प्रदाता यजमानो पर्यासते। पर्यास्ते। वचनव्यत्ययः। किंच युवोर्युक्योरवसा रक्षणेनाहं घोषा सुखं सुखमा चके। कामये।।

अन्वय–

अश्विना युवं भुज्युम् उपारथुः युवं वशम्, युवं शिंजारम् उशनां। युवं सख्यं ररावा परिआसते। युवोः अवसा अहम् सुम्नम् आ चके।

हिन्दी अनुवाद–

(अश्विना) हे अश्विनी देवताओ! (युवम्) आप दोनों ने (भुज्युम्) समुद्र के मध्य में विपत्ति में पड़े तुग्र पुत्र भुज्यु को (उपारथुः) पार लगाया था। (युवं वशम्) तुमने शत्रुओं के हाथियों के वश में आये हुए वश नामक राजा को पार लगाया था। (युवं) तुम दोनों ने (शिंजारं) स्तुति करने वाले (उशनां) कमनीय स्तोता को विपत्ति से पार किया था। (युवोः) तुम दोनों की (सख्यम्) मित्रता को (ररावा) पुकारता हुआ मैं (परिआसते) स्थित हो रहा हूं। (युवोः) तुम दोनों के (अवसा) रक्षण पाने से (अहं) मैं (सुम्नम्) सुख की (आ चके) आकांक्षा करता हूं।

भावार्थ–

अश्विनी देवताओं ने समुद्र में भुज्यु की नौका को पार लगाया। उन्होंने युद्ध क्षेत्र में राजा वश को रथ पर आरूढ़ किया था। ये कथायें प्रसिद्ध है। उनसे सब रक्षण पाने की कामना करते हैं।

संहिता पाठ–

युव हं कृशं युवमंश्विना शयुं युवं विधंतं विधवांमुरुष्यथः।
युवं सनिभ्यंः स्तनयंतमश्विनापं व्रजमूंर्णुथः सप्तास्यं॥८॥

पद पाठ–

युवं। ह। कृशं। युवं। अश्विना। शयुं।
युवं। विधंतं। विधवां। उरुष्यथः।
युवं। सनिऽभ्यंः। स्तनयंतं। अश्विना।
अपं। व्रजं। ऊर्णुथः। सप्तऽआस्यं॥८॥

सायण भाष्य–

हे अश्विनाश्विनौ युवं ह युवां खलु कृशं दुर्बलं कृशनामधेयं वोरुष्यथः। रक्षथः। किंच युवं युवां शयुं शयुनामानमृषिमुरुष्यथः। किंच युवं युवां विधंतं परिचरंतं मनुष्यं विधवां चापतिकां वध्रिमतीं योद्धीं स्त्रियं चोरुष्यथः। किंच हे अश्विनाश्वनौ युवं युवां स्तनयंतं शब्दं कुर्वतं सप्तास्यं सर्पणशीलद्वार व्रजं मेघं। व्रजश्चरुरिति मेघनामसु पाठात्। सनिभ्यो हविषां दातृभ्योऽपोर्णुथः। विवृतद्वारं कृतवंतौ स्थ इत्यर्थः।

अन्वय–

अश्विना युवं कृशं ह उरुष्यथः, युवं शयुं, युवं विधन्तं विधवाम्। युवं सनिभ्यः स्तनयन्तम् अश्विना सप्तास्यं व्रजम् अप ऊर्णुथः।

हिन्दी अनुवाद–

(अश्विना) हे अश्विनी देवताओ! (युवं) तुम दोनों (कृशम्) दुर्बल व्यक्ति की (ह) निश्चय से (उरुष्यथः) रक्षा करते हो, (युवम्) तुम दोनों (शयुं) सोते हुये व्यक्तियों की रक्षा करते हो, (युवं) तुम दोनों (विधन्तम्)

सेवा करने वाले की रक्षा करते हो, तुम दोनों (विधवाम्) विधवाओं की रक्षा करते हो। (युवं) तुम दोनों (सनिभ्य:) यज्ञ करने वालों की रक्षा करते हो (स्तनयन्तम्) शब्द करते हुए लोगों की रक्षा करते हो। (अश्विना) हे अश्विनी देवताओ तुम दोनों (सप्तास्यं) सात द्वारों वाले (व्रजं) गौशाला को (अप ऊर्णुथ:) खोल देते हो।

भावार्थ–

अश्विनी देवता अति पराक्रमी, उदार, परोपकारी देवता हैं। वे दुर्बलों, सोते हुओं, सेवा में लगे हुओं और विधवाओं की रक्षा करते हैं। वे यज्ञ करने वालों और देवता को पुकारने वालों की रक्षा करते हैं। वे सात द्वारों वाली गौशाला को खोल देते हैं।

संहिता पाठ–

जनिष्ट योषा पतयत्कनीनको वि चारुहन्वीरुधो दंसना अनु।
आस्मै रीयंते निवनेव सिंधवोऽस्मा अह्ने भवति तत्पतित्वनं।।९।।

पद पाठ–

जनिष्ट। योषा। पतयत्। कनीनक:।
वि। च। अरुहन्। वीरुध:। दंसना:। अनु।
आ। अस्मै। रीयंते। निवनाऽइव। सिंधव:।
अस्मै। अह्ने। भवति। तत्। पतिऽत्वनं।।९।।

सायण भाष्य–

हे अश्विनौ युवयो: प्रसादादियं घोषा योषा स्त्रीगुणोपेता सुभगा जनिष्ट। जाता। अस्या:। समीपे कनीनक: कन्याकाम: पति: पतयत्। पततु।

अस्मै। कनीनकाय युवयोर्दसना अनु वृष्टिलक्षणानि कर्माणि लक्षीकृत्य वीरुध ओषधयो वि चारुहन्। विरोहंतु। प्रादुर्भवंतु। अस्मै कनीनकाय निवनेव प्रवणेनेव सिंधव उदकान्या रीयंते। ता वीरुधोऽभिगच्छंतु। किंचाह्ने केनाप्यहंतव्यायास्मै कनीनकाय तत्संभोगसमर्थं पतित्वनं यौवनं भवति। भवतु॥

अन्वय-

योषा जनिष्ट। कनीनकः पतयत् अस्मै दंसना अनु वीरुधः वि च अरुहन्। च अस्यै सिन्धवः निवना इव आरीयन्ते अह्ने अस्मै तत् पतित्वनम् भवति।

हिन्दी अनुवाद-

(योषा) युवती स्त्री (जनिष्ट) संतान उत्पन्न करती है। (कनीनकः) कन्या की कामना करने वाला युवक (पतयत्) पति के तुल्य आचरण करता हुआ आता है। (अस्यै) इसके लिये (दंसना अनु) देखने के अनुकूल (वीरुधः) वनस्पतियां औषधियां (वि) विशेष रूप से (च अरुहन्) और उगती है। (अस्यै) इसके लिये (सिन्धवः) नदियां (निवना इव) तीव्र गति करती हुई सी (आरीयन्ते) जल को प्रवाहित करती है। (अस्मै अह्ने) इस दिन (तत्) वह (पतित्वनं) पति होने का भाव यौवनावस्या (भवति) होती है।

भावार्थ-

हे अश्विनी देवताओ! आप द्वारा रक्षित युवा स्त्री सन्तान का प्रसव करती है। सन्तान उत्पन्न होकर पत्नी भाव को प्राप्त करती है। प्रकृति में प्रचुर औषधियां उत्पन्न होती हैं। नदियों में प्रचुर जल बहता है और सबमें यौवन अवस्था का भाव उमड़ता है।

संहिता पाठ-

जीवं रुदंति वि मयंते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे॥१०॥

पद पाठ-

जीवं। रुदंति। वि। मयंते। अध्वरे।
दीर्घां। अनु। प्रऽसितिं। दीधियुः। नरः।
वामं। पितृऽभ्यः। ये। इदं। संऽएरिरे।
मयः। पतिऽभ्यः। जनयः। परिऽस्वजे॥१०॥

सायण भाष्य-

हे अश्विनौ युवयोरनुग्रहाद्ये नरः पतयो जायानां जीवं जीवनमुद्दिश्य रुदंति। रोदनेनापि जायानां जीवमेवाशासत इत्यर्थः। ता जाया अध्वरे यज्ञे वि मयंते निवेशयंति च किंच तासु दीर्घां महतीं प्रसितिं भुजयोः प्रबंधनमनु दीधियुः अनुदधति इदं वामं वननीयमपत्यं पितृभ्यः समेरिरे संप्रेरयंति च तैभ्यः पतिभ्यो जनयो जायाः परिष्वजे परिष्वंगार्थ मयः सुखं कुर्वंतीति शेषः॥

अन्वय-

ये नरः जीवं रुदन्ति, अध्वरेवि मयन्ते दीर्घाम् प्रसिंतिं अनुदीधियुः इदं वामं पितृभ्य सम् सरिरे जनयः परिष्वजे पतिभ्यः मयः।

हिन्दी अनुवाद-

हे अश्विनी देवताओ ! (ये नरः) जो सांसारिक मनुष्य हैं वे (जीवं) जीवन, प्राणों के लिए(रुदन्ति) रुदन करते हैं कि वे मरें यही और कष्ट न पावें (अध्वरे) यज्ञ में (विमयन्ते) विशेष रूप से ध्यान लगाते हैं, जिससे कि(दीर्घाम्) लम्बे समय तक(प्रसितिं)प्रबन्धन का (अनुदीधियुः) विचार करते रहें। यह

(वामं) वननीय सुन्दर अपत्य (पितृभ्यः) अपने माता पिताओं को (सम् एरिरे) प्रेरित करते हैं कि (जनयः)मातायें (पतिभ्यः)अपने पतियों को (परिष्वजे) आलिङ्गन करने के लिए (मयः) सुख प्रदान करें।

भावार्थ–

अश्विनी देवताओं से सब मनुष्य जीवन के लिये रोकर प्रार्थना करते हैं कि उनकी अकाल मृत्यु न हो। वे यज्ञ करते हुए विशेष ध्यान करें और लम्बी दीर्घ जीवन की योजनाओं की ओर ध्यान दें। पिताओं के सुन्दर पुत्र हों और मातायें अपने पतियों का आलिङ्गन करके उनको सुख प्रदान करें।

संहिता पाठ–

न तस्य॑ विद्म॒ तदु॒ षु प्र वो॑चत॒ युवा॑ ह॒ यद्यु॒वत्याः॑ क्षेति॒ योनि॑षु।
प्रि॒योस्रि॑यस्य वृ॒ष॒भस्य॑ रे॒तिनो॑ गृ॒हं ग॑मेमाश्विना॒ तदु॑श्मसि॥११॥

पद पाठ–

न। तस्य॑। वि॒द्म॒। तत्। ऊं इति॑। सु। प्र। वो॒च॒त॒।
युवा॑। ह॒। यत्। यु॒व॒त्याः। क्षेति॑। योनि॑षु।
प्रि॒यऽउस्रियस्य। वृ॒ष॒भस्य॑। रे॒तिनः॑।
गृ॒हं। ग॒मे॒म॒। अ॒श्वि॒ना॒। तत्। उ॒श्म॒सि॒ ॥११॥

सायण भाष्य–

हे अश्विनाश्विनौ तस्य तत्सुखं वयं न विद्म। न जानीमः तत्सुखं यूयं सु सुष्ठु प्र वोचत। बहुवचनं पूजार्थ। युवा ह तरुणाः खलु मत्पतिर्युवत्या यौवनान्वित्या मम योनिषु गृहेषु यत्क्षेति निवसतीति। किंच प्रियोस्रियस्य प्रिययुवतेर्वृषभस्य सेक्तृ रेतिनो रेतस्विनो मत्पतेर्गृहं गमेम। गच्छेम। वयं तद्गृहमुश्मसि। कामयामहे॥

अन्वय-

अश्विना यत् युवा युवत्याः योनिषु क्षेति तस्य न विद्म तत् उ सुप्रवोचत। प्रिय उस्रियस्य वृषभस्य रेतिनः गृहं गमेम तत् उश्मसि।

हिन्दी अनुवाद -

(अश्विना) हे अश्विनी देवताओ ! (यत्) जो कि (युवा) कोई युवक पुरुष (युवत्याः)किसी युवती के साथ (योनिषु) उसकी योनियों में गृह में (क्षेति)निवास करता है, हम (तस्य) उसके सम्बन्ध में (न) नहीं (विद्मः) जानते हैं, (तत्) वह (उ) निश्चय से (सु प्रवोचत) अच्छी प्रकार समझा दीजिये। (प्रिय उस्रियस्य) युवती वधू को प्रेम करने वाले (वृषभस्य) वीर्य की वर्षा करने वाले (रेतिनः) वीर्यशाली पति के (गृहम्) घर में (गमेम) हम जावें, (तत्) उसकी (उश्मसि) हम कामना करती हैं।

भावार्थ-

युवा पति और युवा पत्नी अश्विनी देवताओं से यह कामना करते हैं कि पत्नी की योनि में पति की सन्तति का निवास हो । पत्नी ऐसे पति के घर में निवास करने की कामना करती है। जो भरपूर वीर्यशाली होता है।

संहिता पाठ-

आ वा॑मगन्त्सुम॒तिर्वा॑जिनीवसू न्य॑श्विना हृ॒त्सु कामा॑ अयंसत।

अभू॑तं गो॒पा मि॑थुना शुभस्पती प्रि॒या अ॑र्य॒म्णो दुर्यां॑ अशीमहि॥१२॥

पद पाठ-

आ। वा॒ं। अ॒ग॒न्। सु॒ऽम॒तिः। वा॒जि॒नी॒व॒सू इति॑ वाजिनीऽवसू।

नि। अ॒श्वि॒ना॒। हृ॒त्ऽसु। कामा॑ः। अ॒यं॒स॒त॒।

अभूतं। गोपा। मिथुना। शुभः। पती इति।

प्रियाः। अर्यम्णः। दुर्यान्। अशीमहि॥१२॥

सायण भाष्य–

हे वाजिनीवसू अन्नधनौ शुभस्पती उदकस्य स्वामिनौ हे अश्विनाश्विनौ मिथुना मिथुनौ परस्परं सहितौ वां युवां सुमतिरागन्। आगच्छतु। हृत्स्वस्मदीयेषु हृदयेषु कामा अभिलाषा न्ययंसत। नियम्यंतां। किंच युवां गोपा मम गोपायितारावभूतं। भवतं। अपि च प्रियाः सत्यो वयमर्यम्णः पत्युर्दुर्यान्गृहानशीमहि। प्राप्नुयाम।

अन्वय–

वाजिनीवसू शुभस्पती अश्विना वां सुमतिः आगमन् हत्सु कामाः नि अयंसत। मिथुना गोपा अभूतम्। प्रियाः वयं अर्यम्णः दुर्यान् अशीमहि।

हिन्दी अनुवाद–

(वाजिनीवसू) बल और अन्नों के स्वामी (शुभस्पती) कल्याणकारी वस्तुओं के स्वामी (अश्विनी) हे अश्विनी देवताओ (वां) तुम दोनों में (सुमतिः) उत्तम श्रेष्ठ बुद्धि (आगमन्) आवे। (हत्सु) हमारे हृदयों में (कामाः) कामनाओं को (नि अयंसत) नियन्त्रित रखो। (मिथुना) तुम दोनों मिलकर (गोपा) सबके रक्षा करने वाले (अभूतम्) होओ। (प्रिया) हम तुम्हारे प्रिय होकर (अर्यम्णः) पति के स्वामी के (दुर्यान्) गृहों को (अशीमहि) प्राप्त करें।

भावार्थ–

अश्विनी देवताओं को बल और अन्नों का तभा शुभकारक शक्तियों का स्वामी माना गया है। वे महिलाओं का विशेष कल्याण करने वाले हैं, और उनको वीर्यशाली शक्तिमान् पतियों के घरों को प्राप्त कराते हैं।

संहिता पाठ–

ता मंदसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतं॥१३॥

पद पाठ–

ता। मंदसाना। मनुषः। दुरोणे।
आ। धत्तं। रयिं। सहऽवीरं। वचस्यवे।
कृतं। तीर्थं। सुऽप्रपानं। शुभः। पती इति।
स्थाणुं। पथेऽस्थां। अप। दुःऽमतिं। हतं॥१३॥

सायण भाष्य–

हे अश्विनौ मंदसाना मंदसानौ ता तौ युवां मनुषो मनुष्यस्य मत्पतेर्दुरोणे गृहे वचस्यवे युष्मत्स्तुतिकामायै मह्यं सहवीरं पुत्रादिसहितं रयिं धनमा धत्तं। स्थापयतं। किंच हे अश्विनौ शुभस्पती उदकस्य स्वामिनौ युवां पतिगृहं गच्छंत्या मम तीर्थं पानाय सुप्रमाणं कृतं। कुरुतं। किंच युवां पथेष्ठां मार्गस्थं स्थाणुं वृक्षं दुर्मतिं दुर्बुद्धिं परिपंथिनं चाप हतं। अपगमयतं।

अन्वय–

ता मन्दसाना मनुषः दुरोणे वचस्यवे सहवीरं रयिं आ (अग्निः) धत्तम्। शुभस्पती तीर्थं सुप्रपाणं कृतम्। पथेस्थां स्थाणुं दुर्मतिम् अपहतम्।

हिन्दी अनुवाद–

(ता) वे दोनों आप (मन्दसाना) प्रसन्न होते हुये आप अश्विनी देवताओ! (मनुषः) मनुष्य अर्थात् उत्तम पति के (दुरोणे) घर में (वचस्यवे) आपकी सम्मान कीर्तिरूप मुझ कन्या के लिये (सहवीरं) सन्तान और पराक्रम से युक्त वीर प्रति को और (रयिं) ऐश्वर्य को (आधत्तम्) धारण कराइये। (शुभस्पती)

शुभ पदार्थों के स्वामी हे अश्विनी देवताओ आप (तीर्थं) तीर्थ अर्थात् जल साधनों को (सुप्रयाणम्) उत्तम पीने योग्य (कृतं) कर दीजिये। (पथेस्थां) मार्ग में स्थित (स्थाणुं) ठूंठ को, कठोर बाधा की (दुर्मतिं) दुर्बुद्धि को, कष्ट देने वाली बाधा को (अपहतम्) नष्ट कर दीजिये।

भावार्थ-

अश्विनी देवता किसी युवती कन्या को उत्तम घर पहुंचाते हैं। वह उनके सम्मान की कीर्ति की पात्र है। वे शुभ पदार्थों के स्वामी हैं और उस घर के जल साधनों को ठीक रखते हैं। वे मार्ग में स्थित सब बाधाओं को दूर करते हैं।

संहिता पाठ-

क्व स्विद्द्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहं॥१४॥

पद पाठ-

क्व। स्वित्। अद्य। कतमासु। अश्विना।
विक्षु। दस्रा। मादयेते इति। शुभः। पती इति।
कः। ईं। नि। येमे। कतमस्य। जग्मतुः।
विप्रस्य। वा। यजमानस्य। वा। गृहं ॥१४॥

सायण भाष्य-

हे अश्विनाश्विनौ दस्रा दर्शनीयौ शुभस्पती उदकस्य पती स्वामिनौ भवंतौ क्व स्वित्क्व स्थितौ जनपदेऽद्यास्मिन्नहनि कतमासु कासु विक्षु प्रजासु मादयेते। आत्मानं तर्पयतः। किंच को यजमान ईमेतौ नि येमे। नियच्छति।

किंच भवंतौ कतमस्य विप्रस्य मेधाविनः स्तोतुर्यजमानस्य गृहं वा जग्मतुः। गतवंतौ॥

अन्वय–

अश्विना दस्रा शुभस्पती अद्यः क्व स्वित् कतयासु विक्षु मादयेते। कः ईं नि येमे। कतमस्य विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम्।

हिन्दी अनुवाद–

(अश्विना) हे अश्विनी देवताओ! (दस्रा) दर्शनीय देवताओ, (शुभस्पती) शुभ पदार्थों के स्वामी हे अश्विनी देवताओ (अद्य)आज आप (क्व स्वित्) कहां स्थित हैं? (कतमासु) किन (विक्षु) प्रजाजनों में (मादयेते) आनन्द प्राप्त कर रहे हैं, (कः ईं) कौन आपको (नियेमे) नियन्त्रित कर रहा है, रोक रहा है, (कतमस्य) किस (विप्रस्य) विद्वान् ब्राह्मण (यजमानस्य) यजमान के (गृहम्) घर में आप गये हुए हैं।

भावार्थ–

अश्विनी देवता प्रत्येक स्तोता के पास जाते हैं और उसके कार्य को सम्पन्न करते हैं। उनको देर से आते देख कर स्तोता अधीर होकर पूछता है कि आज आप चले गये हैं, किसके घर में रोक लिये गये हैं और किस विद्वान् यजमान के घर गये हुए हैं। मेरे घर भी आइये।

****

१४. अगस्त्य भगिनी

दशम मण्डल सूक्त ६०, मन्त्र ६

ऋषि-अगस्त्य की स्वसा

देवता- असमाति

छन्दः - पादनिचृदनुष्टुप्

संहिता पाठ-

अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षि रोहिता।
पणीन्न्यक्रमीरभि विश्वान्राजन्नराधसः॥६॥

पद पाठ-

अगस्त्यस्य। नत्ऽभ्यः। सप्ती इति।
युनक्षि। रोहिता।
पणीन्। नि। अक्रमीः।
अभि। विश्वान्। राजन्। अराधसः॥६॥

सायण भाष्य-

अनयागस्त्यस्य स्वसा बंध्वादीनां माता राजानं स्तौति। हे राजन्नसमाते त्वमगस्त्यस्यर्षेनद्भ्यो नन्दयितृभ्यो बंध्वादिभ्यो निमित्तभूतेभ्यस्तेषां धनप्राप्तये सप्ती सर्पणस्वभावावश्वौ रोहिता रोहितवर्णौ युनक्षि। योजय रथे। तथा कृत्वा विश्वान् सर्वानराधसोऽदातृनयजमानान्पणीन्वणिजो लुब्धकान्नि निकृष्टं नितरां

वाभ्यक्रमीः। अभिभव॥

अन्वय–

अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्तीः रोहिता युनक्षि, राजन् विश्वान् पणीन् नराधसः अभि निः अक्रमीः असि।

हिन्दी अनुवाद–

(अगस्त्यस्य) पापों से रहित व्यक्ति के (नद्भ्यः) आनन्ददायक इन्द्रियों के संचालन के लिये (रोहिता) तेजोमयी (सप्तीः) सर्पणशील मानसी शक्तियों को (राजन्) प्रकाशस्वरूप हे परमेश्वर तुम (युनक्षि) संयुक्त करते हो। (विश्वान्) सभी (नराधसः) आराधना न करने वाली भावनाओं को (निः अक्रमीः) दूर निकाल दीजिये।

भावार्थ–

प्रकाशस्वरूप प्रभु जिस प्रकार पापरहित प्राणी की शक्तियों के संचालन के लिये उसके मानस सर्पणशील तेजोस्वी वृत्तियों को संयुक्त करते हैं, उसी प्रकार संसार में आसक्ति पैदा करने वाली और आराधना से रहित भावनाओं को दूर निकाल देते हैं।

****

१५. अदिति दाक्षायणी

ऋग्वेद दशम मण्डल सूक्त ७२, मन्त्र १-९

ऋषि-वृहस्पति या दक्ष की पुत्री अदिति

देवता- बृहस्पति

छन्दः - अनुष्टुप्

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका-

तत्र देवानामिति नवर्चमनुवाकापेक्षया चतुर्थं सूक्तं। आनुष्टुभं देवदेवत्यं। लोकनाम्नः पुत्रो वृहस्पतिरांगिरस एव वा बृहस्पतिर्ऋषिः। अथवा दक्षस्य दुहितादितिर्ऋषिः। तथा चानुक्रांतं। देवानां नव लोक्यो वा बृहस्पतिर्दाक्षायण्यदितिर्वा देवमानुष्टुमिति। गतः सूक्तविनियोगः।

संहिता पाठ-

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे॥१॥

पद पाठ-

देवानां। नु। वयं। जाना। प्र। वोचाम। विपन्यया।
उक्थेषु। शस्यमानेषु। यः। पश्यात्। उत्ऽतरे। युगे॥१॥

सायण भाष्य-

अदितिर्दाक्षायण्यनेन सूक्तेन स्वयं यथादित्यानजनयत्तद्ब्रवीति। बृहस्पत्यृषिपक्षे स ऋषिरदितेः सकाशादादित्योत्पत्तिप्रकारमाह। वयं

देवानामादित्यानां जाना जन्मानि प्र वोचाम। प्रकथयाम। विपन्यया विस्पष्टया वाचा। वयमिति वोचामेति चोभयत्र पूजार्थं बहुवचनं। अथैकवदाह। यो देवानां गणः पूर्वे युग उत्पन्नोऽप्युक्थेषु शस्यमानेषु यागे शस्त्रेष्वनुष्ठीयमानेषूत्तरे युगे वर्तमानं स्तुवंतं स्तोतारं पश्यात् पश्यति। अनेकेष्वपि युगेषु गतेषु कर्मसु स्तूयमानो वर्तत इत्यर्थः।

अन्वय–

वयं नु देवानां जाना विपन्यया प्रवोचाम। उक्थेषु शस्यमानेषु। यः उत्तरे युगे पश्यात्।

हिन्दी अनुवाद–

अदिति दाक्षायणी, जो देवताओं की माता है, कहती है–(वयम्) हम (तु) तो (देवानां) देवताओं के, दिव्य शक्तियों के (जाना) जन्मों, उत्पत्ति के प्रकारों को (विपन्यया) विशेष व्युत्पत्ति शाली वाणी से (प्रवोचाम्) प्रवचन करते हैं,(यः) जो (उक्थेषु) वेदानुकूल ज्ञानपूर्ण स्तोत्रों के (शस्यमानेषु) गान किये जाने पर (उत्तरे युगे) सृष्टि की रचना के पश्चात् के समय में (पश्यात्) देखे जाते हैं।

भावार्थ–

सृष्टि उत्पत्ति के पश्चात् भी उत्तर युग में दिव्य शक्तियों का जन्म होता रहता है। देवताओं की माता अदिति इन दिव्य शक्तियों, देवताओं के जन्म को भलीप्रकार जानती हैं। शास्त्रों में वैदिक स्तोत्रों में इनका गान किया जाता है।

संहिता पाठ–

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मारं इवाधमत्।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत॥२॥

पद पाठ–

ब्रह्मणः। पतिः। एता। सं। कर्मारऽइव। अधमत्।
देवानां। पूर्व्ये। युगे। असतः। सत्। अजायत॥२॥

सायण भाष्य–

ब्रह्मणोऽन्नस्य पतिरदितिरेतैतानि देवानां जन्मानि कर्मार इव स यथा भस्त्रयाग्निमुपधमति प्रज्वलनार्थमेवं समधमत्। उदपादयदित्यर्थः। देवानां पूर्व्ये युगे। आदिसृष्टावित्यर्थः। तेषामुपादानकारणादसतोनामरूपवर्जितत्वे-नासत्समानाद्ब्रह्मण: सकाशात्सन्नामरूपविशिष्टं देवादिकमजायत। प्रादुरभूत। असद्वा इदमग्र आसीत्ततो वै सदजायत। तै०उ० २.७.। इति हि श्रुतिः। न सदात्मकस्य प्रपंचस्यासत्कारणत्वं युक्तमिति वाच्यं छंदोगैः कथमसतः सज्जायेतेत्यमत्कारणत्वमाक्षिप्य सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदित्यवधारितत्वात्। छां०उ० ६.२.२.। तर्ह्यसत्कारणप्रतिपादकवाक्यानां का गतिरिति चेत् तेषामव्याकृतत्वाभिप्रायत्वात् तद्वेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्। शत०१४.२.१५.। इति श्रुतेः। यद्येवं तर्ह्यदितेः सकाशात्कथं देवाद्युत्पत्तिः। वायोरग्निरित्यादिवत् अधिष्ठानसकाशादुत्पत्तेः। यद्वा। देवानां कारणभूतं सदसतो ब्रह्मणः सकाशादुत्पन्नमिति योजनादुक्तन्यायोऽस्मिन्पक्षेऽपि समान एव॥

अन्वय–

ब्रह्मणस्पतिः एता कर्मार इव सम् अधमत्। देवानाम् पूर्व्ये युगे असतः सत् अजायत।

हिन्दी अनुवाद–

(ब्रह्मस्पतिः) ब्रह्माण्ड और प्रकृति के स्वामी परमेश्वर ने (एता) इन दिव्य परमाणुओं को (कर्मार इव) कारीगरों के समान (अधमत्) भट्टी में

रचना की। (देवानां) दिव्य शक्तियों, देवताओं के (पूर्व्ये युगे) सृष्टि रचना के प्रारम्भिक युग में (असतः) अव्यक्त प्रकृति से (सत्) व्यक्त प्रकृति की (अजायत) उत्पत्ति हुई थी।

भावार्थ–

सर्वशक्तिमान ब्रह्माण्ड का रचयिता परमेश्वर स्वयं कारीगर के समान दिव्य पदार्थों का प्रजनन करता रहता है। सृष्टि रचना की प्रक्रिया में प्रथम अव्यक्त प्रकृति होती है और उस अव्यक्त प्रकृति से व्यक्त प्रकृति की उत्पत्ति होती है।

संहिता पाठ–

देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत।
तदाशा अन्वजायंत तदुत्तानपदस्परि॥३॥

पद पाठ–

देवानां। युगे। प्रथमे। असतः। सत्। अजायत।
तत्। आशाः। अनु। अजायंत। तत्। उत्तानऽपदः। परि॥३॥

सायण भाष्य–

पूर्वार्धमुक्तं। तदन्वाशा दिशोऽजायंत। तत्परि। तदन्वित्यर्थः। उत्तानपदः। उत्तानमूर्ध्वतानं पद्यंत इत्युत्तानपदो वृक्षाः। तेऽजायंत। प्रादुरभवन्।

अन्वय–

देवानां प्रथमे युगे असतः सत् अजायत। तत् आशाः अन्वजायन्त। तत् परि उत्तानपदः।

हिन्दी अनुवाद–

(देवानां) दिव्य पदार्थों के, देवताओं के (प्रथमे युगे) प्रथम युग में,

सृष्टि रचना के प्रारम्भिक युग में (असतः) उस असत् से, अव्यक्त प्रकृति से (सत्) व्यक्ति प्रकृति की (अजायत) उत्पत्ति हुई। (तत्) उससे (आशा) दिशायें (अनु अजायन्त) उसके बाद उत्पन्न हुई थी। (तत् परि) और उसके पश्चात् (उत्तानपदः) उत्कृष्ट ऊर्ध्व के सूर्य आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ–

सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया में सबसे पहले अव्यक्त प्रकृति का उद्भव होता है। उस अव्यक्त प्रकृति से व्यक्त प्रकृति की उत्पत्ति होती है। उसके पश्चात् उससे आकाश तथा दिशाओं का उद्भव होता है और उसके बाद ऊर्ध्व को गति करने वाले किरणें फैंकने वाले सूर्य आदि ज्योतिष्मान् पदार्थों का उद्भव होता है।

संहिता पाठ–

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायंत।

अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि॥४॥

पद पाठ–

भूः। जज्ञे। उत्तानऽपदः। भुवः। आशाः। अजायंत।

अदितेः। दक्षः। अजायत। दक्षात्। ऊं इति। अदितिः। परि॥४॥

सायण भाष्य–

भूरुत्तानपदो वृक्षाज्जज्ञे। तथा भुवः सकाशादाशा अजायंत। तथादितेर्दक्षोऽजायत। उत्पन्नः। दक्षादुदक्षादप्यदितिः पर्यजायत। न स्वोत्पन्नं कार्यं स्वस्यैव कारणमपि भवतीति विप्रतिषिद्धमिति वाच्यं। यास्काचार्य इदमेव वाक्यमुदाहृत्य विरोधमाशंक्य पर्यहरत्। तथा हि अदितेर्दक्षो अजायत

दक्षाददिति: परीति च तत्कथमुपपद्येत समानजन्मानौ स्यातामित्यपि वा देवधर्मेणेतरेतरजन्मानौ स्यातामितरेतरप्रकृती। नि०११.२३.। इति। अदितिदेवताके पशावदितिर्ह्यजनिष्टेत्येषा हविषोऽनुवाक्या। सूचितं च। अदितिर्ह्यजनिष्ट सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं। आ०३.८.। इति॥

अन्वय-

उत्तानपद: भू: जज्ञे, भुव: आशा: अजायन्त अदिते: दक्ष: अजायत दक्षात् उ अदिति: परि।

हिन्दी अनुवाद-

(उत्तानपद:) ऊपर किरणों वाले सूर्य से (भू:) पृथिवी (जज्ञे) उत्पन्न हुई (भुव:) पृथिवी से (आशा:) पृथिवी की ज्ञापक दिशायें (अजायन्त) उत्पन्न हुई। (अदिते:) अदिति अर्थात् उषा से (दक्ष:) आदित्य (अजायत) उत्पन्न हुआ और (दक्षात्) उस आदित्य से (अदिति: परि) उषा उत्पन्न होती है।

भावार्थ-

सूर्य से पृथिवी का उद्भव होता है और उससे पृथिवी के कोण आदि दिशायें सूचित होती हैं। इस पृथिवी से प्रथम उषा का आगमन होता है। यह उषा दो प्रकार की है- प्रात:कालीन उषा और सायंकालीन उषा। प्रात:कालीन उषा से ही दक्ष व आदित्य का उद्भव होता है और सांयकालीन उषा में ही दक्ष (आदित्य) का विलय हो जाता है।

संहिता पाठ-

अदि॑ति॒र्ह्यज॑निष्ट॒ दक्ष॒ या दु॑हि॒ता तव॑।
तां दे॒वा अन्व॑जायंत भ॒द्रा अ॒मृत॑बंधव:॥५॥

पद पाठ–

अदितिः। हि। अजनिष्ट। दक्ष। या। दुहिता। तव।
तां। देवाः। अनु। अजायंत। भद्रा। अमृतऽबंधवः॥५॥

सायण भाष्य–

हे दक्ष तव या दुहिताभूत् सादितिरजनिष्ट हि पुत्रानादित्यान्। तदेवाह। तां देवा अन्वजायंत भद्राः स्तुत्या भजनीया अमृतबंधवोऽमरणबंधनाः॥

अन्वय–

अदितिः हि या दक्ष तव दुहिता अजनिष्ठ। तां अनु भद्राः अमृतबन्धवः देवाः अजायन्त।

हिन्दी अनुवाद–

(अदितिः) अदिति अर्थात् सन्ध्याकालीन उषा, (हि) निश्चय से (या) जो कि (दक्ष) हे आदित्य! (तव) तुम्हारी (दुहिता) पुत्री है, (अजनिष्ठ) उत्पन्न होती है। (ताम् अनु) उसके पीछे (भद्राः) कल्याणकारी श्रेष्ठ (अमृतबन्धवः) अपने अंदर अमृत को बांधने वाले (देवाः) दिव्य पदार्थ, किरणें, देवता (अजायन्त) उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ–

सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया में दक्ष की पुत्री अदिति कही गई है तथा अदिति की सन्तति आदित्य अर्थात् सूर्य है। उसके पश्चात् सब देवताओं को अदिति का पुत्र कहा गया है अर्थात् वे सब मरण रहित हैं।

संहिता पाठ–

यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत॥६॥

पद पाठ–

यत्। दे॒वा॒:। अ॒द:। स॒लि॒ले। सुऽसंरब्धा:। अतिष्ठत।
अत्र। व॒:। नृत्यतांऽइव। ती॒व्र:। रे॒णु:। अप। आ॒य॒त॥६॥

सायण भाष्य–

अनयोत्तरेण चादित्या: स्तूयंते। यद्यदा हे देवा: अदोऽमुष्मिन्सलिले यूयं सुसंरब्धा: सुष्ठु लब्धात्मानोऽतिष्ठत स्थितवंत:। आपो वा इदं सर्वं। तै०आ०१०.२२.। अप एव ससर्जादाविति श्रुतिस्मृती। अत्रास्मिन्सलिले नृत्यतामिव वो युष्माकं संबंधी तीव्रो दु:सहो रेणुरंशभूत एकोऽपायत। अपागच्छत्। दिवं प्रति मत इति सूर्याभिप्रायं। परा मार्तांडमास्यदिति वक्ष्यति॥

अन्वय–

यद् देवा: सुसंरब्धा: अद: सलिले अतिष्ठत अत्र नृत्यताम् इव व: तीव्र: रेणु: अपायत।

हिन्दी अनुवाद–

(यत्) जबकि (देषा:) ये दिव्य पदार्थ प्राकृतिक शक्ति, देवता (सुसंरब्धा:) बहुत अधिक अपने स्वरूप में स्थित होकर (अद:) इस (सलिले) जल में अपनी कारण रूप प्रकृति में (अतिष्ठत) स्थित होते हैं। (अत्र) तब इस अवस्था में (नृत्यताम् इव) नाचते हुए से (व:) इनके (तीव्र:)तीक्ष्ण प्रचण्ड (रेणु:) कारण रूप परमाणु (अपायत) चारों ओर फैल जाते हैं।

भावार्थ–

सृष्टि का मूल तत्त्व दर्शन शास्त्र में जल को कहा गया है। सृष्टि रचना से पूर्व सारे पृथिवी आदि तत्व जल में डूबे हुए थे। सभी दैवी शक्तियां और प्राकृतिक तत्त्व जल में डूबे हुये थे। जब ये तत्त्व जल से बाहर अपने परमाणुओं से उत्पन्न हुए तो यह परमाणु सब ओर बिखर गये।

संहिता पाठ–

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत।

अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन॥७॥

पद पाठ–

यत् देवाः। यतयः। यथा। भुवनानि। अपिन्वत।

अत्र। समुद्रे। आ। गूळ्हं। आ। सूर्यं। अजभर्तन॥७॥

सायण भाष्य–

यद्यदा हे देवाः यतयो यथा। वृक्षा नियमयंतीति वा वर्षणेन यातयंतीति वा यतयो मेघाः। ते यथोदकैर्भुवनानि लोकं पूरयंति तद्वत्स्वतेजोभिरपिन्वत। पूरितवंतः। अत्र समुद्रेऽप्स्वा गूळ्हं निगूळ्हं सूर्यं प्रातरुदयायाजभर्तन। आहृतवंतः॥

अन्वय–

यत् देवाः यतयः यथा भुवननि अपिन्वत, अत्र समुद्रे आ गूळ्हम् सूर्यम्, अजभर्तन।

हिन्दी अनुवाद–

(यत्) जबकि (देवाः) दिव्य प्राकृतिक पदार्थों ने, देवताओं ने (यतयः यथा) मेघों के समान (भुवननि) सब लोकों को (अपिन्वत) परमाणुओं से परिपूर्ण किया था, (अत्र) इस (समुद्रे) आकाश में (आगूळ्हम्) निगूढ़ (सूर्यम्) सूर्य देवता (अजभर्तन) चमक रहा था।

भावार्थ–

प्राकृतिक दिव्य शक्तियों से परमाणुओं द्वारा सृष्टि की रचना होते समय ये परमाणु सब तत्त्वों को परिपूर्ण कर रहे थे, उस समय आकाश में

सूर्य का पिण्ड इनके मध्य में चमक रहा था। अर्थात् इन परमाणुओं से सूर्य का उद्भव हुआ था।

संहिता पाठ–

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व१'स्परि।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताडमास्यत्॥८॥

पद पाठ–

अष्टौ। पुत्रासः। अदितेः। ये। जाताः। तन्वः। परि।
देवान्। उप। प्र। ऐत्। सप्तऽभिः। परा। मार्ताडं। आस्यत्॥८॥

सायण भाष्य–

अष्टौ पुत्रासः पुत्रा मित्रादयोऽदितेर्भवंति येऽदितेस्तन्वः परि शरीराज्जाता उत्पन्नाः। अदितेरष्टौ पुत्रा अध्वर्युब्राह्मणे परिगणिताः। तथा हि। ताननुक्रमिष्यामो मित्रश्च वरुण धाता चार्यमा चांशश्च भगश्च विवस्वानादित्यश्चेति। तथा तत्रैव प्रदेशांतरेऽदितिं प्रस्तुत्याम्नातं। तस्या उच्छेषणमददुस्तत्प्राश्नात् सा रेतोऽधत्त तस्यै चत्वार आदित्या अजायंत सा द्वितीयमपचदित्यष्टानामादित्याना-मुत्पत्तिर्वर्णिता। तै०सं.०६.५.६.१.। सादितिः सप्तभिः पुत्रैर्देवानुप प्रैत्। उपागच्छत्। अष्टमं पुत्रं मार्ताण्डं सूर्यं परास्यत्। उपरिप्राक्षिपदित्यर्थः॥

अन्वय–

अष्टौ पुत्राः अदितेः ये तन्वः परिजाताः देवान् सप्तभिः उप प ऐत् मार्तण्डं परा आस्यत्।

हिन्दी अनुवाद–

(अष्टौ) आठ (पुत्राः) पुत्र या कार्य (अदितेः) उस अदिति अर्थात्

प्रकृति के (तत्वः) शरीर से (परिजाताः) उत्पन्न होते हैं। प्रकृति रूप अदिति (देवान्) उन देवताओं को, प्राकृतिक शक्तियों को (सप्तभिः) सात रूपों में (उप प ऐत्) प्राप्त होती है। (मार्ताण्डं) कार्य रूप मार्तण्ड भूत तत्त्व को (परा आस्यत्) इनसे परे रखती है।

भावार्थ-

सृष्टि की रचना करने वाले सात महातत्त्व अदिति प्रकृति के हैं- महत्, अहङ्कार और पांच तन्मात्रायें आकाश, वायु, जल, पृथिवी ये सात प्रकृति के पुत्र ही सात देवता सृष्टि की रचना करते हैं। प्रकृति इनसे परे आठवां पुत्र मार्तण्ड है। यह मरणधर्मा प्रकृति का कार्य है।

संहिता पाठ-

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगं।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्ताडमाभरत् ॥९॥

पद पाठ-

सप्तऽभिः। पुत्रैः। अदितिः। उप। प्र। ऐत्। पूर्व्यं। युगं।
प्रऽजायै। मृत्यवे। त्वत्। पुनः। मार्ताडं। आ। अभरत्॥९॥

सायण भाष्य-

पूर्वमंत्रोक्त एवार्थः पुनरत्रोच्यते। सप्तभिर्मार्ताडव्यतिरिक्तैर्मित्रादि-भिरदितिः पूर्व्यं पुराणं युगमुप प्रैत्। उपगता। अथ प्रजायै प्राणिनामुत्पत्तये मृत्यवे तेषां मरणाय मार्ताण्डं मृताद्युद्धादंडाज्जातं मार्ताडनामानं सूर्यं पुनराभरत्। आहरत्। द्युलोकेऽधारयत्। प्राणिमरणजननादीनां सूर्योदयास्तमयायत्तता स्फुटा। तस्यै व्यृद्धमांडमजायतेत्यादि ब्राह्मणं। तै०सं. ६.५.६.१.॥

अन्वय-

अदितिः सप्तभिः पुत्रैः पूर्व्यं युगम् उप प्र ऐत् प्रजायै मृत्यवे त्वत् पुनः मार्तण्डम् आभरत्।

हिन्दी अनुवाद-

(अदितिः) प्रकृति रूप अदिति ने (सप्तभिः पुत्रैः) सात पुत्रों महत्, अहङ्कार, और पांच तन्मात्रा रूप सात प्रकृति विकृति रूप पुत्रों द्वारा (पूर्व्यम् युगं) सृष्टि उत्पत्ति के प्रारम्भिक काल को (उप प्र ऐत्) प्राप्त किया था। (प्रजायै) प्राणियों के शरीरों की उत्पत्ति के लिये और (मृत्यवे) मृत्यु के पश्चात् पुनः प्रादुर्भाव के लिये (मार्तण्डं) मार्तण्ड रूप सृष्टि का (पुनः) फिर (आभरत्) आविर्भाव किया था।

भावार्थ-

सृष्टि पहले सूक्ष्म अव्यक्त रूप में रहती है। सृष्टि उत्पत्ति के प्रारम्भिक रूप में यह महद् आदि की प्रक्रिया में प्रकृति-विकृति रूप होकर व्यक्त होने की प्रक्रिया में होती है। तदन्तर मार्तण्ड रूप में यह प्रकृति रूप में होकर व्यक्त एवं जन्म को धारण करती है।

****

१६. उर्वशी

ऋग्वेद दशम मण्डल सूक्त ९५, मन्त्र १-१८

ऋषि-उर्वशी-पुरूरवस्

देवता- पुरुरवस-उर्वशी

छन्दः - त्रिष्टुप्

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका-

अत्र वाजसनेयकं। उर्वशी हाप्सराः पुरूरवसमैळं चकमे तँ ह विंदमानोवाच त्रिः स्म साह्नो वैतसेन दंडेन हतादकामाँ स्म मा निपद्यासै मो स्म त्वा नग्नं दर्शमेष वै न स्त्रीणामुपचार इति सा हास्मिञ्ज्योगुवासापि हास्माद्गर्भिण्यास तावज्जयोग्घास्मिन्नुवास। ततो ह गंधर्वाः समूदिरे ज्योग्वा इयमुर्वशी मनुष्येष्ववात्सी दुपजानीत यथेयं पुनरागच्छेदिति तस्यै हाविर्द्धुरणा शयन उपबद्धास ततो ह गंधर्वा अन्यतरसुरणं प्रमेथुः। सा होवाचावीर इव बत मेऽजन इव पुत्रँ हरंतीति द्वितीयं प्रमेथुः सा ह तथैवोवाचाथ हायमीक्षां चक्रे कथं नु तदवीरं कथमजनँ स्याद्यचाहँ स्यामिति स नग्न एवानूत्पपात चिरं तन्मेने यद्वासः पर्यधास्यत ततो ह गंधर्वा विद्युतं जनयां चकुस्तं यथा दिवैवं नग्नं ददर्श ततो हैवेयं तिरोबभूव पुनरैमीत्येत्तिरोभूताँ स आध्या जल्पन्कुरुक्षेत्रँ समया चचारान्यतःप्लक्षेति बिसवती तस्यै हाध्यंतेन वव्राज तद्ध ता अप्सरस आतयो भूत्वा परिपुप्लुविरे तँ हेयं ज्ञात्वोवाच अयं वै स मनुष्यो यस्मिन्नहमवात्समिति ता होचुस्तस्मै वा आविरसामेति तथेति तस्मै हाविरासुस्ताँ हायं ज्ञात्वाभिपरोवाद हये जाये मनसेत्यादि। शत. ११.५.१.।

संहिता पाठ–

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु।
न नौ मंत्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतरे चनाहन॥ १॥

पद पाठ–

हये। जाये। मनसा। तिष्ठ। घोरे।
वचांसि। मिश्रा। कृणवावहै। नु
न। नौ। मंत्राः। अनुदितासः। एते।
मयः। करन्। परऽतरे। चन। अहन् ॥१॥

सायण भाष्य–

पुरूरवसो वाक्यं। जायां पश्यन्वदति। हये हे घोरे। अस्माकं दुःखजनकत्वात्। घोरकारिणि जाये मनसास्मदुपर्यनुरागवता मनसा युक्ता सती तिष्ठ। क्षणमात्रं संनिधावेव निवस। हय इत्यस्य निघाताभावश्छांदसः। किमर्थं संस्थानमिति तत्राह। वचांसि वाक्यानि मिश्राण्युक्तिप्रत्युक्तिरूपाणि न्वद्य क्षिप्रं वा कृणवावहै। करवावहै। कृवि हिंसाकरणयोः। धिन्विकृण्व्योरच्चेत्युप्रत्ययः। किमर्थं वचसः करणमिति चेत् उच्यते। नावावयोर्मत्रा रहस्यार्था एते विवक्षिता अनुदितासोऽव्याह्रियमाणाः परस्परमसंभाष्यमाणा गुंफिताः संतः परतरे चनाहन्। चनेति निपातसमुदायश्चार्थे। अनेकेषु दिवसेषु चरमेऽप्यहनि मयः। सुखनामैतत्। सुखं न करन्। कुर्वति। अतः कृणवावहा इति॥

पूर्व कथन–

ऋग्वेद दशम मण्डल का ९५ सूक्त संवाद सूत्र के रूप से बहुत प्रसिद्ध है इसमें सायण ने ऐतिहासिक कथा का उल्लेख किया है कि ऐलवंश के राजा

पुरूरवा का गन्धर्व कन्या उर्वशी से विवाह हुआ था। गन्धर्वों के द्वारा प्रेरित किये जाने पर उर्वशी उसे छोड़ कर चली गयी थी। परन्तु ऋषि दयानन्द ने वेदों में ऐतिहासिक कथाओं को स्वीकार नहीं किया और वे इस सूक्त में प्राकृतिक घटना का संकेत मानते हैं। उनके अनुसार पुरूरवा का अर्थ मेघ, वायु और विद्युत है। उर्वशी विद्युत, वाक्, और स्त्री को कहा गया है।

अन्वय-

हये घोरे जाये मनसा तिष्ठ, वचांसि नु मिश्रा कृणवावहै। नौ एते मंत्रा अनुदितास परतरे चन अहन् मयः न करन्।

हिन्दी अनुवाद-

जाया पत्नी को देख कर पुरूरवा कहता है- (हये)हे (घोरे)घोर दुःख देने वाली (जाये)पत्नी भूत उर्वशी (मनसा)अनुराग युक्त मन से (तिष्ठ)यहीं ठहरो। (वचांसि)हम अपनी बातें सुनिश्चित कर (मिश्राः)परस्पर मिल कर (कृणवावहै) करते हैं। (नौ) हमारे (एते)ये (मन्त्रा)रहस्यपूर्ण प्रेम भरे वार्तालाप (अनुदितासः) न कहे जाने पर (परतरे चन अहन्)दूसरे दिन भी (भयः न करन्) सुख नहीं देंगे।

भावार्थ -

पुरूरवा उर्वशी को देख कर कहता है कि आओ हम दोनों परस्पर मिल कर प्रेम पूर्वक बातें करें। इन परस्पर प्रेमपूर्वक बातों को न कहने पर ये हमें दूसरे दिनों में भी सुख नहीं देंगी।

संहिता पाठ-

किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि॥२॥

पद पाठ-

किं। एता। वाचा। कृणव। तव।
अहं । प्र। अक्रमिषं। उषसां। अग्रियाऽइव।
पुरूरवः। पुनः। अस्तं। परा। इहि।
दुःऽआपना। वातःऽइव। अहं। अस्मि ॥२॥

सायण भाष्य-

अनया तमुर्वशी प्रत्युवाच। एतैतया वाचा केवलया पुनःसंभोगरहितया किं कृणव। किं करवाव। अहं त्विदानीं त्वत्सकाशात्प्राक्रमिषं। अतिक्रांतवत्यस्मि। अतिक्रमे दृष्टांतः। उषसामग्रियेव। बह्वीनामुषसां मध्येऽग्र्याग्रे भवा पूर्वोषाः प्राक्रमीद्यथाहमपीति। यस्मादेवं तस्माद्धे पुरूरवः त्वं पुनरस्मत्सकाशादस्तं गृहं परेहि। परागच्छ। मा ममाभिलाषं कार्षीः। तस्या दुर्ग्रहत्वमाह। अहं वात इव वायुरिव दुरापना दुष्प्रापा दुरापा वास्मि। दुरापा वा अहं त्वयैतर्ह्यस्मि पुनर्गृहानिहीति हैवैनं तदुवाचेति वाजसनेयकं। शत. ११.५.१.७.॥

अन्वय-

एता वाचा तव अहं किं कृणव, उषसाम् अग्रिया इव प्राक्रमिषम् पुरूरवः पुनः अस्तम् परा इहि, अहं वातः इव दुरापना अस्मि।

हिन्दी अनुवाद-

उर्वशी पुरूरवा को उत्तर देती है (एता) इस प्रकार की (वाचा)परस्पर की बातों से (तव) तुमको (किं कृणव)क्या करना है। पुरूरवः हे पुरूरवा! तुम (पुनः) फिर (अस्तं) अपने घर को (परा इहि) वापिस चले जाओ। (अहं) मैं अब (वातः इव) वायु के समान (दुरापना) दुष्प्राप्य (अस्मि)हूँ।

भावार्थ-

उर्वशी अब पुरूरवा के पास जाना और प्रेमपूर्ण वार्ता करना नहीं चाहती। उसको टालने के लिए वह पुनः कहती है कि हे पुरूरवा अब हमें प्रेम की बातों का कहने से क्या लाभ है । तुम अब अपने घर चले जाओ। मै अब तुम्हारे लिये वायु के समान दुष्प्राप्य है।

संहिता पाठ-

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चितयंत धुनयः॥३॥

पद पाठ-

इषुः । न। श्रिये । इषुऽधेः। असना।
गोऽसाः। शतऽसाः। न। रंहिः।
अवीरे। क्रतौ। वि। दविद्युतत्। न।
उरा। न। मायुं। चितयंत। धुनयः॥३॥

सायण भाष्य-

अनया पुरूरवाः स्वस्य विरहजनितं वैक्लव्यं तां प्रति ब्रूते। इषुधेः। इषवो धीयंतेऽत्रेतीषुधिर्निषंगः। ततः सकाशादिषुरसनासनायै प्रक्षेप्तुं न भवति श्रिये विजयार्थं। त्वद्विरहाद्युद्धस्य बुद्धावप्यनिधानात्। तथा रंहिर्वेगवानहं शत्रुसकाशाद्गोषास्तेषां शत्रूणां गवां संभक्ता नाभवं। किंचावीरे वीरवर्जिते क्रतौ राजकर्मणि सति न वि दविद्युतत्। न विद्योतते। न मत्सामर्थ्यं। किंच धुनयः कंपयितारोऽस्मदीया नरा उरोरौ॥ सुपां सुलुगिति सप्तम्यां डादेशः॥ विस्तीर्णे संग्रामे मायुं। मीयते प्रक्षिप्यत इति मायुः शब्दः। कृवापाजीत्यादिनोण।

सिंहनादं न चितयंत। न बुध्यते। चिती संज्ञाने। अस्माणिचि संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वाल्लघूपधगुणीभावः। छांदसो लङ् ॥

अन्वय–

श्रिये इषुधेः इषुः असनाः न रंहिः शतसा गोषाः न। अवीरे क्रतौ विदविद्यतत् न उरा धुनयः मायुं न चितयन्त।

हिन्दी अनुवाद–

हे पुरूरवा! (श्रिये) श्री को प्राप्त के लिये (इषुधेः)तरकस से (इषुः)बाण (असनाः न) प्रक्षेपण नहीं किये जा रहे। (रंहि) अत्यधिक वेगशाली मैं उर्वशी (शतसाः) सैकड़ों प्रकार की (गोषाः) गर्जनाओं को डांट फटकार की वर्जनाओं को (न) नहीं कर पा रही हूं। (अवीरे) वीरता और शौर्य से रहित (क्रतौ) कर्म में (विदविद्युतत्) विशेष प्रकार की चमक या तेजस्विता (न) नहीं है। (उरा)इस विस्तृत पृथिवी पर (धुनयः) कविता करने वाले हमारे पक्ष के लोग (मायुं) शब्द को, ध्वनि को (न चितयन्त) प्रकट नहीं कर रहे हैं।

भावार्थ–

परन्तु पुरूरवा की मन में कामना न करती हुई उर्वशी तब भी उसको फटकारती हुई कहती है कि वह शौर्य से रहित है तथा उसके (उर्वशी) के अपने सम्बन्धी भी उसका समर्थन नहीं कर रहे हैं।

संहिता पाठ–

सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यंतिगृहात्।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्दिवा नक्तं श्लथिता वैतसेन॥४॥

पद पाठ-

सा। वसु। दधती। श्वशुराय। वयः।

उषः। यदि। वष्टि। अंतिऽगृहात्।

अस्तं। ननक्षे। यस्मिन्। चाकन्।

दिवा। नक्तं। श्लथिता। वैतसेन।।४।।

सायण भाष्य-

इदमुत्तरं चोर्वशीवाक्यं। आद्येन पुरात्मना कृतमुषसे निवेदयति। हे उषः सेयमुर्वशी वसु वासकं वयोऽन्नं श्वशुराय भर्तुः पुरूरवसः पित्रे दधती प्रयच्छंती तत्र गृहे स्थिता यदि पतिं वष्टि कामयते तदांतिगृहात्। स्वभर्तृभोगगृहांतिके यच्छ्श्वुरस्य भोजनगृहं तदंतिगृहं। तस्माद्गृहात्सोर्वश्यस्तं पतिगृहं ननक्षे। व्याप्नोति। यस्मिन्गृहे चाकन् कामयत उर्वशी। सा चोर्वशी दिवा नक्तमहनि रात्रौ च वैतसेन। शेपो वैतस इति पुंस्प्रजननस्येति निरुक्तं। ३.२१.। पुंस्प्रजननेन श्लथिता ताडिता च भवति। एवमुर्वश्यात्मानं परोक्षेण निर्दिदेश।

अन्वय-

उषः सा वसु वयः श्वसुराय दधती यदि वष्टि अंतिगृहात् अस्तं ननक्षे अस्मिन् दिवा नक्तं वैतसेन श्लथिता चाकल्।

हिन्दी अनुवाद-

तब पुरूरवा उर्वशी से कहता है-(उषः) हे उषा (सा) वह यह उर्वशी (वसु) सबको बसाने वाले (वयः) अन्न को (श्वसुराय) मुझ स्वामी के श्वसुर पिता के लिये (दधंती) धारण करती हुई यदि (वष्टि) पति की कामना करती है और (अन्तिगृहात्) श्वसुर के गृह से (अस्तं) पति के घर में (ननक्षे) जाती

है तो (यस्मिन्) यहां पर (दिवा नक्तं) दिन और रात्रि में (वैतसेन) बेंत से (श्लथिता) ताडित होती हुई (चाकन्) कामना करती है।

भावार्थ-

पति के घर की कामना करती हुई वह उर्वशी पति के कक्ष में ही जाती है।

संहिता पाठ-

त्रिः स्म माह्नः श्लथयो वैतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि।

पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्व१स्तदासीः॥५॥

पद पाठ-

त्रिः। स्म। मा। अह्नः। श्लथयः। वैतसेन।

उत। स्म। मे। अव्यत्यै। पृणासि।

पुरूरवः। अनु। ते। केतं। आयं। राजा।

मे। वीर। तन्वः। तत्। आसीः॥५॥

सायण भाष्य-

अनेन पुरूरवसमेव संबोध्योक्तवती। हे पुरूरवः त्वं मा मामह्नोऽहनि वैतसेन दंडेन पुंव्यंजनेन त्रिस्त्रिवारं। द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्। पा. ५.४.१८.। श्लथयः स्म। अश्नथयः। अताडयः। कृत्वोऽर्थप्रयोगे। पा. २.३.६४.। इति कालवाचिनोऽहःशब्दादधिकरणे षष्ठी। उतापि च। स्मेति पूरणः। अव्यत्यै। सपत्नीभिः सह पर्यायेण पतिमागच्छति सा व्यती। न तादृश्यव्यती। तस्यै मे मह्यं पृणासि। पूरयसि। एवं बुद्ध्या हे पुरूरवः ते तव केतं गृहमन्वायं। अन्वगमं पूर्वं। हे वीर राजा त्वं च मे मम तन्वः शरीरस्य तत्तदासीः। अभवः

सुखयितेति शेषः। परमप्येवं मंतव्यं किमिति कातरो भवसीत्युवाच।

अन्वय–

पुरूरवः मा वैतसेन अह्नः त्रिः श्लथः, उत अव्यत्यै पृणासि स्म। ते केतम् अनु आयम्, वीर तत् मे, तन्वः राजा आसीः।

हिन्दी अनुवाद–

(पुरूरवः) हे पुरूरवा! (मा) मुझको (वैतसेन) बैंत के दण्ड से (अह्नः) दिन में (त्रिः) तीन बार जो तुम (श्लथ यः) ताडित करते हो। (उत) और (अव्यत्यै) सम्पत्तियों के साथ (पृणासि स्म) (संतृप्त) करते थे तो (ते) तुम्हारे (केतम्) घर में (अनु आयम्) प्राप्त होती हूं, आती हूं। (वीर) हे वीर!(तत् अनु) इसलिये (मे) मेरे (तन्वः) शरीर का (राजा) स्वामी अधिपति (आसीः) होते थे।

भावार्थ–

हे पुरूरवा! तू दिन में तीन बार प्रातः, मध्याह्न और सायं मुझे ताड़ित करता है और मुझे सब प्रकार से तृप्त करता है, इसलिये मैं तेरे घर में आती हूं और तू मेरे शरीर का राजा, स्वामी होता है।

संहिता पाठ–

या सुजूर्णि श्रेणिः सुम्नआपिर्हृदेचक्षुर्न ग्रंथिनी चरण्युः।
ता अंजयोऽरुणयो न संसुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवंत॥६॥

पद पाठ–

या। सुऽजूर्णिः। श्रेणिः। सुम्नेऽआपिः।
हृदेऽचक्षुः। न। ग्रथिनी। चरण्युः।
ताः। अंजयः। अरुणयः। न स्रंसुः। श्रिये।
गावः। न। धेनवः। अनवंत॥६॥

सायण भाष्य–

पुरुरवसो वाक्यं। या सुजूर्णिः सुजवैतन्नामिकास्ति तथा या श्रेणिर्या सुम्नआपिर्या हृदेचक्षुः। नकारः समुच्चये। ताभिश्चतसृभिरालिभूताभिर्मानि-नीभिः सहिता ग्रंथिनी ग्रंथनवती संदर्भवती चरण्युश्चरणशीलोर्वश्याजगाम। यद्वा। ग्रंथिनीत्येतत्सखिभूताप्सरोनामधेयं। या सुजूर्णिः सुजवोर्वशी सा ताभिः सह जगाम। ता अप्सरसोऽजय आभरणोपेता अरुणयोऽरुणवर्णा न सस्रुः। पूर्ववन्न गच्छंति। श्रिये श्रयणाय धेनवो नवप्रसूता गावो न गाव इव। आश्रयार्थं यथा गावोऽनवंत शब्दायंते तथा न शब्दयंतीति व्यतिरेके दृष्टान्तः।

अन्वय–

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्ने आपिः हृदे चक्षुः न ग्रन्थिनी चरण्युः ता अंजयः अरुणायः धेनवः गावः न श्रिये न संस्रुः अनवन्त।

हिन्दी अनुवाद–

पुरूरवा अब कहता है–(या) जो उर्वशी (सुजूर्णिः) उत्तम प्रेम करने वाली है, (श्रेणिः) सुखदायिनी है, (सुम्ने आपिः) तेज प्रदान करने वाली है, (हृदे चक्षु) हर्ष और आनन्दरूपी जल में बिहार करने वाली है न (ग्रन्थिनी) गांठ बांधने वाली नहीं है। (चरण्युः) विचरणशीला है (ता) उन सब विशेषणों से युक्त हे उर्वशी तुम (अंजयः) चंचल (अरुणयः) दीप्तिमय अरुण वर्ष की (धेनवः) नवप्रसूता (गावः न) गौओं के समान (श्रिये) आश्रय के लिये (न स्रंसुः) न तो जाती हो (न अनवन्त) न किसी प्रकार का शब्द करती हो।

भावार्थ–

उर्वशी के अंदर अनेक प्रकार की विशेषतायें हैं। वह प्रेम करने वाली, सुखदायिनी, तेज प्रदान करने वाली, बन्धन की गांठ बांधने वाली और विचरणशील तथा हृदय में गांठ नहीं बांधती है। वह चपला और तेज

गति वाली है। किसी आश्रय को प्राप्त करने कहीं नहीं आती और नवप्रसूता गाय के समान किसी प्रकार का शब्द नहीं करती है।

संहिता पाठ–

समस्मिञ्जायमान आसत ग्रा उतेमवर्धन्नद्य१ः स्वगूर्ताः।
महे यत्त्वा पुरूरवो रणायावर्धयन्दस्युहत्याय देवाः॥७॥

पद पाठ–

सं। अस्मिन्। जायमाने। आसत।
ग्राः। उत। ईं। अवर्धन्। नद्यः। स्वऽगूर्ताः।
महे। यत्। त्वा। पुरूरवः। रणाय।
अवर्धयन्। दस्युऽहत्याय। देवाः॥७॥

सायण भाष्य–

अनयैताभिः सह संसर्गस्त्वयानुभूत इत्युर्वशी वदति। अस्मिन्पुरूरवसि जायमाने सति ग्रा अप्सरसो देववेश्या अपि समासत। संगता अभवन्। अथवा जायमाने यज्ञार्थं प्रवर्धमाने सति ग्रा देवपल्योऽपि समासत। समभवन्। उतापि चेसेनं पुरूरवसं स्वगूर्ताः स्वयंगामिन्यो नद्यस्तासामाश्रयभूता अवर्धयत्। किंच हे पुरूरवः यद्यस्मात्त्वा त्वां महे महते रणाय रणणीयाय संग्रामाय दस्युहत्याय दस्युहननाय देवास्त्वामवर्धयन्।

अन्वय–

अस्मिन् जायमाने ग्रा सम् आसत उत ईं स्वगूर्ताः नद्यः अवर्धन्। पुरूरवः यत् त्वा देवाः महेरणाय दस्युहत्वाय अवर्धयन्।

हिन्दी अनुवाद–

उर्वशी पुनः पुरूरवा से कहती है- (अस्मिन्) इस पुरूरवा के (जायमाने) उद्भव होने पर जो (ग्रा) कान्तिमान् दिव्य शक्तियां (सम् आसत) साथ-साथ स्थित रहती हैं, उत्पन्न होती हैं। (उत ईं) और इसके साथ (स्वगूर्ताः) स्वयं गतिशील होती हुई (नद्यः) नदियां (अवर्धन्) वृद्धि को प्राप्त होती हैं, (पुरूरवः) हे पुरूरवा! (यत्) जो कि (त्वा) तुमको (देवाः) दिव्य शक्तियों या देवताओं ने (महे) महान् (देवाः) देवताओं ने (दस्युहत्याय) असुरों का वध करने के लिये (अवर्धयन्) बढ़ाया था।

भावार्थ–

पुरूरवा का उद्भव होने के साथ-साथ कान्तिमान् दिव्य शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ और नदियां स्वयं गतिशील हो गयी। युद्धों के लिये तथा असुरों का वध करने के लिये स्वयं देवताओं ने उसके बल को बढ़ाया।

संहिता पाठ–

सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे।
अप स्म मत्तरसंती न भुज्युस्ता अत्रसन्नथस्पृशो नाश्वाः॥८॥

पद पाठ–

सचा। यत्। आसु। जहतीषु। अत्कं।
अमानुषीषु। मानुषः। निऽसेवे।
अप। स्म। मत्। तरसंती। न। भुज्युः।
ताः। अत्रसन्। रथऽस्पृशः। न। अश्वाः॥८॥

सायण भाष्य–

इदमादित्रीण्यैळवाक्यानि। तत्रादितो द्वाभ्यामुर्वशीमन्याश्च सह स्तौति।

यद्यदा सचा सहायभूतः पुरूरवा अत्कं स्वकीयं रूपं। अत्क इति रूपनाम। जहतीषु परित्यजंतीष्वमानुषीषु देवताभूतास्वप्सरःसु मानुषः सन्निषेवे अभिमुखं गच्छति तदानीं ता अप्सरसो मन्मत्तोऽपापसृत्यात्रसन्। त्रसतिर्गतिकर्मा। गच्छंति। पलायने दृष्टान्तः। तरसंती भुज्युर्न। तरसन्नाम मृगः। तस्य स्त्री भुज्युर्भोगसाधनभूता स्त्री मृगी। सा यथा व्याधाद्भीता पलायते। किंच रथस्पृशो नाश्वा रथे नियुक्ता अश्वा इव। यथा ते पलायंते तद्वत्पलायतं इति। उर्वश्यानेकाभिरस्माभिः सह भोगमनुभुक्तवानसीत्युक्तः प्रत्याचष्टे।

अन्वय–

यत् सचा अत्कम् जहतीषु अमानुषीषु आसु मानुषः निषेवे ताः यत् अप अत्रसन् न तरसन्ती भुज्युः न रथस्पृशः अश्वाः।

हिन्दी अनुवाद–

पुरूरवा पुनः उर्वशी से कहता है कि हे उर्वशी! (यत्) जबकि (सचा) सदा साथ रहने वाले पुरूरवा (अत्कम्) अपने स्वरूप को (जहतीषु) छोड़ती हुई (अमानुषीषु) दिव्य गुण सम्पन्न (आसु) इन अप्सराओं में (मानुषः) मनुष्य गुणों वाला व्यक्ति (निषेवे) संभोग आदि का सेवन करता है, (ताः) ये दिव्य गुण सम्पन्न अप्सरायें (यत्) जो (अप अत्रसन्) मुझ से डरकर दूर भाग जाती हैं, तब (तरसन्ती) मृग को चाहने वाली (भुज्युः न) हरिणी जिस प्रकार व्याध्र के डर से दूर भाग जाती है और (रथ स्पृशः) रथ में जुते हुए (अश्वाः न) अश्व जिस प्रकार डर से दूर भाग जाते हैं।

भावार्थ–

उर्वशी कहती हैं कि मैं अमानुषी हूं और पुरूरवा मनुष्य है। अमानुषी अप्सराओं से मनुष्य जब संभोग आदि करता है तो अप्सरायें उससे दूर भाग

जाती हैं, जिस प्रकार व्याध के डर से मृगी अन्य मृगों से दूर भाग जाती हैं, उसी प्रकार वह भी अमानुषी होने से मानुष पुरूरवा से दूर जा रही है।

संहिता पाठ–

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृंक्ते।
ता आतयो न तन्वः शुंभत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दंदशानाः॥९॥

पद पाठ–

यत्। आसु। मर्तः। अमृतासु। निऽस्पृक्।
सं। क्षोणीभिः। क्रतुऽभिः। न। पृंक्ते।
ताः आतयः। न। तन्वः। शुंभत। स्वाः।
अश्वासः। न। क्रीळयः। दंदशानाः॥९॥

सायण भाष्य–

यद्यदास्वमृतास्वप्सरःसु मर्तो मनुष्यः पुरूरवा निस्पृक् स्पृशन् क्षोणीभिर्वाग्भिः क्रतुभिर्न कर्मभिश्च सं पृंक्ते संपर्कं करोति। नकारः समुच्चयार्थः। ता अप्सरस आतय आतिभूतास्तदानीं स्वास्तन्व आत्मीयानि रूपाणि न शुंभत। न प्रकाशयंति। अश्वासो नाश्वा इव कीळयः संक्रीडमाना दंदशाना दंदूशूका जिह्वाभिरात्मीयाः सृक्का भक्षयंतः। ते यथा चापल्येन वंत स्वरूपं न प्रचच्छंति रथिकाय तद्वदिति दुःखाद्व्रते।

अन्वय–

यत् आसु अमृतासु मर्तः निःस्पृक् क्षोणीभिः न क्रतुभिः सं पृक्ते, ताः आतयः स्वाः तन्वः न शुम्भते दन्दशाना क्रीळयः अश्वासः न।,

हिन्दी अनुवाद-

(यत्) जबकि (आसु) इन (अमृतासु) अमर अप्सराओं में (मर्त:)मरण धर्मा मनुष्य अर्थात् पुरूरवा (नि:स्पृक्) सम्पर्क करता हुआ (क्षोणीभि:) वाणियों से (न) और (क्रतुभि:) कार्यों से(संपृक्ते) सम्पर्क करता है, तब (ता:) वे (आतय:) ग्लान होती हुई अप्सरा में (स्वा:) अपने (तन्व:) शरीरों को, स्वरूप को (न) नहीं (शुम्भते) प्रकाशित करती हैं, प्रकट करती हैं, (दन्दशाना:) जिह्वाओं से लगामों को चलाती हुई (क्रीळय:) क्रीड़ा करती हुई (अश्वास: न) जिस प्रकार घोड़ियां अपने स्वरूप को रथी के सम्मुख प्रकट नहीं करतीं।

भावार्थ-

उर्वशी पुरूरवा से कहती हैं कि हे पुरूरवा! जिस प्रकार रथ में जुती हुई घोड़ियां दौड़ती हुई तथा क्रीड़ा करती हुई रथी के सम्मुख अपने शरीर को प्रकट नहीं करती हैं, उसी प्रकार अमर अप्सरायें भी अपना स्पर्श करने वाले मरणधर्मा मनुष्याों के समक्ष अपने स्वरूप को प्रकट नहीं करती। पुरूरवा मरणधर्मा मनुष्य है और उर्वशी अमर अप्सरा है। अत: प्रेम करने वाली भी वे उसके समक्ष अपने शरीर के स्वरूप को प्रकाशित नहीं कर रही हैं।

संहिता पाठ-

वि॒द्युन्न या पत॑न्ती॒ दवि॑द्यो॒द्भर॑न्ती मे॒ अप्या॒ काम्या॑नि।
जनि॑ष्टो अ॒पो नर्य॑: सुजा॑त॒: प्रोर्वशी॑ तिरत दी॒र्घमायु॑:॥१०॥

पद पाठ-

वि॒ऽद्युत्। न। या। पत॑न्ती। दवि॑द्योत्।
भर॑न्ती। मे॒। अप्या॑। काम्या॑नि।

जनिष्टो इति। अपः। नर्यः। सुऽजातः।

प्र। उर्वशी। तिरत। दीर्घं। आयुः॥१०॥

सायण भाष्य–

अनयोर्वशीं स्तौति। योर्वशी विद्युन्न विद्युदिव पतंती गच्छंती दविद्योत् द्योतते। किं कुर्वती। अप्या। अप इत्यंतरिक्षनाम। तत्संबंधीनि व्याप्तानि वा काम्यान्यस्मदभिमतान्युदकानि वा मे मह्यं भरंती संपादयंती। यदागतायास्तस्याः सकाशादपो व्याप्तः कर्मसु नर्यो नरेभ्यो हितः सुजातः सुजननः पुत्रो जनिष्टो अजनिष्ट उत्पद्यते तदानीं ममोर्वशी दीर्घमायुः प्र तिरत। प्रवर्धयति। प्रजायनु प्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतं। तै.ब्रा. १.५.५.६.। इति हि मंत्रः।

अन्वय–

या उर्वशी विद्युत् न पतन्ती मे अप्या काम्यानि भरन्ती दविद्योत, नर्यः, सुजातः, अपः, जनिष्ट :, उर्वशी दीर्घम् आयुः प्रतिरत।

हिन्दी अनुवाद–

पुरूरवा कहता है कि (या) जो (उर्वशी) अमृत रूप अप्सरा उर्वशी (विद्युत् न) बिजली के समान (पतन्ती) मुझ पर गिरती हुई (मे) मुझ में (अप्या) जल रूप (काम्यानि) कामनाओं को (भरन्ती), सम्पादित करती हुई (दविद्योत्) चमकती है। (मर्यः) मरण धर्मा मनुष्यों के मध्य में (सुजात) उत्तम पुत्र के रूप में जन्म लेने वाला (अपः) जल रूप में कामनाओं से भरा हुआ (जनिष्टः) उत्पन्न हुआ है। (उर्वशी) यह उर्वशी उसको (दीर्घं) लम्बी (आयुः) आयु (प्रतिरत) प्रदान करे।

भावार्थ–

यह अप्सरा रूप उर्वशी मरणधर्मा पुरूरवा पर बिजली के समान गिरती है और उसमें जल रूप कामनाओं को उत्पन्न करती है। यह मरणधर्मा

पुरूरवा का मनुष्यों में उत्तम पुत्र के रूप में जन्म हुआ है। उर्वशी इसको लम्बी आयु प्रदान करे।

संहिता पाठ–

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरूरवो म ओजः।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणोः किमभुग्वदासि॥११॥

पद पाठ–

जज्ञिषे। इत्था। गोऽपीथ्याय। हि।
दधाथ। तत। पुरूरवः। मे। ओजः।
अशासं। त्वा। विदुषीं। सस्मिन्। अहन्। न। मे।
आ। अशृणोः। किं। अभुक्। वदासि॥११॥

सायण भाष्य–

इत्थेत्थं गोपीध्याय। गौः पृथिवी। पीथं पालनं। स्वार्थिकस्तद्धितः। भूरक्षणाय जज्ञिषे हि। जातोऽसि खलु पुत्ररूपेण। आत्मा वै पुत्रनामेति श्रुतेः। पुनर्देव्याह। हे पुरूरवः मे ममोदरे मय्योजोऽपत्योत्पादनसामर्थ्यं दधाथ। मयि निहितवानसि। तत्तथास्तु। अथापि स्थातव्यमिति चेत् तत्राह। अहं विदुषी भावि कार्यं जानती सस्मिन्नहन् सर्वस्मिन्नहनि त्वया कर्तव्यं त्वा त्वाम्शासं। शिक्षितवत्यस्मि। त्वं मे मम वचनं नाश्रृणोः। न श्रृणोषि। किं त्वमभुगभोक्तापालयिता प्रतिज्ञातार्थमपालयन्वदासि हये जाय इत्यादिकरूपं प्रलापं। वदेर्लेट्यडागमः। दिवसे त्रिवारं यभस्व एडकबालकमस्माकं पुत्रत्वेन परिकल्पय अपत्योत्पादनपर्यन्तं वसामि नग्रं त्वां यदाद्राक्षं तदा गच्छामीत्येवंरूपो मिथःसमयं उर्वशी हाप्सराः पुरूरवसमैळं चकमे तँह विंदमानोवाच त्रिः स्म माह्नो वैतसेन दंडेनेत्यादि वाजसनेयकमुदाहृतं॥

अन्वय-

इत्था गोपीथ्याय जज्ञिषे पुरूरवा तत् ओजः ये दधाथ। सस्मिन् अहन् विदुषी त्वा अशासम् । मे न अशृणोः अभुक् किं वदासि।

हिन्दी अनुवाद-

उर्वशी अब पुरूरवा से कहती है- (इत्था) इस प्रकार से (गोपीध्याय) पृथिवी की रक्षा के लिये (जज्ञिषे) तुम उत्पन्न हुये हो, समर्थ हो। (पुरूरवः) हे पुरूरवा (तत्) इसलिये (ओजः) अपने ओज को (मे) मेरे अन्दर (दधाथ) धारण करो। (सस्मिन् अहम्) सब दिनों मैं (विदुषी) विशेष विद्या सम्पन्न (त्वा) तुझको मैं (अशासम्) चाहती हूँ, शासन करती हूं। तुम (मे) मेरी बात को (न आश्रृणोः) नहीं सुनते हो (अभुक्) मेरी बात का पालन न करने वाले तुम (किं) क्या (वदासि) कहते हो।

भावार्थ-

पुरूरवा पृथिवी की रक्षा करने में समर्थ हैं। उर्वशी कामना करती है कि यह पुरूरवा उसमें तेज को गर्भ को धारण करावे। वह तो उसकी कामना करती है, परन्तु पुरूरवा उसकी सुनता नहीं है तो उसका कहना न मानने वाला अब क्या कह सकता है।

संहिता पाठ-

कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन्।
का दंपती समनसा वि यूयोदध यदिग्नः श्वशुरेषु दीदयत्॥१२॥

पद पाठ-

कदा। सुनूः। पितरं। जातः। इच्छात्।
चक्रन् । न। अश्रु। वर्तयत्। विऽजानन्।

कः । दंपती इति दंऽपती। सऽमनसा। वि। यूयोत्।

अर्ध। यत्। अग्निः। श्वशुरेषु। दीदयत् ॥१२॥

सायण भाष्य-

इदं पुरूरवसो वाक्यं। कदा कस्मिन्काले सुनुस्तवोदरजातः सन् पितरं मामिच्छात्। इच्छेत्॥ इषु इच्छायां। लेटि शपीषुगमियमां छ इति छादेशः । लेटोऽडाटावित्यडागमः ॥ कदा वा विजानन्पितरं मामधिगच्छंश्चक्रन् क्रंदमानो नाश्रु वर्तयत् । नेति चार्थे। किंच कः किंविधः सन् सूनुः समनसा समनसौ समनस्कौ दंपती जायापती त्वां मां च वि यूयोत् । विश्लेषयेत् ॥ यु मिश्रणामिश्रणयोः । यौतेश्छांदसः शपः श्लुः। तुजादित्वादभ्यासस्य दीर्घः॥ अधाधुना यद्यदाग्निस्तव इदयस्थितस्तेजोरूपो गर्भः श्वशुरेषु दीदयत् दीप्यते। दीदयतिर्दीप्तिकर्मेति नैरुक्तो धातुः॥

अन्वय-

कदा सुनूः जातः पितरम् इच्छात्, विजानन् चक्रं अश्रु न वर्तयत्। कः समनसा दम्पती वियुयोत् । अध यत् अग्निः श्वसुरेषु दीदयत्।

हिन्दी अनुवाद -

पुरूरवा पुनः उर्वशी को कहता है-हे उर्वशी ! (कदा)कब (सूनुः) पुत्र (जातः) तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न हुआ है। (पित्तरं)मुझ पिता की (इच्छात्)इच्छा करेगा। (विजानन)मुझ पिता को जानता हुआ और प्राप्त करता हुआ (चक्रं)क्रन्दन करता हुआ (अश्रु)आंसू (न वर्तयत्)नहीं बहायेगा। (कः)कौन हमारा पुत्र (समनसा)हमारे समान या अनुकूल मन वाला होकर (दम्पती)हम पति पत्नी अर्थात् तुम माता और मुझ पिता को (यि युयोत्)वियुक्त कर देगा। (अध) और (यत्) जो (अग्निः) तुम्हारे अन्दर मेरे लिये प्रेम की अग्नि है, वह(श्वसुरेषु)

श्वसुरों के कुल में इस घर को प्राप्त करने के लिये (दीदयत्) प्रदीप्त होगी।

भावार्थ–

हे उर्वशी मुझ पुरूरवा द्वारा तुम्हारे गर्भ से पुत्र कब उत्पन्न होगा और वह मुझ पिता को चाहेगा। वह पिता की इच्छा करता हुआ आंसू बहायेगा। कोई पुत्र नहीं चाहता कि उसके माता पिता विमुक्त हो जायें। तुम्हारे अन्दर जो मेरे प्रति प्रेम की अग्नि है, वह तुम्हारे अन्दर अपने श्वसुर कुल को मेरे पास आने के लिये प्रदीप्त होवे।

संहिता पाठ–

प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन्न क्रंददाध्यै शिवायै।

प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर मापः॥१३॥

पद पाठ–

प्रति ब्रवाणि। वर्तयते। अश्रु।

चक्रन्। न। क्रंदत्। आऽध्यै। शिवायै।

प्र। तत्। ते। हिनव। यत्। ते। अस्मे इति।

परा। इहि। अस्तं। नहि। मूर। मा। आपः॥१३॥

सायण भाष्य–

इदमुर्वशीवाक्यं। हे पुरूरवः त्वां प्रति ब्रवाणि। प्रतिवच्मि। त्वदपत्यमश्रु वाष्पं वर्तयते। वर्तयिष्यति। आध्य आध्याते वस्तुनि शिवायै शिवे कल्याणे समुपस्थिते सति चक्रन्नुदन्नश्रूणि विमुंचन्न क्रंदत्। नकारश्चार्थे। रोत्स्यति चेत्यर्थः। तत्वदपत्यं ते तुभ्यं हिनव प्रहिणोमि यदपत्यं ते तव संबंध्यस्मे अस्मासु निहितं। त्वं परेह्यस्तं। अस्तमिति गृहनाम। स्वगृहं प्रतिगच्छ। हे मूर मूढ मा मां

न ह्यापः। न प्राप्रोषि ॥ हिनवेत्यत्र हिनोतेश्छंदसि लुडलड्लिट इति भविष्यदर्थे लडिमिप आमादेशः। गुणः। अंत्यलोपश्छांदसः। बद्धलवचनाद्डभावः। आपः। आप्लृ व्याप्तौ। लिटि तिडो भ्वंवतीती थलो णल्।

अन्वय –

प्रति ब्रवाणि अश्रु वर्तयते आध्ये शिवायै चक्रन् न क्रन्दत्। यत् अस्मे तत् ते प्रहिनव। अस्तं परा इहि। मूर मा नहि आपः।

हिन्दी अनुवाद–

उर्वशी अब पुरूरवा से कहती है–(प्रति) तुम्हारे प्रति (ब्रवाणि) मैं कहती हूं कि तुम्हारा पुत्र (अश्रु) आंसू (वर्तयते) बहा रहा है। (आध्ये) चाही गई वस्तु में (शिवायै) कल्याण को प्राप्त करने के लिये (चक्रन्) क्रन्दन करता हुआ और (क्रन्दन्) विलाप करता हुआ (न) भी नहीं मानेगा। (यत्) जो तुम्हारा पुत्र (अस्मेः) मुझ उर्वशी के गर्भ में स्थित है, (तत्) उस तुम्हारे पुत्र को मैं (ते) तुम्हारे पास (प्रहिनव) भेजती हूं। (अस्तं) अपने घट को (परा इहि) यहां से दूर चले जाओ। (मूर) हे मूढ़ पुरूरवा (मा) मुझको (नहि) निश्चय से नहीं (आपः) प्राप्त कर सकते हो।

भावार्थ–

उर्वशी पुरूरवा से पुनः कहती है कि तुम्हारा पुत्र तुम्हारे लिये आंसू बहाता है, सोची गई वस्तु को कल्याण की प्राप्ति के लिये क्रन्दन करता है। जो तुम्हारा पुत्र मेरे शरीर में निहित है, उसे मैं तुम्हारे पास भेज दूंगी। हे मूढ़ मनुष्य तुम मुझको अब प्राप्त नहीं कर सकते।

संहिता पाठ–

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्परावतं परमां गंतवा उ।

अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थेऽधैनं वृका रभसासौ अद्युः॥१४॥

पद पाठ–

सुऽदेवः। अद्य। प्रऽपतेत्। अनावृत्।
पराऽवतं। परमां। गंतवै। ऊं। इति।
अध। शयीत। निःऽऋतेः। उपऽथे।
अध। एनं। वृकाः। रभसासः। अद्युः॥१४॥

सायण भाष्य–

अथ परिदूनः पुरूरवा उवाच। मुदेवस्त्वया सह सुक्रीडः पतिरद्य प्रपतेत्। अत्रैव प्रपततु। अथवानावृदनावृत्तः सन् परमां परावतं दूरादपि दूरदेशं गंतवै महाप्रस्थानगमनं कुर्यात्। अधाथवा यत्रकुत्रापि गंतुं समर्थो निर्ऋतेः पृथिव्या उपस्थे शयीत। शयनं कुर्यात्। यद्वा। निर्ऋतिः पापदेवता। तस्या उपस्थ उत्संगे संनिधौ म्रियतामित्यर्थः। अधाथवैनं वृका आरण्याः श्वानो रभसासो वेगवंतोऽद्युः। भक्षयंतु। अत्र वाजसनेयकं। सुदेवोऽद्योद्वा बध्नीत प्र वा पतेत्तदेनं वृका वा श्वानो वाद्युरिति हैव तदुवाच।

अन्वय–

सुदेवः अथ प्रपतेत् अनावृत् परमां परावतं गन्तवै। अध निऋतेः उपस्थे शयीति। अध रभसासः वृकाः अयुः।

हिन्दी अनुवाद–

उर्वशी पुनः कहती है कि हे पुरूरवा (सुदेवः) दिव्य क्रीड़ा करने वाला तुम्हारा पति पुरूरवा (अद्य) आज (अनावृत्) असुरक्षित होकर (परमां) बहुत (परावतं) दूर देश को (गन्तवै) जाने के लिये प्रस्तुत है। (ऊं इति) यह अच्छी बात है। यह बहुत दूर देश को चला जावे। (अध) अथवा (निऋतेः) पृथिवी के (उपस्थे) गोदी में (शयीत) सो जावे, (अध) अथवा (रभसासः) वेगशाली

(वृका:) भेड़िये (एनं) इसको (अयु:) खा जावें।

भावार्थ–

उर्वशी अति क्रूरता प्रदर्शित करती हुई पुरूरवा से पुन: कहती है कि उसके साथ प्रणय करने वाला यह पुरूरवा कहीं गिर पड़े, असुरक्षित होकर वह कहीं दूर देश में चला जावे, वह पृथिवी की गोदी में सो जावे, अथवा तीव्र गति वाले भेड़िये ही इसको खा जावे।

संहिता पाठ–

पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि संति सालावृकाणां हृदयान्येता॥१५॥

पद पाठ–

पुरूरव:। मा। मृथा:। मा। प्र। पप्त:। मा।
त्वा। वृकास:। अशिवास:। ऊं इति। क्षन्।
न। वै। स्त्रैणानि। सख्यानि। संति।
सालावृकाणां। हृदयानि। एता॥१५॥

सायण भाष्य–

तमितरा प्रत्युवाच। हे पुरूरव: त्वं मा मृथा:। मृतिं मा प्राप्नुहि। म्रियतेर्लुङि थासि ह्रस्वादंगादिति सिचो लोप:। तथा मा प्र पप्त:। अत्रैव पतनं मा कार्षी:। पतेलुङि लृदित्त्वात्पुषादीत्यादिना च्लेरङ् पत: पुमिति पुम्। तथा त्वा त्वामशिवासोऽशुभा वृकासो वृका मा उन क्षन्। उ इत्येवकारार्थे। अक्षन्। माभ्यवहारयंतु। किमित्येवमस्मदुपर्याग्रहं करोषि। मा कार्षीरित्यर्थ:। अदेर्लुङि लुङ्सनोर्घस्ल। पा.२.४.३७। इति घस्लादेश:। मंत्रे घसेति च्लेर्लुक्।

गमहनेत्यादिनोपधालोपः। शासिवसीत्यादिना षत्वं। खरि चेति चर्त्वं। बाहुलकादडभावः। अथ स्वस्नेहस्यासारतामाह। स्त्रैणानि स्त्रीणां कृतानि सख्यानि न वै संति। न संति खलु। अभावे कारणमाह। एतानि सख्यानि सालावृकाणां हृदयानि यथा वत्सादीनां विश्वासामान्नानां घातुकानि तद्वत्। अत्र वाजसनेयकं। मैतदादृथा न वै स्त्रैणं सख्यमस्ति पुनर्गृहानिहीति हैवैनं तदुवाच। (शत० ११.५.१.९)इति।।

अन्वय–

पुरूरवः मा मृथाः मा प्रपप्तः, अशिवासः वृकासः त्वा मा उ अक्षन्। वै स्त्रैणानि सख्यानि न सन्ति एतानि सालावृकाणं हृदयानि।

हिन्दी अनुवाद–

(पुरूरवः) हे पुरूरवा! (मा मृथाः) तुम मरो मत (मा प्रपप्तः) तुम गिरो नहीं (अशिवासः) अशुभ करने वाले ये (वृकासः) भेड़िये (त्वा) तुझको (मा अक्षन्) न खा जावें। (वै) निश्चय से (स्त्रैणानि) स्त्रियों के साथ की गई (सख्यानि) मित्रतायें (न सन्ति) स्थिर नहीं रहती। (एतानि) ये स्त्रियां (सालावृकाणं) शिकारी कुत्तों और भेड़ियों के सदृश (हृदयानि) क्रूर हृदय वाली होती हैं।

भावार्थ–

अब उर्वशी अति कठोर हृदय वाली होकर पुरूरवा से कहती है कि हे पुरूरवा! तुम मरो नहीं और कहीं जाकर गिर मत पड़ो और अपने घर चले जाओ। स्त्रियों की प्रति आसक्ति ठीक नहीं। स्त्रियां तो भेड़ियों के समान पुरुष को खा जाने वाली होती हैं। स्त्रियों के साथ मित्रता स्थिर नहीं होती। उनके हृदय शिकारी कुत्तों और भेड़ियों के समान क्रूर होते हैं।

संहिता पाठ–

यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः।

घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नं तादेवेदं तातृपाणा चरामि॥१६॥

पद पाठ–

यत्। विऽरूपा। अचरं। मर्त्येषु।

अवसं। रात्रीः। शरदः। चतस्रः।

घृतस्य। स्तोकं। सकृत्। अह्नः। आश्नां।

तात्। एव। इदं। ततृपाणा। चरामि॥१६॥

सायण भाष्य–

यद्यदा विरूपा मनुष्यसंपर्काद्विगतसहजभूतदेवरूपापत्यानुकूल्येन नानारूपा वा मर्त्येषु मनुष्येष्वचरं तदानीं रात्रीः पूरयित्रीश्चतस्रः शरदोऽवसं। न्यवसं। अत्यंतसंयोगे द्वितीया। तदानीं घृतस्य स्तोकं सकृद्ह्न आश्नां। तादेव तेनैव लोकेनाहमिदं संप्रति तातृपाणा तृप्ता सती चरामि॥

अन्वय–

यत् विरूपा मर्त्येषु अचरं रात्रीः चतस्रः शरदः अवसम् घृतस्य स्तोकम् अह्नः सकृत् आश्नां तात् एव दूरं तातृपाणा चरामि।

हिन्दी अनुवाद–

उर्वशी पुनः पुरूरवा से कहती हैं कि हे पुरूरवा! (यत्) जबकि मैं (विरूपा) विविध देवरूप को धारण करने वाली अमर होती हुई (मर्त्येषु) मरणधर्मा मनुष्यों के मध्य में (अचरं) विचरण करती हूं, उनके साथ व्यवहार करती हूं तो (रात्रीः) रमण कराने वाली (चतस्रः) चार (शरदः) शरद् ऋतुओं तक, चार वर्ष तक (अवसम्) उनके साथ रह सकती हूं। उस समय (घृतस्य) घृत का, जल का या

भोज्य पदार्थों का (स्तोकं) स्वल्प सा भाग ही (अह्नः) दिन भर में (सकृत्) एक बार ही (आश्नाम्) खाती हूं और (तात् एव) उससे ही (तातृपाणा) तृप्त होती हुई (चरामि) विचरण करती हूं, लोक का व्यवहार करती हूं।

भावार्थ–

उर्वशी अमर धर्मा दिव्यरूप देव योनि की है और पुरूरवा मरण धर्मा मनुष्य योनि का है। दोनों का सम्बन्ध स्वल्प काल के लिये ही हो सकता है। उर्वशी ने यह समय चार वर्ष का बताया है। इस अवधि में दिव्य रूप के कारण वह दिन में स्वल्प मात्रा में केवल एक बार कुछ खाती है।

संहिता पाठ–

अंतरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे।।१७।।

पद पाठ–

अंतरिक्षऽप्रां। रजसः। विऽमानीं।
उप। शिक्षामि। उर्वशीं। वसिष्ठः।
उप। त्वा। रातिः। सुऽकृतस्य। तिष्ठात्।
नि। वर्तस्व। हृदयं। तप्यते। मे।।१७।।

सायण भाष्य–

अंतरिक्षप्रां स्वतेजसांतरिक्षस्य पूरयित्रीं तथा रजसो रंजकस्योदकस्य विमानीं निर्मात्रीमुर्वशीं वसिष्ठः सभानानां मध्येऽतिशयेन वासयिताहमुप शिक्षामि। वशं नयामि। सुकृतस्य शोभनकर्मणो रातिर्दाता पुरूरवास्त्वा त्वामुप तिष्ठात्। उपतिष्ठतु। ते हृदयं तप्यते। अतो नि वर्तस्व। एवं राजोवाच।

अन्वय–

अन्तरिक्षप्राम् इजसः विमानीं उर्वशीं वसिष्ठः उपशिक्षामि। सुकृतस्य रातिः त्वा उपतिष्ठात्। मे हृदयं तप्यते निवर्तस्व।

हिन्दी अनुवाद–

(अन्तरिक्षप्राम्) अन्तरिक्ष को भी अपने तेज से, दिव्य सौन्दर्य से भर देने वाली (रजसः) रजोगुण प्रेम जल की (विमानीं) निर्माण करने वाली (उर्वशीं) उर्वशी को मैं (वसिष्ठः) ऐल पुरूरवा का पुरोहित वसिष्ठ (उपशिक्षामि) यह शिक्षा दे रहा है कि (सुकृतस्य) उत्तम कर्मों का (रातिः) प्रदान करने वाला पुरूरवा (त्वा) तुमको या तुम्हारे पास (उपतिष्ठात्) प्राप्त रहे। तुम्हारे समीप स्थित रहो (मे) मेरा (हृदयं) हृदय (तप्यते) संतप्त हो रहा है। हे उर्वशी (निवर्तस्य) तुम शांत रहो, तुम लौट आओ, जाओ नहीं।

भावार्थ–

अब पुरूरवा के पुरोहित वसिष्ठ उर्वशी को समझाते हैं– हे उर्वशी! तुमने अपने दिव्य सौन्दर्य से अन्तरिक्ष को भी भर दिया है। यह पुरूरवा ही तुमको सुखी कर सकता है। इसके पुण्य कर्म हैं और यह तुम्हारे समीप स्थित है। मेरा हृदय तुमको जाते हुए देख कर बहुत संतप्त हो रहा। तुम इसको छोड़ कर मत जाओ। इसके पास शांत होकर लौट आओ।

संहिता पाठ–

इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद्भवसि मृत्युबंधुः।

प्रजा ते देवान्हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे॥१८॥

पद पाठ–

इति। त्वा। देवाः। इमे। आहुः। ऐळ।

यथा। ई। एतत्। भवसि। मृत्युऽबंधुः।

प्रऽजा। ते। देवान्। हविषा। यजाति।

स्वःऽगे। ऊं इति। त्वं। अपि। मादयासे॥१८॥

सायण भाष्य–

हे ऐळ पुरूरवः त्वा त्वामिमे देवा इत्याहुः। मृत्युबंधुर्मृत्योर्बधको मृत्योर्बंधुभूतो वा मृत्युवशमप्राप्नुवंस्त्वं यथें यथेतद्भवसि भविष्यसि प्रजां प्रकर्षेण जायमानस्त्वं ते तव संबंधिनो यष्टव्यान्देवान्हविषा यजासि। यजसि। स्वर्ग उ स्वर्ग एव त्वमपि मादयासे। मादयसेऽस्माभिः सह। एवमाहुरित्यर्थः। यस्मादेवं करोषि तस्मादभिलाषं हित्वा सुखी भवेति सेयं पुरूरवसं प्रत्युवाच।

अन्वय–

ऐल इमे देवाः त्वा इति आहुः मृत्युबन्धुः यथा ईम् एतत् प्रजा भवसि। ते देवान् हविषा यजाति। त्वम् अपि उ स्वर्गे मादयासे।

हिन्दी अनुवाद–

अन्त में उर्वशी पुरूरवा से अन्तिम परिणाम के रूप में निश्चयात्मक रूप से कहती है कि (ऐल) हे ऐलवंशी हे पुरूरवा! (त्वा) तेरे विषय में (इमे) ये (देवाः) देवता (इति आहु) ऐसा कहते हैं (मृत्यु वन्धुः) मृत्यु की वन्धक (प्रजा) सन्तान (भवसि) उत्पन्न हुई है। (हविषा) हवि के द्वारा तुम (ते देवान्) उन देवताओं के लिये (यजाति) यज्ञ करते हो। (त्वम् अपि) तुम भी (उ) निश्चय से (स्वर्गे) स्वर्ग में (मादयासे) आनन्द प्राप्त करते हो।

भावार्थ–

हे पुरूरवा! देवता भी ऐसा कहते हैं कि तुम मृत्यु को भी बांध देने वाले हो। तुम हवियों द्वारा देवताओं के लिये यज्ञ करो। तुम स्वर्ग में भी आनन्द प्राप्त करोगे।

****

१७. इन्द्राणी (१)

ऋग्वेद दशम मण्डल सूक्त ८६, मन्त्र १-२३

ऋषि-इन्द्राणी, इन्द्र

देवता- इन्द्र

छन्दः - १,७,११,१४,१८,२३ पंक्ति २,५ पद

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका-

अष्टमाष्टकस्य चतुर्थोऽध्याय आरभ्यते। तत्र वि हीति त्रयोविंशत्यृचं द्वितीयं सूक्तं। वृषाकपिर्नामेंद्रस्य पुत्रः। स चेंद्राणीद्रश्चैति त्रयः संहताः संविवादं कृतवंतः। तत्र वि हि सोतोरसृक्षत किं सुबाहो स्वंगुर इंद्राणीमासु नारिष्विति द्वे उक्ष्णो हि मेऽयमेतीति चतस्त्र इत्येता नवर्च इंद्रवाक्यानि। अतस्तासामिंद्र ऋषिः। परा हींद्रेति पंचावीरामिति द्वे वृषभो न तिग्मशृंग इत्याद्याश्चतस्त्र इत्येकादशर्च इंद्राण्या वाक्यानि। अतस्तासामिंद्राण्यृषिः। उवे अंब वृषाकपायि रेवति पर्शुर्ह नामेति तिस्रो वृषाकपेर्वाक्यानि। अतस्तासां वृषाकपिर्ऋषिः। सर्वं सूक्तमैंद्रं पंचपदापंक्तिच्छंदस्कं। तथा चानुक्रांतं। वि हि त्र्यधिकैंद्रो वृषाकपिरिंद्राणींद्रश्च समूदिरे पांक्तमिति। षष्ठेऽहनि ब्राह्मणाच्छंसिन उक्थ्यशस्त्र एतत्सूक्तं। सूत्रितं च। अथ वृषाकपिं शंसेद्यथा होताज्याद्यां चतुर्थे। आ० ८.३.। इति। यदि षष्ठेऽहन्युक्थ्यस्तोत्राणि द्विपदासु न स्तुवीरन्सामगा यदि वेदमहरग्निष्टोमः स्यात्तदानीं ब्राह्मणाच्छंसी माध्यंदिने सेवन आरंभीयाभ्य ऊर्ध्वमेत्सूक्तं शंसेद्विश्वजित्यपि। तथा च सूत्रितं। सुकीर्तिं ब्राह्मणच्छंसी वृषाकपिं च पंक्तिशंसं। आ० ८.४.। इति।।

संहिता पाठ–

वि हि सोतोरसृक्षत नेंद्रं देवममंसत।

यत्रामदद्वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥१॥

पद पाठ–

वि। हि। सोतोः। असृक्षत।

न। इंद्रं। देवं। अमंसत।

यत्र। अमदत्। वृषाकपिः।

अर्यः। पुष्टेषु। मत्ऽसखा।

विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥१॥

सायण भाष्य–

सोतोः सोमाभिषवं कर्तुं व्यसृक्षत। यागं प्रति मया विसृष्टा अनुज्ञाताः स्तोतारो वृषाकपेर्यष्टारः। हीति पूरणः। तत्र देवं द्योतमानमिंद्रं मां नामंसत। मया प्रेरिताः। संतोऽपि ते स्तोतारो न स्तुतवंतः। किंतु मम पुत्रं वृषाकपिमेव स्तुतवंतः। यत्र येषु पुष्टेषु सोमेन प्रवृद्धेषु यागेश्वर्यः स्वामी वृषाकपिर्मम पुत्रो मत्सखा मम सखिभूतः सन्नमदत् सोमपानेन हृष्टोऽभूत्। यद्यप्येवं तथापींद्रोऽहं विश्वस्मात्सर्वस्माज्जगत उत्तरः। उत्कृष्टतरः॥ माधवभट्टास्तु वि हि सोतोरित्येषर्षिंद्राण्या वाक्यमिति मन्यंते। तथा च तद्वचनं। इंद्राण्यै कल्पितं हविः कश्चिन्मृगोऽदूदुषदिंद्रपुत्रस्य वृषाकपेर्विषये वर्तमानः। तत्रेंद्रमिंद्राणी वदति। तस्मिन्पक्षे त्वस्या ऋचोऽयमर्थः। सोतोः सोमाभिषवं कर्तुं वि ह्यसृक्षत। उपरतसोमाभिपवा आसन्यजमाना इत्यर्थ। किंच मम पतिमिंद्रं देवं नामंसत। स्तोतारा न स्तुवंति। कुत्रेति अत्राह। यत्र यस्मिन्देशे पुष्टेषु प्रवृद्धेषु धनेष्वर्यः स्वामी वृषाकपिरमदत्। मत्सखा मत्प्रियश्चेंद्रो विश्वस्मात्सर्वस्माज्जगत उत्तरः। उत्कृष्टतरः॥

अन्वय-

हि सोतो: नि असृक्षत देवम् इन्द्रं न अमंसत। यत्र वृषाकपि: अमदत् यत्र मत्सख: पुष्टंषु अर्य: इन्द्र: विश्वस्मात् उत्तरा।

हिन्दी अनुवाद-

(हि) निश्चय से (सोतो:) सबके उत्पादक परमेश्वर ने (नि असृक्षत) इस संसार को उत्पन्न किया तथापि अनेक जन (देवं) सबसे महान दिव्य गुण सम्पन्न (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् प्रभु को (न अमंसत) नहीं मानते या जानते हैं। (यत्र) जिस जगत् में (वृषाकपि:) जीवात्मा (अमदत्) आनन्दित होता है, प्रसन्न रहता है जो (मत्सरव:) मुझ जीव का मित्र है और (पुष्टेषु) लोकों में विद्यमान होकर (अर्य:) सबका स्वामी है। वह (इन्द्र:) परम ऐश्वर्यवान् प्रभु (विश्वस्मात्) सभी सांसारिक पदार्थों से (उत्तर:) उत्कृष्ट है।

भावार्थ-

परमेश्वर इन्द्र ने सभी सांसारिक पदार्थों की रचना की है और उसको सभी जानते हैं और मानते हैं। परन्तु कुछ उसको नहीं मानते। वह जीवात्मा का भी स्वामी और सखा है। वह जीवात्मा ही प्राणी रूप होकर सब सांसारिक पदार्थों में आनन्द लेता है। वह परम ऐश्वर्यवान् प्रभु ही सब पदार्थों से उत्कृष्ट है।

संहिता पाठ-

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः।

नो अह प्र विंदस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥२॥

पद पाठ-

परा। हि। इंद्र। धावसि।

वृषाकपेः। अति। व्यथिः।

नो इति। अह। प्र। विंदसि।

अन्यत्र। सोमऽपीतये।

विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥२॥

सायण भाष्य–

हे इंद्र त्वमत्यत्यंतं व्यथिश्चलितो वृषाकपेर्वृषाकपिं परा धावसि। प्रतिगच्छसि। अन्यत्र सोमपीतये सोमपानाय नो अह नैव च प्र विंदसि। प्रगच्छसीत्यर्थः। सोऽयमिंद्रो विश्वस्मादुत्तरः।

अन्वय–

इन्द्र पराहि धावसि वृषाकपेः अति व्यथिः सोमपीतये अन्यत्र नो अह प्रविन्दसि। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरा।

हिन्दी अनुवाद–

(इन्द्र) परम् ऐश्वर्यवान् हे प्रभो (परा हि) इस वृषाकपि से तुम परे ही (धावसि) दौड़ते जाते रहे हो, यह बात (वृषाकपेः) इस जीवात्मा के लिये, जो आपका सानिध्य प्राप्त करना चाहता है, (अति व्यथिः) अत्यन्त व्यथा का विषय है। (सोमपीतये) सोम रस का पान करने के लिये आनन्द प्राप्त करने के लिये (अन्यत्र) आप इन्द्र से अतिरिक्त अन्य पदार्थों या साधनों में (नो अह) वह नहीं ही है, तथा तुम (प्रविन्द सि) उस प्रभु को प्राप्त कर सकते हो। (विश्वस्मात्) सभी पदार्थों से वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य शान्ति प्रभु (उत्तरः) सबसे उत्कृष्ट है।

भावार्थ–

वह परमैश्वर्यशाली प्रभु जीवात्मा से दूर-दूर ही रहा है और यह इस जीवात्मा के लिये बहुत कष्टकारक है। इस जीवात्मा को परमेश्वर के सामीप्य से ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है। वह परम ऐश्वर्यवान् प्रभु ही सबसे उत्कृष्ट है।

संहिता पाठ–

किम॒यं त्वां वृ॒षाक॑पिश्च॒कार॒ हरि॑तो मृ॒गः।

यस्मा॑ इरस्यसी॒दु न्व१॒'र्यो वा॑ पुष्टि॒मद्वसु॒ विश्व॑स्मा॒दिंद्र॒ उत्त॑रः॥३॥

पद पाठ–

किं। अ॒यं। त्वां। वृ॒षाक॑पिः।

च॒कार॑। हरि॑तः। मृ॒गः।

यस्मै॑। इ॒र॒स्यसि॑। इत्। ऊं॒ इति॑।

नु। अ॒र्यः। वा॒। पु॒ष्टि॒ऽमत्। व॒सु॒।

विश्व॑स्मात्। इन्द्रः॑। उत्ऽत॑रः॥३॥

सायण भाष्य–

हे इंद्र त्वां प्रति हरितो हरितवर्णो मृगो मृगभूतोऽयं वृषाकपिः। मृगजातिर्हि वृषाकपिः। किं प्रियं चकार। अकार्षीत्। यस्मै वृषाकपये पुष्टिमत्पोषयुक्तं वसु धनमर्यो वोदार इव स त्वं नु क्षिप्रमिरस्यसीत् प्रयच्छस्येव। य इंद्रो विश्वस्मादुत्तरः।

अन्वय–

हरितः मृगः अयं वृषाकपिः, त्वां किं चकार, यस्मै अर्यः नु वा पुष्टिमत् वसु इरस्यसि इत्। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(हरितः) जिसकी इन्द्रियां और मन हरण किया गया है। ऐसा (मृगः) इन्द्र की खोज करने वाले (अयं) इस (वृषाकपिः) जीवात्मा ने (त्वां) तुम्हारे लिये (किं चकार) क्या कर दिया है, (यस्मै) जिसके लिये (अर्यः नु वा) एक स्वामी के समान तुम (पुष्टिमत् वसु) पुष्टि करने वाले धन ऐश्वर्य को

(इरस्यसि इत्) देते ही जाते हो। (विश्वस्मात्) संसार के सभी पदार्थों में (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यशाली प्रभु (उत्तरः) सर्वोत्कृष्ट है।

भावार्थ–

हे प्रभु! आप की ओर आकृष्ट तथा आपकी खोज करने वाले जीवात्मा ने आपके लिये अलौकिक साधना की है, जो आप उसको पुष्टिकारक धन देते ही जाते हो।

संहिता पाठ–

यमि॒मं त्वं वृ॒षाक॑पिं प्रि॒यमि॑ंद्राभि॒रक्ष॑सि।
श्वा न्व॑स्य जंभिष॒दपि॒ कर्णे॑ वरा॒हयुर्विश्व॑स्मा॒दिंद्र॒ उत्त॑रः॥४॥

पद पाठ–

यं। इ॒मं। त्वं। वृ॒षाक॑पिं।
प्रि॒यं। इं॒द्र। अ॒भि॒ऽरक्ष॑सि।
श्वा। नु। अ॒स्य॒। जं॒भि॒षत्।
अपि॑। कर्णे॑। व॒रा॒ह॒ऽयुः।
विश्व॑स्मात्। इंद्र॑ः। उत्ऽत॑रः॥४॥

सायण भाष्य–

हे इंद्र त्वं प्रियभिष्ट पुत्रं यमिमं वृषाकपिमभिरक्षसि परिपालयसि अस्यैनं वृषाकपिं। द्वितीयार्थे षष्ठी। वराहयुर्वराहमिच्छञ्श्वा नु क्षिप्रं जंभिषत्। भक्षयतु। अपि च कर्णे गृह्णात्विति शेषः। श्वानो हि वराहमिच्छंति। सिद्धमन्यत्॥

अन्वय–

इन्द्र इमं, यं प्रियं वृषाकपिं त्वम् अभिरक्षसि अस्य कर्णे अपि

वराहयुः श्वा नु जम्भिषत्। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यशाली इन्द्र परमात्मन् (इमं) इस (यं)जिस (प्रियं) प्रिय (वृषाकपिं) जीवात्मा की (त्वं) तुम (अभिरक्षसि) सब प्रकार से रक्षा करते हो (अस्य) इसके (कर्णे) कर्ण में, सभी इन्द्रियों में (वराहयुः) शूकर की कामना करने वाले (श्वा इव) कुत्ते के समान अति लोभ से अभिभूत हो (नु) निश्चय से (जम्भिषत्) अधिकार जमा लेते हो। (विश्वस्मात्) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की अपेक्षा (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यशाली प्रभु ही (उत्तरः) उत्कृष्ट है।

भावार्थ–

परम ऐश्वर्यशाली प्रभु इस जीवात्मा की सब प्रकार से रक्षा करता है। परन्तु उस पर लोभ छा जाता है, तो उसे हटा देता है। सम्पूर्ण जगत से वह परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा ही उत्कृष्ट है।

संहिता पाठ–

प्रि॒या त॒ष्टानि॑ मे क॒पिर्व्य॑क्ता॒ व्य॑दूदुषत्।
शिरो॒ न्व॑स्य राविषं॒ न सुगं॑ दुष्कृते॑ भुवं॒ विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः॥५॥

पद पाठ–

प्रि॒या। त॒ष्टानि॑। मे॒। क॒पिः।
विऽअ॑क्ता। वि। अ॒दू॒दुष॒त्।
शिर॑ः। नु। अ॒स्य॒। रा॒वि॒षं॒।
न। सुऽगं॑। दुःऽकृते॑। भु॒वं॒।
विश्व॑स्मात्। इंद्र॑ः। उत्ऽत॑रः॥५॥

सायण भाष्य-

मे मह्यमिंद्राण्यै तष्टानि यजमानैः कल्पितानि प्रिया प्रियाणिं व्यक्ता व्यक्तान्याज्यैर्विशेषेणाक्तानि हवींषि कश्चिद्वृषाकपेर्विषये वर्तमानः कपिर्व्यदूदुषत्। ततोऽहमस्य तत्कपिस्वामिनो वृषाकपेः शिरो नु क्षिप्रं राविषं। लुनीयां। दुष्कृते दुष्टस्य कर्मणः कर्त्रे वृषाकपयेऽस्मै सुगं सुखं न भुवं। अहं न भवेयं। अस्मै सुखप्रदात्री न भवामीत्यर्थः। अस्या मम पतिरिंद्रो विश्वस्मादुत्तरः।

अन्वय-

कपिः मे तुष्टानि व्यक्ता प्रिया वि अदूदुषत्। अस्य शिरः राविषम्। दुष्कृतं सुगं न भुवम्, विश्वस्यात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद-

(कपिः) कपि के समान यह जीवात्मा (मे) मुझ प्रकृति (तुष्टानि) तुष्ट अव्यक्त रूप में आये और (व्यक्ता) प्रकृति के व्यक्त रूप में आये (प्रिया) प्रिय मनोरम पदार्थों को (वि अदूदुषत्) अपनी तृष्णा से दूषित कर देता है। (अस्य) इस जीव के (शिरः) सिर को (राविषं) यह प्रकृति झुका देती है। (दुष्कृतं) दुष्कर्म करने वाले पुरुष के लिये यह प्रकृति (सुगं) सुखकारी (न भुवम्) नहीं होती। (विश्वस्मात्) विश्व के सभी पदार्थों से (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा (उत्तरः) उत्कृष्ट होता है।

भावार्थ-

एक बंदर के समान चंचल यह जीवात्मा प्रकृति के अव्यक्त तथा व्यक्त पदार्थों को लोभवश दूषित कर देता है। तब यह प्रकृति दुष्कर्म करने वाले पुरुष के लिये सुखकारी नहीं होती। विश्व के सभी पदार्थों से सर्वशक्तिमान् परमेश्वर उत्कृष्ट है।

संहिता पाठ–

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत्।

न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥६॥

पद पाठ–

न। मत्। स्त्री। सुभसत्ऽतरा।

न। सुयाशुऽतरा। भुवत्।

न। मत्। प्रतिऽच्यवीयसी।

न। सक्थि। उत्ऽयमीयसी।

विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥६॥

सायण भाष्य–

मन्मत्तोऽन्या स्त्री नारी सुभसत्तरातिशयेन सुभगा न भुवत्। न भवति। नास्तीत्यर्थः। किंच सत्तोऽन्या स्त्री सुयाशुतरातिशयेन सुसुखातिशयेन सुपुत्रा वा न भवति। तथा च मंत्रांतरं। ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता। ऋ.१.१२६.६। इति। किंच मन्मत्तोऽन्या प्रतिच्यवीयसी पुमांसं प्रति शरीरस्यात्यंतं च्यावयित्री नास्ति। किंच मत्तोऽन्या स्त्री सक्थ्युद्यमीयसी संभोगेऽत्यंतमुत्क्षेप्सी नास्ति। न मत्तोऽन्या काचिदपि नारी मैथुनेऽनुगुणं सक्थ्युद्यच्छतीत्यर्थः। मम पतिरिंद्रो विश्वस्मादुत्तरः। उत्कृष्टः।

अन्वय–

मत्स्त्री सुमभुत्तरा न सुयाशुत्तरा न भुवत् मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थि उत् यवीयसी न। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(मत्स्त्री) मुझ प्रकृति की अपेक्षा अन्य कोई स्त्री (सुमभुतरा) कान्ति

वाली (न) नहीं है। (सुयाशुत्तरा) अतिशय सुख देने वाली (न) नहीं (भुवत्) होती है। (मत् प्रतिच्यवीयसी) मुझसे अधिक पति के प्रति शरीर को अधिक अर्पित करने वाली नहीं है और न ही(सक्थिं) जांघों को (उद्यवीयसी) उठाकर आसक्त करने वाली है। (विश्वस्मात्) विश्व के सभी पदार्थों से (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् प्रभु ही (उत्तरः) सर्वोत्कृष्ट है।

भावार्थ–

इस प्रकृति की अपेक्षा अन्य कोई स्त्री कान्ति सम्पन्न नहीं है, अतिशय संग और सुख देने वाली नहीं है, पति के प्रति समर्पित होने वाली नहीं है और भोगों में फंसाने वाली नहीं है। परम ऐश्वर्यशाली इन्द्र ही सब पदार्थों से सर्वोत्कृष्ट है।

संहिता पाठ–

उवे अंब सुलाभिके यथेवांग भविष्यति।
भसन्मे अंब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥७॥

पद पाठ–

उवे। अंब। सुलाभिके।
यथाऽइव। अंग। भविष्यति।
भसत्। मे। अंब। सक्थि। मे।
शिरः। मे। विऽईव। हृष्यति।
विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥७॥

सायण भाष्य–

एवमिंद्राण्या शप्तो वृषाकपिर्ब्रवीति। उवे इति संबोधनार्थो निपातः। हे अंब मातः सुलाभिके शोभनलाभे त्वया यथैव येन प्रकारेणैवोक्तं तथैव तदंग

क्षिप्रं भविष्यति। भवतु। किमनेन त्वदनुप्रीतिकारिणा ग्रहेण मम प्रयोजनं। किंच मे मम पितुस्त्वदीयो भसद्भग उपयुज्यतां। किंच मम पितुस्त्वदीयं सक्थि चोपयुज्यतां। किंच मे मम पितरमिंद्रं त्वदीयं शिरश्च प्रियालापेन वीव यथा कोकिलादिः पक्षी तद्वद्हृष्यति। हर्षयतु। मम पितेंद्रो विश्वस्मादुत्तरः॥

अन्वय-

उवे अम्ब सुलाभिके अंग यथा इव भविष्यति। अंब मे भसत् मे सक्थि मे शिरः वि इव हृष्यति। विश्वस्यात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद-

(उवे) हे (अम्ब) जगज्जननी प्रकृति (सुलाभिके) शोभन लाभ देने वाली (अंग) हे प्रिय! (यथा इव) जैसी भी हो, वैसी (भविष्यति) होगी (मे) मुझ जीव की (भसत्) जननेन्द्रिय ही (अम्ब) हे जननि! (मे) मेरी (सक्थि) जंघा हो (मे) मेरा (शिरः) सिर हो (वि इव) कोकिल पक्षी के समान (हृष्यति) मुझे हर्षित करो। (विश्वस्मात्) सम्पूर्ण विश्व से (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यशाली प्रभु (उत्तरः) सर्वश्रेष्ठ है।

भावार्थ-

यह प्रकृति ही जगत् की जननी है और लाभ करने वाली है। जैसी भी हो, मुझ जीव की यह माता है। वह मेरी प्रजनन इन्द्रिय है। मेरी जांच और मेरा सिर है। कोकिल पक्षी के समान मुझको हर्षित करती है। परम ऐश्वर्यशाली प्रभु ही सर्वोत्कृष्ट है।

संहिता पाठ-

किं सुबाहो स्वंगुरे पृथुष्टो पृथुजाघने।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥८॥

पद पाठ–

किं। सुबाहो इतिं सुऽबाहो। सुऽअंगुरे।

पृथुस्तो इति पृथुऽस्तो। पृथुऽजघने।

किं। शूरऽपत्नि। नः। त्वं।

अभि। अमीषि। वृषाकपिं।

विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥८॥

सायण भाष्य–

क्रुद्धामिंद्र उपशमयति। हे सुबाहो हे शोभनबाह्वो स्वंगुरे शोभनांगुलिके पृथुष्टो पृथुकेशसंघाते पृथुजघने विस्तीर्णजघने श्रूरपत्नि वीरभार्ये हे इंद्राणि त्वं नोऽस्मदीयं वृषाकपिं किमर्थमभ्यमीषि। अधिक्रुधसि। एकः किंशब्दः। यस्य पितेंद्रोऽहं विश्वस्मादुत्तरः॥

अन्वय–

सुबाहो स्वङ्गुरे पृथष्टो पृथुजाघने शूरपत्नि त्वं नः वृषाकपिं किम् अभ्यमीषि विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(सुबाहो)सुन्दर भुजाओं वाली (स्वङ्गुरे)उत्तम अङ्गों वाली (पृथुष्टे)विशाल केशों वाली (पृथुजाघने)विशाल जघनों वाली (शूरपत्नि)वीरपुरुष की पत्नी रूप (त्वं)तू प्रकृति रूप नारी (नः)हमारे मध्य (वृषाकपिं)जीवात्मा रूप पुरुष को (किंम्)किस कारण से (अभ्यमीषि)पीड़ित करती हो। (विश्वस्मात्)सम्पूर्ण विश्व से (इन्द्रः)परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा (उत्तरः)उत्कृष्ट है।

भावार्थ –

उत्तम भुजाओं वाली, सुन्दर अङ्गों वाली, विशाल केशों वाली,

विशाल जघनों वाली और वीर पुरुष की पत्नि रूप यह प्रकृति रूप नारी हमारे मध्य जीवात्मा रूप पुरुष को क्यों पीड़ित करती है, क्यों उसके प्रति वह आसक्त रहता है। वह परमेश्वरशाली परमात्मा ही सबसे उत्कृष्ट हैं।

संहिता पाठ–

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते।

उताहमस्मि वीरिणींद्रपत्नी मरूत्सखा विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥९॥

पद पाठ–

अवीराऽइव। मां अयं।

शरारुः। अभि। मन्यते।

उत। अहं। अस्मि। वीरिणीं।

इंद्रऽपत्नी। मरुत्ऽसखा।

विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥९॥

सायण भाष्य–

पुनरिंद्रमिंद्राणी ब्रवीति। शरारुर्घातुको मृगोऽयं वृषाकपिर्मामिंद्राणी-मवीरामिवाभि मन्यते। विजानाति। उतापि चेंद्रपत्नींद्रस्य भार्याहमिंद्राणी वीरिणी पुत्रवती मरुत्सखा मरुद्भिर्युक्ता चास्मि। भवामि। यस्या मम पतिरिंद्रो विश्वस्मादुत्तरः॥

अन्वय–

शरारुः अयं माम् अवीराम् इव अभिमन्यते। उत अहं वीरिणी इन्द्रपत्नी मरुत्सखा अस्मि। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(शरारु :)हिंसक पशु के समान (अयं)यह (वृषाकपि:)जीवात्मा (मां)मुझ प्रकृति को (अवीराम् इव) वीर पुत्र से रहित बन्ध्या नारी के समान (अभिमन्यते) मानता है। (उत)और जबकि (अहं)मैं यह प्रकृति (वीरिणी)वीर पुत्र सन्तान से युक्त हूँ और (इन्द्रपत्नी)परमेश्वरी परमेश्वर इन्द्र की पत्नी सहायिका और (मरुत्सखा) मरुत् नामक जीवों की सखा केसमान (अस्मि)हूँ। (विश्वास्मात्)विश्व के सभी पदार्थो से (इन्द्र:)परमेश्वरशाली प्रभु परमेश्श्वर ही (उत्तर:)उत्कृष्ट है।

भावार्थ –

हिंसक पशु के समान यह जीवात्मा परमेश्वर इन्द्र की पत्नी रूप और मरुत् नामक जीवों की सखारूपा प्रकृति नारी को पुत्र रहित बन्ध्या के समान मानता है, जबकि वह पुत्रवती है। इस मन्त्र से आदि कारण परमेश्वर, प्रकृति और जीवात्मा एवं आदि मूल तत्वों और त्रैतवाद की सिद्धि होती है।

संहिता पाठ–

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणीद्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिंद्र उत्तर:॥१०॥

पद पाठ–

संऽहोत्रं। स्म। पुरा। नारीं।
समनं। वा। अव। गच्छति।
वेधा:। ऋतस्य। वीरिणीं।
इंद्रऽपत्नी। महीयते।
विश्वस्मात् इंद्र:। उत्ऽतर:॥१०॥

सायण भाष्य–

नारी स्त्र्यृतस्य सत्यस्य वेधा विधात्री वीरिणी पुत्रवतीद्रपत्नींद्रस्य भार्येंद्राणी संहोत्रं स्म समीचीनं यज्ञं खलु समनं वा संग्रामं। समनमिति संग्रामनामसु पाठात्। अव प्रति पुरा गच्छति। महीयते। स्तोतृभिः स्तूयते च। तस्या मम पतिरिंद्रो विश्वस्मादुत्तरः॥

अन्वय–

पुरा नारी संहोत्रं अवगच्छति स्म वा समनम्। ऋतस्य वेधा वीरिणी इन्द्रपत्नी महीयते। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(पुरा) पूर्वकाल में, सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व समय में (नारी) परम परमेश्वर की पत्नी रूप यह स्त्री (संहोत्रं) सृष्टि उत्पत्ति के बीज शक्ति को (अव गच्छति स्म) प्राप्त करती है। (वा) अथवा (समनं) संसर्ग को प्राप्त करती है। वह (ऋतस्य) प्राकृतिक रूप से सृष्टि क्रम के नियम की (वेधा) विधात्री हैं और (वीरिणी) वीर पुत्रों की जननी होकर (इन्द्रपत्नी) पुरुष रूप परमेश्वर की सहायिका होकर (महीयते) महिमा को प्राप्त करती है। (विश्वस्मात्) विश्व की सभी शक्तियों और पदार्थों से (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर (उत्तरः) श्रेष्ठ है।

भावार्थ–

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व अवस्था में प्रकृति रूप नारी पुरुष रूप परमेश्वर के सृष्टि उत्पत्ति के शक्तिरूप बीज को ग्रहण करती है। अतः सृष्टि के सभी पदार्थों की उत्पादिका है, इस प्रकार वह इन्द्र की पत्नी है और उसकी महिमा है। वह इन्द्र सबसे उत्कृष्ट है।

संहिता पाठ–

इंद्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवं।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिंद्र उत्तरः ॥११॥

पद पाठ–

इंद्राणीं। आसु । नारिषु।
सुऽभगां। अहं। अश्रवं।
नहि। अस्याः। अपरं। चन।
जरसा। मरते। पतिः।
विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥११॥

सायण भाष्य–

अथेंद्राणीमिंद्रः स्तौति। आसु सौभाग्यवत्तया प्रसिद्धासु नारिषु स्त्रीणां मध्य इंद्राणीं सुभगां सौभाग्यवतीमहमिंद्रोऽश्रवं। अश्रौषं। किंचास्या इंद्राण्याः पतिः पालको विश्वस्मादुत्तर उत्कृष्टतर इंद्रोऽपरं चनान्यद्भूतजातभिव जरसा वयोहान्या न हि मरते। न खलु म्रियते। यद्वा। इदं वृषाकपेर्वाक्यं। तस्मिन्पक्षे त्वहमिति शब्दो वृषाकपिपरतया योज्यः। अन्यत्समानं॥

अन्वय–

आसु नारिषु अहम् इन्द्राणीं सुभगाम् अश्रवम्। अपरं चन अस्याः पतिः जरसा न मरते। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(आसु)इन (नारिषु)नारियों में (अहम्) मैं (इन्द्राणीम्)प्रकृति रूप इन्द्राणी को (सुभगाम्)सबसे अधिक सुखद ऐश्वर्यशाली (अश्रवम्)सुनता हूँ। (अपरंचन)और इससे अधिक बात यह है कि (अस्याः) इस इन्द्राणी का

(पतिः)पालक पति इन्द्र (जरसा)जीर्ण कर देने वाले काल से (न)नहीं (मरते)मृत नहीं होता। (विश्वस्मात्)विश्व की सभी शक्तियों से (इन्द्रः)परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर (उत्तरः)उत्कृष्ट है।

भावार्थ–

विश्व की सभी नारियों में इन्द्राणी सबसे श्रेष्ठ ऐश्वर्य से सम्पन्न है। इससे श्रेष्ठ कोई नहीं है। इसका पालक परमेश्वर इन्द्र है। वह कभी जीर्ण नहीं होंता। काल का उस पर प्रभाव नहीं होता। वह अजर और अमर है।

संहिता पाठ–

नाहमिंद्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते।

यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥१२॥

पद पाठ–

न। अहं। इंद्राणि। ररण।

सख्युः। वृषाकपेः। ऋते।

यस्यं। इदं। अप्यं। हविः।

प्रियं। देवेषु। गच्छंति।

विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥१२॥

सायण भाष्य–

हे इंद्राणि अहमिंद्रः सख्युर्मम सखिभूताद्वृषाकपेर्ऋते प्रियं वृषाकपिं विना न ररण। न रमे। अयमप्सु भवमद्भिर्वा सुसंस्कृतं प्रियं प्रीतिकरमिदमुपस्थितं हविर्देवेषु देवानां मध्ये यस्य ममेंद्रस्य सकाशं गच्छति। यश्चाहमिद्रः सर्वस्मादुत्तरः। यद्वा। अयमर्थः। हे इंद्राणि वृषाकपेः सख्युरिंद्रादृतेऽहं वृषाकपिनं रारण। न रमे। अन्यत्समानं॥

अन्वय–

इन्द्राणि! अहं सख्युः वृषाकयेः ऋते न ररण। यस्य इदम् अप्यं प्रियं हविः देवेषु गच्छति। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(इन्द्राणि) हे प्रकृति की शक्तिरूप इन्द्राणि! (अहं) मैं पुरुष रूप इन्द्र (सख्युः) मित्र रूप (वृषाकयेः) जीवात्मा के (ऋते) विना (न) नहीं (ररण) रमण नहीं करता। इस प्रकृति को व्यक्त नहीं करता। (यस्य) जिस मुझ पुरुष परमेश्वर का (इदं) यह जगत् (अप्यं) जल रूप परमाणुओं से निर्मित (प्रियं) प्रिय (हविः) भोग्य प्रकृति रूप हवि (देवेषु) देवताओं को, प्राणियों की इन्द्रियों को (गच्छति) प्राप्त होता है। (विश्वस्मात्) विश्व की सभी शक्तियों से (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर (उत्तरः) उत्कृष्ट है।

भावार्थ–

ईश्वर की यह सृष्टि रचना का उपादान तो प्रकृतिरूप इन्द्राणी है। परन्तु यह सृष्टि रचना बिना जीवात्मा के नहीं हो सकती। यह सृष्टि परमाणुओं की रचना है। उनमें भी सबसे उत्कृष्ट जल के परमाणु हैं। ये परमाणु ही सृष्टि यज्ञ की हवि हैं और सभी भोगों को प्रदान करते हैं।

संहिता पाठ–

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे।
घसत्त इंद्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥१३॥

पद पाठ–

वृषाकपायि। रेवति। सुऽपुत्रे।
आत्। ऊं इति। सुऽस्नुषे।

घसत्। ते। इन्द्रः। उक्षणः। प्रियं।
काचित्ऽकरं। हविः।
विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः।।१३।।

सायण भाष्य–

यद्वा वृषाकपे मर्म पत्नि हे वृषाकमापि! कामनां वर्षकत्वादभीष्टदेशमनाच्चेन्द्रा वृषाकपिः तस्य मातरित्यर्थः। रेवति धनवति सुपुत्रे शोभनपुत्रे सुस्नुषे शोभनस्नुषे हे इंद्राणि ते तवायमिंद्र उक्षणः सेचनसमर्थानाननंतरमेव। शीघ्रमेवेत्यर्थः। पशून्घसत्। प्राश्नात्। किंच काचित्करं। कं सुखं। तस्याचित् संघः। तत्करं हविः प्रियमिष्टं कुर्विति शेषः। किंच ते पतिरिंद्रो विश्वस्मादुत्तरः। तथा च यास्कः। वृषाकपायि रेवति सुपुत्रे मध्यमेन सुस्नुषे माध्यमिकया वाचा स्नुषा साधुसादिनीति वा साधुसानिनीति वा। प्रियं कुरुष्व सुखाचयकरं हविः सर्वस्माद्य इंद्र उत्तरः। नि.१२.९.। इति।।

अन्वय–

रेवति सुपुत्रे सुस्नुषे वृषाकपायि प्रियं काचित्करं ते हविः आत् ऊं उक्षणाः इन्द्रः घसत्। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(रेवति) हे ऐश्वर्योंकी स्वामिनी! (सुपुत्रे) श्रेष्ठ पुत्रों या कार्यों वाली (सुस्नुषे) शोभन सुख देने वाली (वृषाकपायि) जीवों को भोग प्रदान करने वाली, प्रकृति शक्ति इन्द्राणि! (प्रियं) प्रिय लगने वाले (काचित्करं) सुख देने वाले (ते)तेरे निमित्त किये गये (हविः) आहूत पदार्थों को (आत् ऊं) और भी (उक्षणाः) मुख आदि साधनभूत शरीर को (इन्द्रः) वह परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा (घसत्) खा जाता है, प्रलयकाल में नष्ट कर देता है। (विश्वस्मात्) विश्व के सभी पदार्थों और शक्तियों में (इन्द्रः) परमेश्वर्यशाली परमात्मा (उत्तरः) उत्कृष्ट है।

भावार्थ–

परमेश्वर प्रकृति को सभी प्रकार की सुखदायी शक्तियां प्रदान करता है। वह नानविध भोग देने वाले पदार्थ देता है। परन्तु प्रलय काल में इन पदार्थों को नष्ट कर देता है, इनको रखा जाता है।

संहिता पाठ–

उक्ष्णो हि मे पंचदश साकं पचंति विंशतिं।

उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणंति मे विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥१४॥

पद पाठ–

उक्षणः। हि। मे। पंचऽदश।

साकं। पचंति। विंशतिं।

उत। अहं। अद्मि। पीवः।

इत्। उभा। कुक्षी इति। पृणंति। मे।

विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥१४॥

सायण भाष्य–

अथेंद्रो ब्रवीति। मे मदर्थं पंचदश पंचदशसंख्याकान् विंशतिं विंशतिसंख्याकांश्चोक्ष्णो वृषभान् साकं सह मम भार्ययेंद्राण्या प्रेरिता यष्टारः पचंति। उतापि चाहमद्मि। तान्भक्षयामि। जग्ध्वा चाहं पीव इत् स्थूल एव भवामीति शेषः। किंच मे ममोभोभौ कुक्षी पृणंति। सोमेन पूरयंति यष्टारः। सोऽहमिंद्रः। सर्वस्मादुत्तरः।

अन्वय–

पञ्चदश मे, उक्ष्णः विंशतिम् साकं हि पचन्ति उत मे उभा कुक्षी

पृणन्ति अहं पीव इत् अद्मि। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद-

(पञ्चदश) दस प्राण और पांच महाभूत= पन्द्रह पदार्थ (मे) मेरे द्वारा बनाये गये (उक्ष्णः) सुखों के कर्मठ शरीरों के अङ्ग (विंशतिम्) बीस अङ्गों को (साकं) साथ ही (पचन्ति) परिपक्व करते हैं। (उत) और (उभा कुक्षी) दोनों पार्श्वों में (पृणन्ति) पूर्ण करते हैं। (अहं) मैं (पीव इत्) परिपुष्ठ होकर सबको प्रलय काल में (अद्मि) भक्षण कर लेता है। (विश्वस्मात्) सम्पूर्ण विश्व की शक्तियों और पदार्थों से (इन्द्रः) परमेश्वर्यशाली परमात्मा ही (उत्तरः) उत्कृष्ट है।

भावार्थ-

पञ्च प्राण और पञ्च महाभूत मुझ परमेश्वर द्वारा बनाये गये बीस अङ्ग परिपक्व करके पुष्ट करते हैं और शरीर के दोनों पार्श्वों को परिपुष्ट करते हैं। प्रलयकाल के उपस्थित होने पर वह परमेश्वर इस सबको नष्ट कर देता है और खा जाता है।

संहिता पाठ-

वृषभो न तिग्मशृंगोऽतर्यूथेषु रोरुवत्।
मंथस्त इंद्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥१५॥

पद पाठ-

वृषभः। न। तिग्मऽशृंगः।
अंतः। यूथेषु। रोरुवत्।
मंथः। ते। इंद्र। शं। हृदे। यं।
ते। सुनोति। भावयुः।
विश्वस्मात्। इंद्रः। उतऽतरः॥१५॥

सायण भाष्य-

अथेंद्राणी ब्रवीति। तिग्मश्रृंगस्तीक्ष्णश्रृंगो वृषभो न यथा वृषभो यूथेषु गोसंधेष्वंतर्मध्ये रोरुवच्छब्दं कुर्वन् गा अभिरमयति तथा हे इंद्र त्वं मामभिरमयेति शेषः। किंच हे इंद्र ते तव हृदे हृदयाय मंथो दध्नो मथनवेलायां शब्दं कुर्वञ्शं शंकरो भवत्विति शेषः। किंच ते तुभ्यं यं सोमं भावयुर्भावमिच्छंतींद्राणी सुनोति अभिषुणोति सोऽपि शंकरो भवत्वित्यर्थः। मम पतिरिंद्रो विश्वस्मादुत्तरः।।

अन्वय-

न तिमयशृङ्गः वृषभः यूथेमु अन्तः रोरुवत् इन्द्रः भावयुः यं ते सुनोति मन्थः हृदे शं विश्वस्मात् इन्द्र, उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद-

(न) जिस प्रकार (तिग्मशृङगः)तीखे सींगों वाला (वृषमः)बैल (यूथेषु) गौओं के समूहों के (अन्तः)अन्दर (रोरुवत्)गर्जनकरता हुआ रमण करता है उसी प्रकार यह जीवात्मा तुम प्राकृतिक शरीरों के मध्य में शब्द करता हुआ है, रमण करता है। (इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली परमेश्वर (भावयुः)भावनाओं से भरा हुआ यह स्तोता (यं)जिसको(ते)तुम्हारी प्राप्ति के लिए(सुनोति)स्तुति करता है, वह (ते मन्थः)तुम्हारी प्राप्ति का ज्ञान (हृदे)स्तुति करने वाले के हृदय में (शं)कल्याणकारी हो। (विश्वस्मात्)सम्पूर्ण विश्व की शक्तियों और पदार्थो से (इन्द्रः)वह परमेश्वरर्यशाली परमात्मा (उत्तरः)उत्कृष्ट है।

भावार्थ -

जैसे तीखे सीगों वाला बैल गौओं के समूह के मध्य में गरजता हुआ रमण करता है, वैसे ही यह जीवात्मा प्रकृति के शरीरावयवों के मध्य में शब्द करता है। भावनाओं से भरा हुआ भगवान्का भक्त तुझ इन्द्र को प्राप्त

करने के लिये स्तुति करता है, तो वह ज्ञान भक्त के लिए कल्याणकारी होवें। विश्व के सभी पदार्थों और शक्तियों से वह परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर उत्कृष्ट है

संहिता पाठ–

न सेशे यस्य रंबतेऽन्तरा सक्थ्याइ'कपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषों विजृंभते विश्वस्मादिंद्र उत्तरः ॥१६॥

पद पाठ–

न । सः। ईशे। यस्य। रंबते।
अंतरा। सक्थ्या। कपृत्।
सः। इत्। ईशे। यस्य। रोमशं।
निऽसेदुषः विऽजृंभते।
विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥१६॥

सायण भाष्य–

हे इंद्र स जनो नेशे मैथुनं कर्तु नेष्टे न शक्नोति यस्य जनस्य कपृच्छेपः सक्थ्या सक्थिनो अंतरा रंबते लंबते। सेत् स एव स्त्रीजन ईशे मैथुनं कर्तुं शक्नोति यस्य जनस्य निषेदुषः शयानस्य रोमशमुपस्थं विजृंभते विवृतं भवति। यस्य च पतिरिंद्रो विश्वस्मादुत्तरः॥

अन्वय–

सः न ईशे यस्य कपृत् सक्थ्या अन्तरा रम्वते, सः इत् ईशे निषेदुषः, यस्य रोमशं विजृम्भते विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(सः) वह जीवात्मा (न)नहीं (ईशे)अपनी इन्द्रियों आदि पर

शासन कर सकता (यस्य) जिसका (कपृत्) प्रजनन इन्द्रिय (सक्थ्या) स्त्री की जांघों के (अन्तरा) मध्य में (रम्वते)निरन्तर लटकता रहता है। (सः इत्) वह जीवात्मा ही (ईशे)अपनी इन्द्रियों पर शासन कर सकता है (निषेदुषः)स्थिर रूप से शयन करने वाले (यस्य)जिस जीवात्मा का प्रजनन इन्द्रिय (रोमशं)रोमों से युक्त स्त्री के प्रजनन इन्द्रिय में (विजृम्भते)विशेष रूप लपलपाया रहता है। (विश्वस्मात्) संसार के सभी पदार्थो और शक्तियों से (इन्द्रः) सर्वशक्तिमान परमेश्वर (उत्तरः) उत्कृष्ट है।

भावार्थ -

वह मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर शासन नहीं कर सकता जो अपनी स्त्री के साथ निरन्तर संभोग में लगा रहता है। स्थिर रूप से स्थित होकर जो अपनी स्त्री के साथ संभोग करता है, वही अपनी इन्द्रियों पर शासन कर सकता है।

संहिता पाठ-

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृंभते।
सेदीशे यस्य रंबतेऽंतरा सक्थ्या३'कपृद्विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥१७॥

पद पाठ-

न। सः। ईशे। यस्य।
रोमशं। निऽसेदुषः। विऽजृंभते।
सः। इत्। ईशे। यस्य। रंबते।
अंतरा। सक्थ्या। कपृत्।
विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥१७॥

सायण भाष्य-

स जनो नेशे मैथुनं कर्तुं नेष्टे यस्य जनस्य निषेदुषः शयानस्य रोमशमुपस्थं विजृंभते विवृतं भवति। सेत् स एव जन ईशे मैथुनं कर्तुं शक्नोति यस्य जनस्य कपृत् प्रजननं सक्थ्या सक्थिनी अंतरा रंबते लंबते। सिद्धमन्यत्। पूर्वोक्तव्यतिरेकोऽत्र द्रष्टव्यः। पूर्वस्यामृचि यियप्सुरिंद्राणीद्रं वदति अत्र त्वयियप्सुरिंद्र इंद्राणीं वदतीत्यविरोधः॥

अन्वय-

सः न ईशे विषेदुषः यस्य रोमशं विजृम्भते, सः इत् ईशे यस्य कपृत् सक्थ्या अन्तरा रम्बते। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद-

(सः)वह जीवात्मा (न)वहीं (ईशे)अपनी इन्द्रियों पर शासन कर सकता है, (निषेदुषः)शय्या पर स्थिर लेटे हुये (यस्य) जिसका जननेन्द्रिय (रोमशं)रोमो से भरे हुये स्त्री की जननेन्द्रिय में (विजृम्भते)संभोग से पूर्व ही वीर्य से व्युत हो जाता है। (सः इत्)निश्चय से वह ही (ईशे)अपनी इन्द्रियों पर शासन कर सकता है, (यस्य)जिस जीवात्मा का (कपृत्)शिश्न इन्द्रिय (सक्थ्या)नारी की जाघों के (अन्मरा)मध्य में (रम्बते)रमण कर सकता है। (विश्वस्मात्)विश्व के सभी पदार्थो और शक्तियों से (इन्द्रः)परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर (उत्तरः)उत्कृष्ट है।

भावार्थ-

पत्नी के साथ संभोग और प्रजनन में वह पुरुष समर्थ नहीं हो सकता,जिसका वीर्य सम्भोग से पहले च्युत हो जाता है। वह ही सम्भोग और सन्तानोत्पत्ति में समर्थ हो सकता है, जो पत्नी की जांघों के मध्य में अपनी जननेन्द्रिय का प्रवेश कर सकता है।

संहिता पाठ–

अयमिंद्र वृषाकपिः परस्वंतं हतं विदत्।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥१८॥

पद पाठ–

अयं। इंद्र। वृषाकपिः।
परस्वंतं। हतं। विदत्।
असिं। सूनां। नवं। चरुं ।
आत्। एधस्य। अनः। आऽचितं।
विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः ॥१८॥

सायण भाष्य–

हे इंद्र अयं वृषाकपिः परस्वंतं परस्वमात्मनो विषयेऽवर्तमानं हतं हिंसितं विदत्। विंदतु। तथा हतस्य विशसनायासिं शस्त्रं सूनामुड्यानं पाकार्थ नवं प्रत्यग्रं चरुं भांडमादनंतरमेधस्य काष्ठस्याचितं पूर्णमनः शकटं च विंदतु। मम पतिरिंद्रो विश्वस्मादुत्तरः॥

अन्वय–

इन्द्र अयं वृषाकपिः असिं सूनां नवं चरुं एधस्य आचितम् अनः आत् परस्वन्तं हतं विदत्। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(इन्द्र)परम ऐश्वर्यशाली हे परमात्मन् (अयं) यह (वृषाकपिः)जीवात्मा (असिं)अज्ञान के विनाशक (सूनां) ज्ञान को (नवं)नवीन (चरुं)यज्ञपात्र को (एधस्य)प्रकाशमान अन्तःकरण के (आचितम्)ज्ञान से परिपूर्ण (अनः)राकट को जान समझ ले, (आत्)उसके पश्चात् ही (परस्वन्तं)आत्मा-परमात्मा विषयक

अतान को (हतं)विनष्ट हुआ (विदत्)जाने। (विश्वस्मात्)विश्व के सभी पदार्थो और शक्तियों से (इन्द्रः)परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा (उत्तरः)उत्कृष्ट है।

भावार्थ –

हे परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर! आत्मा को प्रथम अज्ञान के नाशक ज्ञान से अपने अन्तःकरण को प्रकाशित करना चाहिये।उसके पश्चात् ही वह आत्मा-परमात्मा विषयक अज्ञान को दूर कर सकता है।

संहिता पाठ–

अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन्दासमार्यं।

पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥१९॥

पद पाठ–

अयं। एमि। विऽचाकशत्।

विऽचिन्वन्। दासं। आर्यं।

पिबामि। पाकऽसुत्वनः।

अभि।धीरं। अचाकशं।

विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥१९॥

सायण भाष्य–

अथेंद्रो ब्रवीति। विचाकशत् पश्यन्यजमानान् दासमुपक्षपयितारम-सुरमार्यमपि च विचिन्वन् पृथक्कुर्वन्नयमहमिंद्र एमि। यज्ञं प्रति गच्छामि। यज्ञं गत्वा च पाकसुत्वनः। पचतीति पाकः। सुनोतीति सुत्वा। हविषां पक्तुः सोमस्याभिषोतुर्यजमानस्य पाकेन विपक्केन मनसा सोमस्याभिषोर्तुवा यजमानस्य संबंधिनं सोमं पिबामि। तथा धीरं धीमंतं यजमानमभ्यचाकशं।

अभिपश्यामि। योऽहमिंद्रो विश्वस्मादुत्तरः॥

अन्वय-

विचिन्वन् विचाकशत् अयं दासम् आर्यम् एमि पाकसुत्वनः पिबामि। धीरम् अभि अचाकशं विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद-

(विचिन्वन्)ज्ञान और कर्म का संचय करता हुआ (विचाकशत्)ज्ञान से प्रकाशित होकर (अयं)यह मैं जीव (दासं)सुखों को देने वाले (आर्यम्)सबसे श्रेष्ठ परमात्मा के समीप(एमि)जाता हूँ, उसको प्राप्त करता हूँ। (पाकसुत्वनः)इस पवित्र उत्पन्न ज्ञान का मैं (पिबामि)पान करता हूँ। (धीरं) धीर उस प्रभु का मैं (अभि)सब ओर से मैं(अचाकशम्)साक्षात्कार करता हूँ।(विश्वस्मात्)विश्व के सभी पदार्थो और शक्तियों से (इन्द्रः)परम ऐश्वर्यशाली वह परमात्मा (उत्तरः) उत्कृष्ट है।

भावार्थ-

ज्ञान और कर्म से यह जीवात्मा शक्तिसम्पन्न होता है और ज्ञान से प्रकाशित होता है। वह सब सुखों कोदेने वाले श्रेष्ठ परमेश्वर को प्राप्त करता है। पवित्र ज्ञान का पान कर जीवात्मा परम प्रभु का साक्षात्कार करता है।

संहिता पाठ-

धन्वं च यत्कृंतत्रं च कतिं स्वित्ता वि योजना।

नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहिं गृहाँ उप विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥२०॥

पद पाठ-

धन्वं । च। यत्। कृंतत्रं। च।

कतिं। स्वित्। ता। वि। योजना।

नेदीयसः। वृषाकपे।
अस्तं। आ। इहि। गृहान्। उप।
विश्वस्मात् । इंद्रः। उत्ऽतरः॥२०॥

सायण भाष्य–

धन्वं निरुदकोऽरण्यरहितो देशः। कृंतत्रं कर्तनीयमरण्यं। यद्यच्च धन्वं च कृतत्रं च भवति। मृगोद्वासमरण्यमेवंविधं भवति न त्वत्यंतविपिनं। तस्य शत्रुनिलयस्यास्मदीयगृहस्य च मध्ये कति स्वित्ता। तानि योजना योजनानि स्थितानि। नात्यंतदूरे तद्भवतीत्यर्थः। अतो नेदीयसोऽतिशयेन समीपस्थाच्छत्रुनिलयात् हे वृषाकपे त्वमस्तमस्माकं गृहं व्येहि। विशेषेणागच्छ। आगत्य च गृहान्यज्ञगृहानुपगच्छ। यतोऽहमिंद्रः सर्वस्मादुत्कृष्टः।

अन्वय–

वृषाकपे धन्वं च कृन्तंत्र च ता कति स्वित् वियोजना। नेदीयसः अस्तम् आ इहि गृहान् उप। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(वृषाकपे) हे जीवात्मा! (धन्वं) रेतीले प्रदेश के (कृंतन्त्रं च) और अरण्य प्रदेश के समान (ता) वे (कति स्वित्) कई (वियोजना) जीव के योग और वियोग वाले शरीरों के (नेदीयसः) समीप विद्यमान परमेश्वर के (अस्तम्) शरण को (आ इहि) प्राप्त कर और (गृहान् उप) शरीररूपी घरों को पुनः प्राप्त कर (विश्वस्मात्) विश्व की सब शक्तियों और पदार्थों से (इन्द्रः) वह परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा (उत्तरः) श्रेष्ठ है।

भावार्थ–

हे जीव ! तुम्हारे ये सब शरीर रेतीले और अरण्य की भूमियों के समान हैं। भगवान् सबके समीप रहता है। तुम उसकी शरण में जाओ और

इन शरीरों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करो। वह परम ऐश्वर्यशाली प्रभु सबसे उत्कृष्ट है।

संहिता पाठ–

पुनरेहिं वृषाकपे सुविता कल्पयावहै।

य एष स्वप्नंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥२१॥

पद पाठ–

पुनः। आ। इहि। वृषाकपे।

सुविता। कल्पयावहै।

यः। एषः। स्वप्नऽनंशनः।

अस्तं। एषि। पथा। पुनः।

विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥२१॥

सायण भाष्य–

आगत्य प्रतिगतं वृषाकपिमिंद्रो ब्रवीति। हे वृषाकपे त्वं पुनरेहि। अस्मान्प्रत्यागच्छ। आगते च त्वयि सुविता सुवितानि कल्याणानि त्वच्चित्तप्रीतिकराणि कर्माणि कल्पयावहै। इंद्राण्यहं चावामुभौ पर्यालोच्य कुर्याव। किंच यः स्वप्ननंशन उदयेन सर्वस्य प्राणिनः स्वप्ननां नाशयितादित्यः स एष त्वं पथा मार्गेणास्तमात्मीयमावासं पुनरेषि। गच्छसि। यतोऽहमिंद्रो विश्वस्मादुत्तरः। तथा च यास्कः। सुप्रसूतानि वः कर्माणि कल्पयावहै य एष स्वप्ननंशनः स्वप्नन्नाशयस्यादित्य उदयेन सोऽस्तमेषि पथा पुनः॥ नि० १२.२८.। इति॥

अन्वय–

वृषाकपे पुनः आ इति। सुविताय कल्पयावहै। यः एषः स्वप्ननंशनः।

पथा पुनः अस्तम् एषि। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(वृषाकपे) हे जीवात्मा! तुम (पुनः आ इहि) पुनः इस शरीर में आओ। हम इस प्रकृति में तुम्हारे (सुविताय) स्थूल शरीर और भोगों को (कल्पयावहै) पुनः बनाते हैं। (यः) जो (एषः) यह (स्वप्ननंशनः) स्वप्नों का विनाश करने वाला है। उस (पथा) मार्ग से (पुनः) फिर (अस्तम्) शरीर रूपी घर में प्रकृति की शरण में (एषि) आते हो। (विश्वस्मात्)विश्व की सभी शक्तियों और पदार्थों से (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा (उत्तरः) उत्कृष्ट है।

भावार्थ–

मरण के पश्चात जीवात्मा पुनः इस शरीर में आता है और प्रकृति पुनः शरीर और भोगों को प्रदान करती है। निद्रा और भोग का विनाश करने वाला यह मार्ग मोक्ष को प्रदान करता है। परमात्मा सबसे उत्कृष्ट है।

संहिता पाठ–

यदुदंचो वृषाकपे गृहमिंद्राजगंतन।

क्व१स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥२२॥

पद पाठ–

यत्। उदंचः। वृषाकपे।

गृहं । इंद्र। अजगंतन।

क्व। स्यः। पुल्वघः। मृगः।

कं। अगन्। जनऽयोपनः।

विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽत्तरः॥२२॥

सायण भाष्य-

गत्वा पुनरागतं वृषाकपिमिंद्र: पृच्छति। हे इंद्र परमैश्वर्यवन् हे वृषाकपे यूयमुदंच उद्गामिन: संतो मद्गृहमजगंतन। आगच्छ। एकस्यापि बहुवचनं पूजार्थं। तत्र भवत: सम्बन्धी पुल्वघो बहूनां भौमरसानामत्ता स्थ स मृग: क्वाभूत्। जनयोपनो जनानां। मोदयिता मृग:। कं वा देशमगन्। अगच्छत्। सोऽहमिंद्रो विश्वस्मादुत्तर:॥ यद्वा। इंद्राणीवाक्यमिदं। अत्र यास्क:। यदुदंचो वृषाकपे गृहमिंद्राजगमत क्व स्य पुल्वघो मृग: क्व स बह्वादी मृग:। मृगो मार्ष्टेर्गतिकर्मण:। कमगमद्देशं जनयोपन:। नि. १३.३.। इति॥

अन्वय-

वृषाकपे इन्द्र यत् उदञ्च: गृहम् अजगन्तन। स्य: क्व पुल्वघ: मृग: जनयोजन: कम् अगन् विश्वस्मात् इन्द्र: उत्तर:।

हिन्दी अनुवाद-

(वृषाकपे) सब पर सुखों की वर्षा करने वाले और दुष्टों को रुलाने वाले हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! (यत्) जबकि (उदञ्च:) ऊर्ध्व गति वाले जीव (गृहं) आपके गृह रूप मोक्ष धाम को (अजगन्तन:) प्राप्त करते हैं। (पुल्वघ:) बहुत अधिक सोमरसों का भोग करने वाला (मृग:) प्रभु को खोजने वालो (जनयोपन:) इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाला (क्व स्य:) कहां पर रहता है। और (कम्) किसको, सुख स्वरूप परमात्मा को (अगन्) प्राप्त करता है। (विश्वस्मात्) सम्पूर्ण विश्व की शक्तियों और पदार्थों से (इन्द्र:) परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर (उत्तर:) उत्कृष्ट है।

भावार्थ-

हे वृषाकपि इन्द्र परमेश्वर ! ऊर्ध्व गति वाले लोग आपकी शरण में

मोक्ष धाम को पहुंच जाते हैं। उनकी आत्मा प्रभु में विचरती है और आनन्द को प्राप्त करती है। परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर सबसे उत्कृष्ट है।

संहिता पाठ–

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिं।

भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिंद्र उत्तरः॥२३॥

पद पाठ–

पर्शुः। ह। नाम। मानवी।

साकं। ससूव। विंशतिं।

भद्रं। भल। त्यस्यै। अभूत्।

यस्याः। उदरं। आमयत्।

विश्वस्मात्। इंद्रः। उत्ऽतरः॥२३॥

सायण भाष्य–

इंद्रविसृज्यमानमनेन मंत्रेण वृषाकपिराशास्ते। हे भलेंद्रेण विसृज्यमान शर। भलतिर्भेदनकर्मा। पर्शुनाम मृगी। हेति पूरणः। मानवी मनोर्दुहितेयं विंशतिं विंशतिसंख्याकान्पुत्रान् साकं सह ससूव। अजीजनत् त्वस्यै तस्यै भद्रं भजनीयं कल्याणमभूत्। भवतु॥ लोडर्थे लुङ्॥ यस्या उदरमामयत् गर्भस्यैर्विंशतिभिः। पुत्रैः पुष्टमासीत्। मम पितेंद्रो विश्वस्मादुत्तरः॥

अन्वय–

भलः पर्शुः नाम मानवी साकं विंशतिं ससूव। त्वस्याः भद्रं अभूत्।

यस्याः उदरम् आमयत्। विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः।

हिन्दी अनुवाद–

(भलः)हे भद्र पुरुष! (पर्शुः नाम) पर्शुनाम की (मानवी) मनुष्य का निर्माण करने वाली प्रकृति शक्ति (साकं) एक साथ ही (विंशतिम्) बीस अङ्गों वाले मनुष्य को (ससूव) निर्मित करती है, उत्पन्न करती है। (त्वस्यै) उस मनुष्य का (भद्रम् अभूत्) कल्याण होता है, (यस्याः) जिस मानवी का (उदरम्) उदर (आमयत्) पीड़ा करता है। प्रसव पीड़ा करता है। (विश्वस्मात्) विश्व की सभी शक्तियों और पदार्थों से (इन्द्रः) परम शक्तिमान् परमेश्वर (उत्तरः) उत्कृष्ट है।

भावार्थ–

यह सृष्टि को उत्पन्न करने वाली मानवी प्रकृति है। यह बीस अंगों वाली मानवी सृष्टि का प्रसव करती है। मानवी रूपी नारी शक्ति है। इसका कल्याण होता है, क्योंकि इसके उदर में प्रसव पीड़ा होती है। इसका पिता इन्द्र सबसे उत्कृष्ट है।

****

१८. इन्द्राणी (२)

ऋग्वेद दशम मण्डल सूक्त १४५, मन्त्र १-६

ऋषि-इन्द्राणी

देवता- सपत्नी बाधन

छन्दः - छठा मन्त्र, पंक्ति, शेष अनुष्टुप्

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका-

इमामिति षड़्चं सप्तदशं सूक्तामिंद्राण्या आर्षं। षष्ठी पंक्तिः शिष्टा अनुष्टुभः। अनेन सूक्तेन सपत्न्या बाधनं प्रतिपाद्यते। अत सपत्न्या एव सूक्तजपादिना सपत्न्या विनाशो भवति। अतस्तद्देवताकमिदं। तथा चानुक्रानं। इमामिंद्राण्युपनिषत्सपत्नीबाधनमानुष्टुभं तु पंक्त्यंतमिति।।अस्य सुक्तस्य विनियोगो भगवतापस्तंबेन कस्मिंश्चित्सपत्नीघ्नप्रयोगविशेषे दर्शितः। चिःसप्तैर्यवैः पाठां परिकिरति यदि वारुण्यसि वरुणात्तवा निष्क्रीणामि यदि सौम्यसि सोमात्वा निष्क्रीणामीति। श्वोभूत उत्तरयोत्थाप्योत्तराभिस्तिस्टभिरभिमंच्योत्तरया प्रतिच्छन्नां हस्तयोराबन्य शय्याकाले बाहुभ्यां भर्तारं परिगृह्योयादुपधानलिंगया। वश्यो भवति। सपत्नीबाधनं च। आप गृ ९४ इति। अयमर्थः। आद्यया पाठा नामौषधिः खातव्या। ततस्तिसृभिरोषधेरभिमंचणं। षष्ठयाबडन्च सौषधिर्यथा भर्तारं स्पृशति तथा तस्य भर्तुरालिंगनमिति।।

संहिता पाठ-

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमां।
यया सपत्नी बाधते यया संविंदते पतिं।।१।।

पद पाठ–

इ॒मां । ख॒ना॒मि॒। ओष॑धिं । वी॒रु॒धं॑ । बल॑वत्ऽतमां।

यया॑। स॒ऽपत्नीं॑। बाध॑ते। यया॑। सं॒ऽवि॒ंदते॑। पतिं॑॥१॥

सायण भाष्य–

इमामोषधिं पाठारूपां वीरुधं लतारूपां वलवत्तमां स्वकार्य-करणेऽतिशयेन बलवतीं खनामि। उन्मूलयामि। ययौषध्या सपत्नीं। समान एकः पतिर्यस्याः सा सपत्नी। तामेषा वधूर्बाधते हिनस्ति। यया च पतिं भर्तारं संतिंदते सभ्यगसाधारण्येन लभते॥

अन्वय–

बलवत्तमां वीरुधम् इमाम् ओषधिं खनामि यया सपत्नीं बाधते यथा पतिं संविन्दते।

हिन्दी अनुवाद –

(बलबत्तमां)अत्यधिक बलशाली (वीरुधम्)लतारूपी(इमाम्)इस (औषधि) औषधि को (खनामि) खोदकर बाहर निकालता हूं (यया) जिस औषधि के द्वारा, इसका प्रयोग करने वाली पत्नीं (सपत्नीं) अपनी सौत को (बाधते) बाधित करती है, अपने पति के पास के दूर हटाती है और (यया) जिस औषधि के द्वारा (पतिं)अपने पत्नि को (संविन्दतं)प्राप्त करती है, अपने पति को अपने में आसक्त रखती है।

भावार्थ –

वैद्य कहता है कि अत्यधिक बलशाली लता रूप औषधि को खोद कर निकालता हूँ, जिसका सेवन करने वाली स्त्री अपने पति को इतना आसक्त करके अपने पास रोकेरखती है कि वह दूसरी पत्नी को लाने की इच्छा ही नहीं करता। सम्भवतः वर्तमान समय में इस वनस्पति का नाम पाठा है।

संहिता पाठ–

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति।

सपत्नीं मे परा धम पतिं मे केवलं कुरु॥२॥

पद पाठ–

उत्तानऽपर्णे। सुऽभगे। देवऽजूते। सहस्वति।

सऽपत्नीं। मे। परा। धम। पतिं। मे। केवलं। कुरु ॥२॥

सायण भाष्य–

हे उत्तानपर्णे उत्तानान्यूर्ध्वमुखानि पर्णानि पत्राणि यस्याः तादृशि हे सुभगे सौभाग्यहेतुभूते हे देवजूते देवेन स्त्रष्टा प्रेरिते हे सहस्वत्यभिभवनवति ईदृशे हे पाठे मे मम सपत्नीं स्त्रियं परा धम। परागमय। धमतिर्गतिकर्मा। पतिं च मे ममैव केवलमसाधारणं कुरु ॥

अन्वय–

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति में सपत्नीं पराधम में पतिं केवल कुरु।

हिन्दी अनुवाद–

(उत्तानपर्णे)ऊपर को उठे हुये पत्तों वाली (सुभगे)सौभाग्य देने वाली(देवजूते)दिव्य प्रभाव रखने वाली (सहस्वति)अत्यधिक बलशालिनी हे औषधि (मे)मेरी (सपत्नीं) सौत को (पराधम्) दूर धकेल दो और (मे) मेरे (पतिं) पति को (केवलं) केवल मेरा (कुरु)कर दो।

भावार्थ–

वैदिक युग में इस प्रकार की कोई वनस्पति थी, जिसके पत्ते ऊपर को उठे हुये थे, और दिव्य प्रभाव वाली इस लता का नाम सहस्वती था। यह

असाधारण प्रभाव रखती थी। जिसके पास यह रहती थी, उसका पति उसके प्रति इतना आसक्त रहता था कि अन्य किसी स्त्री के विषय में विचार भी नहीं कर सकता था।

संहिता पाठ–

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः।
अधा सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः॥३॥

पद पाठ–

उत्ऽतरा। अहं। उत्ऽतरे। उत्ऽतरा। इत्। उत्ऽतराभ्यः।
अध। सऽपत्नी। या। मम। अधरा। सा। अधराभ्यः॥३॥

सायण भाष्य–

हे उत्तर उत्कृष्टतरे पाठे अहमुत्तरोत्कृष्टतरा भूयासं। उत्तराभ्यो लोके या उत्कृष्टतराः संति ताभ्योऽप्यहमुत्तरोत्कृष्टतरैव तवत्प्रसादाद्भवेयं। अथानंतरं मम या सपत्नी साधराभ्यो निकृष्टाभ्योऽप्यधरा निकृष्टतरा भवतु।

अन्वय–

उत्तरे अहम् उत्तराभ्यः उत्तरा इत् उत्तरा। अथ या मम सपत्नी सा अथराभ्यः अधरा।

हिन्दी अनुवाद–

(उत्तरे) उत्कृष्टतर इस औषधि के सेवन से (अहं) मैं नारी (उत्तराभ्यः) उत्कृष्टतर नारियों से अधिक (उत्तरा इत्) अधिक उत्कृष्ट हो गयी हूं। (अथ) और (या) जो (मम) मेरी (सपत्नी) सौत है वह (अधराभ्यः) निकृष्टतम स्त्रियों से भी (अधरा) निकृष्ट हो गयी है।

भावार्थ-

इस औषधि के सेवन से मैं उत्कृष्टतम स्त्रियों से भी अधिक उत्कृष्ट हो गई हूं और मेरी सौत निकृष्टतम स्त्रियों से भी अधिक निकृष्ट हो गई है।

संहिता पाठ-

नह्यस्या नाम गृभ्णामि नो अस्मिन्रमते जने।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि॥४॥

पद पाठ-

नहि। अस्याः। नाम। गृभ्णामि। नो इति। अस्मिन्। रमते। जने।
परां। एव। पराऽवतं। सऽपत्नीं। गमयामसि॥४॥

सायण भाष्य-

अस्याः सपत्न्या नाम संज्ञामपि नहि गृभ्णामि। नैव गृह्णामि। उच्चारयामि। नो खलु काचिदस्मिञ्जने सपत्न्यास्ये रमते। क्रीडति। अपि च तां सपत्नीं परां परावतमेवातिशयेन दूरदेशमेव गमयामसि। प्रापयामः। अतिशयेन भर्त्रा वियोजयाम इत्यर्थः।

अन्वय-

अस्याः नाम नहि गृभ्णामि। अस्मिन् जने नो रमते। सपत्नीं पराम् एव परावतं गमयामसि।

हिन्दी अनुवाद-

(अस्याः) इस सपत्नी का (नाम) नाम भी (नहि) निश्चय से नहीं (गृभ्णामि) लेती हूं। (अस्मिन्) इस (जने) व्यक्ति में, मेरे पति में (नो) कोई भी अन्य स्त्री नहीं (रमते) आनन्द प्राप्त करती है। (सपत्नीं) अपनी सपत्नी को मैं (पराम् एव) दूर से ही (परावतं) दूर (गमयामसि) पहुंचा देती हूं।

भावार्थ–

मैं तो इस सपत्नी के नाम तक का उच्चारण नहीं करती हूं और इस सपत्नी को दूर से भी दूर भेज देती हूं।

संहिता पाठ–

अहमस्मि सहमानाथ त्वमसि सासहिः।
उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहै॥५॥

पद पाठ–

अहं। अस्मि। सहमाना। अथ। त्वं। असि। ससहिः।
उभे इति। सहस्वती इति। भूत्वी। सऽपत्नीं। मे। सहावहै॥५॥

सायण भाष्य–

हे औषधि अहं त्वत्प्रसादात्सहामानास्मि। सपत्न्या अभिभवित्री भवामि। अथापि च त्वमपि सासहिरसि। तस्या अभिभवित्री भवसि। आवामुभे अपि सहस्वती अभिभवित्र्यौ भूत्वी भूत्वा मे मम सपत्नीं सहावहै। अभिभवाम॥

अन्वय–

अहं सहमाना अस्मि अथ त्वं सासहिः असि। उभे सहस्वती भूत्वी मे सपत्नीं सहावहै।

हिन्दी अनुवाद–

(अहं) मैं (सहमाना) सौत को दबाने वाली (अस्मि) हूं, (त्वम्) और तू औषधि (सासहिः) सौत का अभिभव करने वाली है। (उभे) दोनों ही (सहस्वती) अभिभव करने वाली (भूत्वी) होकर (सपत्नीं) मेरी सौत का (सहावहै) अभिभव कर दें।

भावार्थ-

मैं सौत को दबाने वाली हूं और यह औषधि सौत का अभिभव करने वाली है। हम दोनों मिलकर इस सौत को दबा देवें।

संहिता पाठ-

उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु॥६॥

पद पाठ-

उप। ते। अधां। सहमानां। अभि। त्वा। अधां। सहीयसा।
मां। अनु। प्र। ते। मनः। वत्सं। गौःऽइव। धावतु। पथा। वाःऽइव। धावतु॥६॥

सायण भाष्य-

हे पते ते तब सहमानां सपत्न्या अभिभवित्रीमिमामोषधिमुपाधां। शिरस उपाधानं करोमि। सहीयसाभिभवितृतरेण तेनोपधानेन त्वामभ्यधां। अभितो धारयामि। ते तव भर्तुर्मनो मामनुलक्ष्य प्र धावतु। प्रकर्षेण शीघ्रं गच्छतु। तत्र निदर्शनद्वयमुच्यते। गौरिव यथा गौर्वत्सं शीघ्रं गच्छति पथा निम्नेन मार्गेण वारिव वारुदकं यथा स्वभावतो गच्छति तद्वत्। अनेन निदर्शनद्वयेनौत्सुक्यातिशयः स्वाभाविकत्वं च प्रतिपाद्यते॥

अन्वय-

सहमानां ते उप अधाम्, महीयसा त्वा अभि अधाम् ते मनः माम् अनु गौः वत्सम् इव प्रधावतु। पथा वाः इव धावतु।

हिन्दी अनुवाद-

अन्त में पति को सम्बोधित करके पत्नी कहती है कि हे पतिदेव!

(सहमानां)सपत्नी का अभिभव करने वाली औषधि का मैं (ते) तुम्हारे घर पर (अप अधाम्) प्रयोग करती हूं। (महीयसा) महान् महिमा वाली औषधि को (त्वा) तुम्हारे (अभि) प्रति मैं (अधां) धारण करती हूं। (ते) तुम्हारा (मनः) मन (माम् अनु) मेरी ओर (गौः वत्सम् अनु) जिस प्रकार गाय बछड़े की ओर दौड़ ती है, उसी प्रकार (धावतु) दौड़े। (पथा) निम्नगामी मार्ग से (वा. इव) जल के समान (धावतु) दौड़े।

भावार्थ-

औषधि का पति के प्रति प्रयोग करके पत्नी कहती है कि इस सपत्नी नाशन औषधि का तुझ पति के घर पर प्रयोग करने से जिस प्रकार गौ अपने बछड़े के प्रति दौड़ती है और निम्नगामी मार्ग से जल दौड़ता है, उसी प्रकार तुम्हारा मन मेरी ओर दौड़े।

****

१९. दक्षिणा प्राजापत्या

ऋग्वेद-दशम मण्डल सूक्त १०७, मन्त्र १-११

ऋषि - दक्षिणा प्राजापत्या

देवता - दक्षिणा और दानदाता

छन्दः - त्रिष्टुप् तथा जगती

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका-

आविरित्येकादशर्चमष्टमं सूक्तं। दिव्यो नामांगिरस ऋषिः। प्रजापतेः सुता दक्षिणा सा चर्षिका। शतधारं वायुमिति चतुर्थी जगती शिष्टा दश त्रिष्टुभः। अनेक सूक्तेनर्त्विग्भ्यो दीयमाना दक्षिणा तद्दातारो यजमाना वा स्तूयंते। अतः सैव देवता। तथा चानुक्रांतं। आविर्दिव्यो दक्षिणा वा प्राजापत्या दक्षिणां तद्दातृन्वास्तौच्चतुर्थी जगतीति। गतो विनियोगः।

संहिता पाठ-

आविर्भून्महि माघोनमेषां विश्वं जीवं तमसो निरमोचि।
महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरु : पंथा दक्षिणाया अदर्शि॥१॥

पद पाठ-

आविः। अभूत्। महि। माघोनं। एषां।
विश्वं। जीवं। तमसः। निः। अमोचि।
महि। ज्योतिः। पितृऽभिः। दत्तं। आ। अगात्।
उरुः। पंथाः। दक्षिणायाः। अदर्शि॥१॥

सायण भाष्य-

इदं सूक्तं दक्षिणाया वा तद्दातृणां वा स्तावकं तु यागांगं यागस्तु सायंकाले न क्रियते। न सायमस्ति देवय। अजूष्टं। ऋ० ७७.२। इत्या दिश्रवणात्। तस्मादहन्येव कर्तव्यः। अहश्च सूर्योदयात्पश्चाद्भवतीति सूक्तादौ सूर्योदयाऽभिधीयते। माघोनं मधवंद्रः। इंद्रश्च सूर्यश्चैत्रमासे तयोरिंद्र इति स्मरणात्। तस्य संबंधि। तस्येदमित्यण। अतद्धिते प्रत्ययं संप्रसारणमभिहितं। पा. ६.४.१३३। सर्वविधीनां छंदसि विकल्पिततत्वादत्र तद्धितेऽपि संप्रसारणं॥ सूर्यात्मकस्येंद्रस्य स्वभूतं महि महत्तेज एषां यजमानानां यागसिद्धर्थमाविरभूत्। मुंचतेः कर्मलुङि चिणि रूपं॥ अथानंतरं पितृभिर्यत्पितृभिर्देवैर्दत्तं नो हविषामागमनाय तन्महि महज्जयोतिः सूर्याख्यमागात्। आगच्छति। पश्चादक्षिणाया यांगागभूताया उरुर्महान् पंथा मार्गोऽदर्शि। सर्वै र्यजमानैर्दृष्टोऽभूत्। सर्वे यागं कृत्वर्त्विग्भ्यो दक्षिणां दत्तवंत इत्यर्थः॥

अन्वय-

एषां माधोनं महिः आविः अभूत्। विश्वं जीवं तमसः निरमोचि। पितृमिः दत्तं महिः ज्योतिः आ अगात्। दक्षिणायाः उरुः पन्था अदर्शि।

हिन्दी अनुवाद-

(एषां)यज्ञ करने वाले इन यजमानों के लिये(माधोनं)सूर्य सम्बन्धी (महि)महान् तेज और प्रकाश (आविः अभूत्)प्रकट हो गया है। (विश्वं) सम्पूर्ण (जीवं) जीवलोक को इसने(तमसः)अन्धकार से (निरमोचि)सम्पूर्ण रूप से मुक्त कर दिया है। (पितृमिः)पितरों के द्वारा (दत्तं)दिया गया (महिः)महान्(ज्योतिः)सूर्य का प्रकाश(आ अगात्)आ गया है। (दक्षिणायाः)दक्षिणा देने वाले यज्ञ का (उरुः)महान्(पन्थाः)मार्ग इसने (अदर्शि) दिखा दिया है।

भावार्थ –

यजमानों के यज्ञ की सिद्धिके लिये रात्रि के व्यतीत होने पर सूर्य का महान् प्रकाश प्रकट हो गया है। सम्पूर्ण जीव लोक अन्धकार से मुक्त हो गया है। सूर्य का प्रकाश सब और फैल जाने के कारण यज्ञ का समय उपस्थित हो जाने से यज्ञ में दी जाने वाली दक्षिणा का मार्ग भी प्रशस्त हो गया है।

संहिता पाठ–

उच्चा। दिवि। दक्षिणावंतो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण।
हिरण्यदा अमृतत्वं भजंते वासोदाः सोम प्र तिरंत आयुः॥२॥

पद पाठ–

उच्चा। दिवि। दक्षिणाऽवंतः। अस्थुः।
ये। अश्वश्वदाः। सह ते। सूर्येण।
हिरण्यदाः। अमृतत्वं भजन्ते।
वासःऽदाः। सोम। प्र। तिरंते। आयुः॥२॥

सायण भाष्य–

दक्षिणावंती दक्षिणाया देवत्वेन तद्वंतो दक्षिणां दत्तवंतो यजमाना उच्चोच्चैः स्थानैः स्थिते दिवि द्युलोकेऽस्थुः। तिष्ठंति। सामान्येनोत्का दातृविशेषाणां फलविशेषमाह। अश्वदा अश्वानां दातारो ये यजमानाः ते सूर्येण सर्वस्य स्वस्वकर्मणि प्रेरकेणादित्येन सह तिष्ठंति। ये हिरण्यदा हिरण्यदातारः तेऽमृतत्वममरणधर्मत्वं देवत्वं भजंते। अमृतं वै हिरण्यमित्याम्ननात् । तथा सौम्यं वै वास इति श्रवणात्सोम एव संबोध्यते।

हे सोम वासोदास्त्वद्देवत्यवस्त्राणां दातारो ये संति ते त्वया सह तिष्ठंतीति शेषः। एते सर्व आयुर्जीवनं प्र तिरंते। प्रवर्धयंति। प्रपूर्वस्तिरतिर्वृद्ध्यर्थः।।

अन्वय–

दक्षिणावन्तः दिवा उच्चा अस्थुः ये अश्वदाः ते सूर्यण सह हिरण्यदाः अमृतत्वं भजन्ते। सोम वासोदः आयुः प्रतिरन्ते।

हिन्दी अनुवाद–

दक्षिणावन्तः यज्ञों में दक्षिणा देने वाले यजमान (दिवा)द्युलोक में स्थित होकर (उच्चा)उच्च स्थान को (अस्थुः)प्राप्त करते हैं। (ये)जो (अश्वदाः)दक्षिणा में अश्वों का दान करने वाले यजमान हैं, (ते)वे (सूर्येण सह) सूर्य के समान प्रकाशवान लोक में स्थित रहते है। (हिरण्यदाः)स्वर्ण रत्न आदि मूल्यवान् वस्तुओं का दान करने वाले यजमान (अमृतत्वं) मोक्ष को (भजन्ते)प्राप्त करते है। (सोम) हे सोम (वासोदाः)वस्त्रों का दान करने वाले यजमान (आयुः)अपनी आयु को(प्रतिरन्ते) प्रभूत बढ़ा लेते हैं।

भावार्थ –

दक्षिणा और दान देने वाले यजमान उच्च पद को प्राप्त करते हैं, अश्वों कादान करने वाले तेजस्वी होकर सूर्यलोक को प्राप्त करते हैं। सुवर्ण रत्न आदि का दान करने वाले मोक्ष को पाते है और वस्त्रों का दान करने वाले लम्बी आयु पाते हैं।

संहिता पाठ–

दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणंति।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासोऽवद्यभिया बहवः पृणंति।।३।।

पद पाठ–

दैवीं। पूर्तिः। दक्षिणा। देवऽयज्या।
न। कवऽअरिभ्यः। नहि। ते। पृणंति।
अथ। नरः। प्रयतऽदक्षिणासः।
अवद्यऽभिया। बहवः। पृणंति॥३॥

सायण भाष्य–

दैवी देवसंबंधिनी॥ देवाद्यञञौ। पा.४.१.८५.३.। इत्यञ्॥ तादृशी पूर्तिः पाणिनी तत्साध्या देवयज्या॥ छंदसि निष्टर्क्येति निपातितः॥ देवयागः। तदंगभूता दक्षिणा न कवारिभ्यः॥ ऋ गतावित्यस्याच इः। उ.४.१३८.। इतीप्रत्ययः॥ कुत्सितगंतृभ्योऽयष्टृभ्यः। एतेभ्यो न भवति। यद्वा। देवानां स्वभूता पूर्तिः पूरयित्री स्तुतिभिर्हविर्भिश्च तादृशी देवयज्या दक्षिणा च तेभ्यो न भवतः तत्र हेतुरुच्यते। हि यस्मात्ते कुत्सितगंतारो नहि पृणंति देवान्स्तुतिभिर्हविर्भिवा न प्रीणयंति॥ पृण प्रीणने तौदादिकः॥ अथेति प्रश्ने। यष्ट्रणां देवयागादि कथं भवति। उच्यते। नरः कर्मणां नेतारः अत एव प्रयतदक्षिणासो दत्तदक्षिणा बहवो यजमाना अवद्यभिया॥ अवद्यपण्यवर्या गर्ह्येति। पा.३.१.१०१.। यत्प्रत्ययांतत्वेन निपातितः॥ पापभिया। विहिताननुष्ठाने दुरितानि भवंति खलु। तस्मात्तद्भीत्या पृणंति। देवान्प्रीणयंति। तस्माद्यष्टृणां देवपालनयागदक्षिणा भवतीत्यर्थः॥

अन्वय–

दैवी पूर्तिः देवयज्वा दक्षिणा कवारिभ्यः न ते हि न पृणन्ति अथ प्रयतदक्षिणासः नरः बहवः अवद्यमिया पृणन्ति।

हिन्दी अनुवाद –

(दैवी) विद्वानों और देवताओं से सम्बन्धित (पूर्तिः) पूर्ण करने वाली

(देवयज्वा) देवताओं की यज्ञों की अंगभूत (दक्षिणा) दक्षिणा (कवारिभ्यः) कुत्सिन धन के स्वामियों के लिये (न) नहीं होती, क्योंकि (ते) वे यजमान (हि) निश्चय से (न पृणन्ति) हवियों से देवताओं को प्रसन्न नहीं करते। (अथ) इसलिये (प्रयत दक्षिणामः) दक्षिणा देने का प्रयत्न करने वाले (नरः) यज्ञ करने वाले यजमान (बहवः) बहुत से (अवद्यभिया) पाप लग जाने के भय से (पृणन्ति) यज्ञ में देवताओं को संतृप्त करते हैं।

भावार्थ-

यज्ञ कर्मों में देवताओं को और होता विद्वानों को दक्षिणा द्वारा तृप्त किया जाता है। कोई यजमान तो हवियों द्वारा देवताओं को तृप्त करते हैं, कुछ दक्षिणा देने का प्रयत्न करते हैं और कुछ पाप लग जाने के भय से देवताओं को तृप्त करते हैं।

संहिता पाठ-

श॒तधा॑रं वा॒युम॒र्कं स्व॒र्विदं॑ नृ॒चक्ष॑स॒स्ते अ॒भि च॑क्षते ह॒विः।
ये पृ॒णंति॒ प्र च॒ यच्छं॑ति संग॒मे ते दक्षि॑णां दुहते स॒प्तमा॑तरं॥४॥

पद पाठ-

श॒तऽधा॑रं। वा॒युं। अ॒र्कं। स्व॒ःऽविदं॑।
नृ॒ऽचक्ष॑सः। ते। अ॒भि। च॒क्षते॒। ह॒विः।
ये। पृ॒णंति॑। प्र। च॒। यच्छं॑ति। सं॒ऽग॒मे।
ते। दक्षि॑णां। दु॒ह॒ते॒। स॒प्तऽमा॑तरं॥४॥

सायण भाष्य-

शतधारं बहुधारेणोपेतं वायुमेतन्नामकं स्वर्विदं स्वर्गस्य लंभकं सर्वस्य वेत्तारं वार्कमर्चनीयमादित्यं च तौ नृचक्षसो नृणां द्रष्टृनन्यानिंद्रादीन्देवां-

श्चाभिलक्ष्य ते यजमाना हविश्चक्षते। तेभ्यो दातुं पश्यंति जानंति। चष्टेर्लटि रूपं॥ किंच संगमे। कर्मकरणार्थमृत्विजोऽत्र। संगच्छंत इति संगमः। ग्रहवृदृनिश्चगमश्चेत्यधिकरणेऽप्। थाथादिस्वरः॥ तस्मिन्यज्ञे ये यष्टारः पृणंति स्तुतिभिः प्रीणयंति। ये च तेभ्यो देवेभ्यो हवींषि प्रयच्छंति॥ उभयत्र यद्योगाद़निघातः॥ ते सप्तमातरं। सप्तसंख्याका मातृभूता अग्निष्टोमादिसंस्था यस्यां भवंति सा। यद्वा। सप्तसंख्याका मातरः कर्मणां निर्मातारः कर्तारो होत्रादयः संति। तादृशीं दक्षिणां दुहते। ऋत्विग्भ्यो दुहंति॥

अन्वय-

ते शतधारं वायुं स्वर्विदम् अर्कं नृचक्षसः हविः अभिचक्षते ये पृणन्ति च सङ्गमे प्रयच्छन्ति ते सप्तमातरम् दक्षिणां दुहते।

हिन्दी अनुवाद-

(ते) वे यजमान (शतधारं) सैकड़ों धाराओं वाले (वायुम्) वायु देवता को और (स्वर्विदं) अन्तरिक्ष में विद्यमान (अर्कं) सूर्य को (नृचक्षसः) अन्य यज्ञ देवताओं को (हविः) आहुति (अभिचक्षते) देना जानते हैं। (ये) जो (पृणन्ति) देवताओं को तृप्त करते हैं। (च) और (सङ्गमे) विद्वानों के सङ्गम से भरे यज्ञ में (प्रयच्छन्ति) दक्षिणा देते हैं, (ते) वे यजमान (सप्तमातरम्) सात होता- ऋत्विक् आदि यज्ञ कर्ताओं के लिये (दक्षिणां) दक्षिणा को (दुहते) प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ-

यजमान सौंकड़ों धाराओं वाले ने वायुमण्डल के लिये और अन्तरिक्ष में विद्यमान सूर्य के लिये हवि प्रदान करते हैं। जो अन्य देवताओं के लिये भी हवि प्रदान करते हैं। यज्ञों में विद्वत्जनों का संगम होने पर वे सात ऋत्विज सम्बन्धी दक्षिणा की पूर्ति करते हैं।

संहिता पाठ-

दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय॥५॥

पद पाठ-

दक्षिणाऽवान्। प्रथमः। हूतः। एति।
दक्षिणाऽवान्। ग्रामऽनीः। अग्रं। एति।
तं। एव। मन्ये। नृऽपतिं। जनानां।
यः। प्रथमः। दक्षिणां। आऽविवाय॥५॥

सायण भाष्य-

हूत ऋत्विग्भिराहूतो दक्षिणावान्यजमानः प्रथमः मुख्यः सर्वेषां सन्नेति। सर्वत्र गच्छति। तथा ग्रामणीर्ग्रामाणां नेता धनवत्त्वेन तेषां कर्ता दक्षिणावान् सोऽग्रमेति। सर्वेषां प्रथममेव गच्छति। तमेव नृपतिं नराणां पालयितारमिति मन्य ऋषिरहमवबुध्ये प्रथमो यो जनानां दक्षिणामाविवाय आगमयति॥ वो गत्यादिषु। तस्य लिटि रूपं॥ तं नृपतिमिति मन्ये। यद्वा। जनानामिति पूर्ववाक्यशेषः जनानां मध्ये तमेव मनुष्याणां स्वामिनमिति मन्ये॥

अन्वय-

हूतः दक्षिणावान् प्रथमः एति। दक्षिणावान् ग्रामणीः अग्रम् एति। तम् एव जनानां नृपतिं मन्ये यः प्रथमः दक्षिणाम् आविवाय।

हिन्दी अनुवाद-

(हूतः) ऋत्विग् आदि के द्वारा आह्वान किया गया (दक्षिणावान्) दक्षिणा देने वाला यजमान (प्रथमः) सबसे पहले (एति) आगे बढ़कर आता है। (दक्षिणावान्) दक्षिणा देने वाला (ग्रामणीः) ग्राम का नेता व्यक्ति (अग्रम्)

सबसे आगे होकर (एति) आता है। (तम्) उस व्यक्ति को (एव) ही हम (जनानां) सब जानों का (नृपतिं) पालन करने वाला राजा (मन्ये) मानते हैं (यः) जो (प्रथमः) सबसे पहले (दक्षिणाम्) दक्षिणा को (आविवाय) लेकर आता है।

भावार्थ-

ऋत्विगों द्वारा आह्वान किया जाता हुआ दक्षिणा देने वाला व्यक्ति सबका मुखिया होता है जो ग्रामणी दक्षिणा देने वाला होता है, सबसे आगे वह रहता है। ग्राम की जनता में उसी को सबका पालन करने वाला राजा समझा जाता है जो सबसे पहले दक्षिणा को लाता है।

संहिता पाठ-

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासं।

स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध॥६॥

पद पाठ-

तं। एव। ऋषिं। तं। ऊं इति। ब्रह्माणं। आहुः।

यज्ञऽन्यं। सामऽगां। उक्थऽशसं।

सः। शुक्रस्य। तन्वः। वेद। तिस्रः।

यः। प्रथमः। दक्षिणया। रराध॥६॥

सायण भाष्य-

तमेव दक्षिणाया दातारमृषिमतींद्रियार्थदर्शिनं यद्वा सत्कर्मकरणेनर्षिमित्याहुः। तथा तमु तमेव ब्रह्माणमाहुः। किंच तमेव यज्ञन्यं। णीञ् प्रापणे। क्विप। उदात्तस्वरितयोर्यण इत्यमः। स्वरितत्वं। यज्ञस्य

नेतारमध्वर्युमित्याहु:। तमेव सामगां साम्नां गातारमिति तथोक्थशासं। शन्सु स्तुतौ। क्विप्। संहितायां दीर्घश्छांदस:। उक्थशसं शास्त्राणां शंसितारं होतारमिति ब्रुवंति। दक्षिणादानेन तत्कर्मण: परिग्रहात्। स दाता शुक्रस्य दीप्यमानस्य ज्योतिषस्तिस्त्रस्तन्वोऽग्निवैद्युतादित्यात्मकानि त्रीणि शरीराणि वेद। जानाति। यद्वा। शुक्रस्य दीप्तस्याग्रेराहवनीयाद्यात्मकानि त्रीणि शरीराणि जानाति। प्रथमो मुख्यो यो जनो दक्षिणया रराध ऋत्विगादीनाराधयति॥ राध संसिद्धौ। लिटि रूपं। लिट्स्वर:॥

अन्वय–

तम् एव ऋषिं तम् उ ब्रह्माणं यज्ञन्यं सामगाम् उक्तशासम् आहु:। स शुक्रस्य तिस्त्र: तन्व: वेद य: प्रथम: दक्षिणया रराध।

हिन्दी अनुवाद–

(तम्) उस व्यक्ति को (एव) ही हम (ऋषिं) मन्त्रद्रष्टा ऋषि (तमु) उस व्यक्ति को ही हम (ब्रह्माणं) यज्ञ कार्यों का ब्रह्मा (यज्ञन्यं) यज्ञ का नेता अध्वर्यु (सामगाम्) साम गान करने वाला उद्‌गाता और (उक्तशासम्) शास्त्रों का प्रबंधक (आहु:) कहते हैं, (स:) वह व्यक्ति ही (शुक्रस्य) प्रदीप्त हुई अग्नि के (तिस्त्र:) तीनों (तन्व:) रूपों को आहवनीय, प्राजापत्य और दक्षिणा तीनों प्रकारों को (वेद) जानता समझता है, (य:) जिस यजमान ने (प्रथम:) सबसे पहले (दक्षिणया) ऋत्विग् आदि को दक्षिणा देकर (रराध) तृप्त किया था।

भावार्थ–

यज्ञ के समय ब्रह्मा, अध्वर्यु, उद्‌गाता और ऋत्विग् ये सब यज्ञ कार्य सम्पन्न करते हैं। इनको यज्ञ कार्य के लिये दक्षिणा दी जाती है। उस समय प्रदीप्त अग्नि तीन प्रकार की होती है– प्राजापत्य, आहवनीय और दक्षिणा।

संहिता पाठ–

दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चंद्रमुत यद्धिरण्यं।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन॥७॥

पद पाठ–

दक्षिणा। अश्वं। दक्षिणा। गां। ददाति।
दक्षिणा। चंद्रं। उत। यत्। हिरण्यं।
दक्षिणा। अन्नं। वनुते। यः। नः। आत्मा।
दक्षिणां। वर्म। कृणुते। विऽजानन॥७॥

सायण भाष्य–

दक्षिणा तद्दातृभ्योऽश्वं ददाति। तथा गां च ददाति तथा चंद्रं सुवर्णं ददाति। उतापि च यद्धिरण्यं रजतमस्ति। स्वर्ण के हिरण्यमित्याम्नानात्। तच्च ददाति। किंच सान्नं वनुते। ददाति। वनोतिरच दानार्थः। तस्मान्नोऽस्प्रदीयो य आत्मास्ति स वर्म विजानम् कवचं यथायुधानां निवारकं तद्वद्दुरितानि वारयतीति कवचमिति विजान्न दक्षिणामश्वादिदानशीलां कृणुते। ऋत्विग्भ्यः करोति ॥

अन्वय–

दक्षिणा अश्वम् दक्षिणा णां ददाति, दक्षिणा चन्द्रम्उत यत् हिरण्यम्, दक्षिणा अन्न वनुते यः नः आत्मा विजानन् दक्षिणां वर्म ऋणुते।

हिन्दी अनुवाद–

(दक्षिणा) यजमान द्वारा दी जाने वाली दक्षिणा (अश्वम्) अश्व को और (दक्षिणा) दक्षिणा (गाम्) गाय को (ददाति) देती है। (दक्षिणा) दक्षिणा (चन्द्रम्) स्वर्ण को प्रदान करती है, (उत) और (यत्) जो (हिरण्यं)

कान्तिमान रत्न हो उनको भी देती है। (दक्षिणा) दसिगा (अन्नं) अनाज को(वनुते) प्रदान करती है (यः) जो अनाज (नः) हमारा मनुष्यों का (आत्मा) जीवन है। (विजावन्) इस तथ्य को जानने वाला यजमान (दक्षिणां) दक्षिणा को (वर्म) अपना कवच (कृणुते) बना लेता है।

भावार्थ–

यज्ञ कर्म के लिए यजमान दक्षिणा में अश्व, गौ, चांदी, स्वर्ण, अन्न आदि प्रदान करता है। अन्न ही प्राणियों को जीवन प्रदान करता है। यही दक्षिणा यजमान की कवच बनकर रक्षा करती है।

संहिता पाठ–

न भो॒जा म॑म्रुर्न न्य॒र्थमी॑युर्न रि॑ष्यंति॒ न व्य॑थंते ह भो॒जाः ।
इ॒दं यद्विश्वं॒ भुव॑नं॒ स्व॑श्चै॒तत्सर्वं॒ दक्षि॑णैभ्यो ददाति ॥८॥

पद पाठ–

न। भो॒जाः। म॒म्रुः। न। नि॒ऽअर्थ। ई॒युः।
न। रि॒ष्यं॒ति॒। न। व्य॒थं॒ते॒। ह॒। भो॒जाः।
इ॒दं। यत्। विश्वं। भुवनं। स्व१॒॑रिति स्वः। च॒ ।
ए॒तत् । सर्वं। दक्षिणा । ए॒भ्य॒ः । द॒दा॒ति॒ ॥८॥

सायण भाव–

भोजा भोजयितारो धनादिदानेन दातारो न मम्रुः। न म्रियंते। देवत्वं भजंत इत्यर्थः। अत एवं न्यर्थ ॥ ऋ गर्ता। उषिकुषिगार्तिभ्यस्थन्। उ. २.४.। समासे थाथादिस्वरः ॥ निकृष्टां गतिं नेयुः। न प्राप्नुवंति॥ इण गतौ। लिटि दीर्घ इणः कितीति दीर्घः॥ तथा न रिष्यंति। कैश्चिदप्यहिंसिता भवंति॥

कर्मणि व्यत्ययेन परस्मैपदं॥ अत एव भोजा दातारो न व्यथंते। परस्परं न भीता न बाधिता वा भवंति। ह प्रसिद्धौ। किंचेदं परिदृश्यमानं विश्वं संर्व भुवनं यद्भूतजातमस्ति स्वश्च स्वर्गलोकश्च एतत्सर्व दक्षिणा स्वयमेभ्यस्तद्दातृभ्यो ददाति। प्रयच्छति ॥

अन्वय-

भोजा न मम्रुः न न्यर्थम् ईयुः ह भोजाः न रिष्यन्ति न व्यथन्ते। इदं यत् विश्वं भुवन च स्वः एवत् सर्वं दक्षिणा एभ्यः ददाति।

हिन्दी अनुवाद-

(भोजाः) दानदाता (न मम्रुः) यश से कमी नहीं मरते (न)ना हीं (न्यर्थम्) निकृष्ट गति को (ईयुः) प्राप्त होते हैं। (ह) निश्चय से (भोजाः) दानदाता यजमान (न रिष्यन्ति) न तो हिंसित होते है और (न व्यथन्ते) न व्यथा को प्राप्त होते हैं। (इदं) यह (यत्) जो कि (विश्वं) सम्पूर्ण (भुवनं) जगत् है (स्वः च) और स्वर्ग है, (एतत्) यह (सर्वं) सब (दक्षिणा) दक्षिणा ही (एभ्यः) इन दानियां को (ददाति) प्रदान करती है।

भावार्थ -

दक्षिणा देने वालों का यश कभी नहीं मरता। दान देने वालों को कभी निकृष्ट गति प्राप्त नहीं होती। दान देने वाले कभी हिंसित नहीं होते, कभी व्यथित नहीं होते। यह जो सम्पूर्ण नगत् है और स्वर्ग है, दक्षिणा ही इनको प्रदान करती है।

संहिता पाठ-

भो॒जा जि॑ग्युः सु॒र॒भिं योनि॒मग्रे॑ भो॒जा जि॑ग्युर्व॒ध्वं१॒'या सु॒वासाः।
भो॒जा जि॑ग्युरं॒तः पेयं॒ सुरा॑या भो॒जा जि॑ग्यु॒र्ये अहू॑ताः प्र॒यंति ॥ ९॥

पद पाठ–

भोजाः । जिग्युः । सुरभिं । योनिं । अग्रे ।
भोजाः । जिग्युः । वध्वं । या । सुऽवासाः ।
भोजाः । जिग्युः । अंतःऽपेयं । सुरायाः ।
भोजाः । जिग्युः । ये । अहूताः । प्रऽयंति ॥९॥

सायण भाष्य–

भोजा दातारोऽग्रे ग्रथममेव योनिं क्षीरादेरुत्पत्तिस्थानं सुरभिं धेनुं जिग्युः। शत्रुभ्यो जितवंतः ॥ जि जये । लिटि सन्लिटोर्जरित्यभ्यासादुत्तरस्य कवर्गादेशः।। तथा भोजा दातारो वध्वं वधूं नवोढां स्त्रीं जिग्युः।। या स्त्री सुवासाः शोभनवासा अस्ति तों जिग्युः। किं च भोजाः शत्रूणां सुराया अन्तः पेयमंतपानं जिग्युः।। पा पाने। भावे यत् । ईद्यतीतीत्वं । आर्धधातुकलक्षणो गुणः । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वं।। ये शत्रवोऽहूता बलाधिक्येनाहूयमानाः प्रयंति प्रमुखमागच्छंति तान्भोजा दक्षिणाया दातारो जना जिग्युः। जयंति।।

अन्वय–

भोजाः सुरभिं योनिम् अग्रे जिग्युः भोजा वध्वं जिग्युः या सुवासाः। भोजाः सुराया अन्तः पेयं जिग्युः । ये अहूताः प्रयन्ति, भोजाः जिग्युः।

हिन्दी अनुवाद–

(भोजाः) दानदाताओं ने (सुरभिं) सुगन्ध से भरे (योनिं) घर को (अग्रे) सबसे पहले ही (जिग्युः) जीत लिया था। (भोजा) दानदाताओं ने (वध्वम्) वधू को (जिग्यूः) जीत लिया था (याः) जो वधू (सुवासाः) सुन्दर वस्त्रों को पहने थीं। (भोजाः) दानदाताओं ने (सुरायाः) सुरा के (अन्तः देयम्) अन्तर्निहित पेय

द्रव्य जो (जिग्युः) जीत लिया था। जो आपत्तियां (अहूताः) बिना बुलाये ही (प्रयन्ति) आ जाती हैं, उनको (भोजाः) दानदाताओं में (जिग्युः) जीत लिया था।

भावार्थ –

सुगन्ध से परिपूर्ण घर जो, सुन्दर वस्त्र पहनने वाली नव वधू को, उत्तम पेय पदार्थों से दानशील व्यक्ति प्राप्त करते हैं। जो अनागत विपत्तियां है, दानी जन उनको भी पार कर जाते हैं।

संहिता पाठ–

भोजायाश्वं सं सृजंत्याशुं भोजायास्ते कन्याइ शुंभमाना।

भोजस्येदं पुष्करिणींव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रं॥१०॥

पद पाठ–

भोजार्य। अश्वं। सं। सृजंति। आशुं।

भोजार्य। आस्ते। कन्या। शुंभमाना।

भोजस्य। इदं। पुष्करिणीऽइव। वेश्मं।

परिंऽकृतं। देवमानाऽईव। चित्रं॥१०॥

सायण भाष्य–

भोजाय दात्र आशुं शीघ्रगामिनमश्वं सं सृजंति। परिचारकाः सम्यगलंकुर्वंति। मृजू शौचालंकारयोः। तथा कन्या। कन्यात्वेनात्र संनिकर्षादभिनवं यौवनं लक्ष्यते। अभिनवयौवना शुंभमाना शरीरावयवशोभया वस्त्राद्यलंकारशोभया च शोभमाना स्त्री तस्मै भोजाय दात्र आस्ते। तथा भोजस्य दातुरेव हृदयाल्हादकरं वेश्म गृहं भवति।

कीदृशं। पुष्पकरिणीव। पुष्कराणि पद्मानि यस्याः संतीति पुष्करिणी सरसी। सा यथा पद्महंसादिभिरलंकृता भवति। तद्वत् परिष्कृतं वितानादिभिरलंकृतं। परिपूर्वस्य करोतेर्भूषणार्थे संहितायां सुडागमः। परिनिविभ्य इति सुटः षत्वं। गतिरनंतर इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वं। तथा देवमानेव सुपां सुलुगिति प्रथमैकवचनस्याकारः। देवमानमिव चित्रं मनोहरं वेश्म तस्य भवति।

अन्वय–

भोजाय आशुम् अश्वं संजृन्ति। भोजाय शुम्भमाना कन्या आस्ते। भोजस्य पुष्करिणी इव इदं परिष्कृतं देवमाना इव चित्रं वेश्म।

हिन्दी अनुवाद–

(भोजाय) दानी पुरुष के लिए उसके परिवार के व्यक्ति (आशुं) तीव्र गति वाले (अश्वं) अश्व को (संजृन्ति) सुसज्जित करते हैं। (भोजाय) दानी व्यक्ति के लिए (शुम्भमाना) सजा सजी सुसज्जित (कन्या) युवती कन्या विवाह के लिए (आस्ते) विद्यमान रहती है। (भोजस्य) दानी पुरुष के लिए (पुरुष्करिणी इव) कमलों से भरे जलाशय के समान (इद्रं) यह (परिष्कृतं) साफ स्वच्छ और अलंकृत (देवमाना इव) देवमंदिर के सामान सुन्दर (वेश्म) घर रहता है।

भावार्थ –

दानी पुरुष को उसके परिवार के लोग तीव्रगामी अश्व प्रदान कहते है। सुन्दर सुसज्जित कन्या को विवाह के लिए तैयार रखते है और उसका घर सुन्दर और परिष्कृत रहता है।

संहिता पाठ–

भो॒जमश्वा॑: सुष्ठु॒वाहो॑ वहंति सु॒वृद्रथो॑ वर्तते॒ दक्षि॑णायाः ।
भो॒जं दे॑वासोऽवता भरे॑षु भो॒जः शत्रू॒न्त्समनी॒केषु॒ जेता॑ ॥११॥

पद पाठ–

भो॒जं । अश्वा॑: । सुष्ठु॒ऽवाह॑: । व॒हं॒ति॒ ।
सु॒ऽवृत् । रथ॑: । व॒र्त॒ते॒ । दक्षि॑णायाः ।
भो॒जं । दे॒वा॒स॒: । अ॒व॒त॒ । भरे॑षु ।
भो॒जः । शत्रू॑न् । स॒म्ऽअ॒नी॒केषु॒ । जेता॑ ॥११॥

सायण भाष्य–

सुष्ठुवाहः ॥ वह प्रापणे । वहश्चेति ण्विप्रत्ययः ॥ शोभनवहनसमर्था अश्वा भोजं दातारं वहंति । लक्ष्यं देश प्रापयंति । ततो दक्षिणाया दातुर्यजमानस्य सुवृत् सुष्ठु चक्रादिवर्तनं यस्य सोऽश्वादिसहितो रथो वर्तते। अथ प्रत्यक्षः । हे देवासो हे देवा इंद्रादयः भरेषु। भ्रियत आहवनीयादिरूपेणाग्निरत्रेति भरा यज्ञाः । यद्वा ॥ भृ भर्त्सने ॥ भृणंति भर्त्सयंति योद्धारोऽत्रेति भराः संग्रामाः। तेषु भोजं दातारमवत । रक्षत । ततो युष्माभिः पालितो भोजो धनादिद्दानेन जनानां भोजयिता सन् समनीकेषु संग्रामेषु शचून्जेता जयशीलो भवति॥ जि जये। ताच्छीलिकस्तृन्। अत एव न लोकाव्ययेति शत्रुशब्दस्य पष्ठीप्रतिषेधः ।।४।।

अन्वय–

भोजम् सुष्ठुवाहो अश्वाः वहन्ति दक्षिणायाः सुवृत्रथो वर्तते। देवासः भोजं भरेषु अवत भोजः समनीकेषु शत्रून् जेता।

हिन्दी अनुवाद-

(भोजम्) दानशील व्यक्ति को (सुष्ठुवाहः) उत्तमता से वहन करने वाले (अश्वाः) अश्व (वहन्ति) वहन करते हैं। (दक्षिणायाः) उनके द्वारा दी गई दक्षिणा का (सुवृत्) उत्तम चक्र वाला गोल (रथः) रथ उनके लिए (वर्तते) तैयार रहता है। (देवासः) देवता या विद्वानजन (भोजम्) दानशील यजमान के (भरेषु) आपत्तियों के समूह में (अवत) रक्षा करते हैं। (भोजः) दानशील व्यक्ति (समनीकेषु) युद्धों में (जेता) विजय को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ -

दक्षिणा देने वाले यजमानों को तीव्रगामी अश्व सवारी के लिये प्राप्त होते हैं। और सुगठित रथ वाहन के रूप में प्राप्त होता है। देवता उनकी रक्षा करते हैं और युद्धों में उनकी विजय होती है।

****

२०. सरमा देवशुनी

ऋग्वेद-दशम मण्डल सूक्त १०८, मन्त्र १-११

ऋषि-सरमा देवशुनी

देवता- पणयः सरमा

छन्दः - त्रिष्टुप्

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका-

किमिच्छंतीत्येकादशर्चं नवमं सूक्तं त्रैष्टुभं। ऐंद्रपुरोहितस्य बृहस्पतेर्गोषु वलनाम्नोऽसुरस्य भटैः पणिनामकैरसुरैरपहृत्य गुहायां निहितामु सतीषु बृहस्पतिप्रेरितेनेंद्रेणा गवामन्वेषणाय सरमा नाम देवश्रृनी प्रेषिता। सा च महतीं नदीमुत्तीर्य वलपुरं प्राप्य गुप्तस्थाने नीतास्ता गा ददर्श। अथ तस्मिन्नंतरे पणय इदं वृत्तांतमवगच्छंत एनां मित्रीकर्तुं संवादमकुर्वन्। तत्र प्रथमातृतीयाद्या अयुजोऽत्यावर्जिताः पणीनां वाक्यानि। अत्र त ऋषयः सरमा देवता। द्वितियाचतुर्थयाद्या युज एकादशी च षट् सरमाया वाक्यानि। अतस्तासु सर्पिः पणयो देवता। तथा चानुक्रांतं। किमिच्छंती पणिभिरसुरैर्निगूल्हा गा अन्वेष्टु सरमां देवशुनीमिंद्रेण प्रहितामयुग्भिः पणयो मित्रीयंत प्रोचुः सा तान्ययुग्मांत्याभिरनिच्छंती प्रत्याचष्ट इति॥ गतो विनियोगः॥

संहिता पाठ -

किमिच्छंतीं सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्कथं रसाया अतरः पयांसि॥१॥

पद पाठ–

किं। इच्छंतीं सरमा। प्र। इदं। आनद्।

दूरे। अध्वा। जगुरिः। पराचैः।

का। अस्मेऽहिंतिः। का। परिंऽतक्म्या। आसीत्।

कथं। रसायाः। अतरः। पयांसि॥१॥

सायण भाष्य–

अनयागच्छतीं सरमां दृष्टा पणयो वदंति। सरमा सरणशीलैतन्नामिका देवशुनि किमिच्छंती किं प्रार्थयमाना सतीदमस्मदीयं स्थानं प्रानट्। प्राप्नोत्॥ आङ्पूर्वो नशिर्व्यासिकर्मा। तस्य लुङि मंत्रे घसेत्यादिना च्लेर्लुक्। छंदस्यपि दृश्यत इत्याडागमः॥ पराचैः पराचि पराङ्मुखान्यावृत्तिवर्जितानि यानि गमनानि तैर्जगुरिरुद्गूर्णः। महता प्रयत्नेनापि गंतुं न शक्यत इत्यर्थः। गृ निगरणे। आदृगमहनेत्यादिना किन्प्रत्ययः। बहुलं छंदसि। पा.७.१.१०३.। इत्युत्वं॥ तादृशोऽयमध्वा दूरे हि। विप्रकृष्टः खलु। यद्वा। पराचैः परांच नैर्जगुरिरत्यर्थ मंत्री पार्ष्णिभागमनालोकमाना सतीदं स्थानं प्राप्नोति। दूरेऽयमध्वा यदृच्छया गंतुं न शक्यते। अतो वयमेतां पृच्छामः। हे सरमे का कीदृश्यस्मेहितिः। कोऽस्मास्वर्थहितिः। कोऽस्मासु त्वदपेक्षितार्थो निहितः। यद्वा। अस्मासु कोऽर्थो गतः॥ दधातेर्हिनोतेर्वा क्तिनि रूपं॥ आगच्छंत्यास्तव का कीदृशी परितक्म्या रात्रिरासीत्। यद्वा। तकतिर्गत्यर्थः। परितकनं परितो गमनं भ्रमणं वा कीदृशमासीत्। कथं च रसाया शब्दायमानाया अंतरिक्षनद्या योजनशतविस्तीर्णायाः पयांस्युदकान्यतरः। तीर्णवत्यसि। एतद्वद। अत्र किमिच्छंती सरमेदं प्रानडित्यादिकं निरुक्तं द्रष्टव्यं। नि. ११.२४॥

अन्वय–

किम् इच्छन्ती सरमा इदं प्र आनट्। पराचैः जगुरैः हि अध्वा दूरे।

का अस्मे अहितिः का परितक्या आसीत् कथं रसायाः पयांसि अतरः।

हिन्दी अनुवाद–

(किम्)किस बात की (इच्छन्ती)इच्छा करती हुई(सरमा)हे देवशुनी सरमा(इदम्) इस स्थान पर (प्रआनट्)तुम आ पहुंची हो (पराचैः)आकर पुनः लौट आने जाने योग्य गतियों से तुम (जगुरिः)प्रयत्न करके भी तुम लौट नहीं सकतीं। (का)कौन सी बात (अस्मै अहितिः) हमारे लिये अहितकारिणी है और (का)कौन सी (परितक्या) रात्रि, चारों ओर यह प्रकाश था,जो (वयं) हमारे (रसायाः) योजनगत विस्तीर्ण जलधारा के (पयांसि) जलों को (अतरः) तुमने तैर कर पार किया है।

भावार्थ –

पणि नामक असुरों ने इन्द्र की गौओं को चुरा कर बहुत दूर कहीं पर्वतों की गुहा में छुपा दिया था। इन्द्र ने सरमा नाम की शुनी को उनको खोज करने लिये भेजा। वह देवशुनी विशाल जलधारा को पार करके पणियों के स्थान पर पहुंची। उसको देख कर पणिं यह कहते हैं । सायण ने अपने भाष्य में इस आख्यान का संकेत दिया है।

संहिता पाठ–

इंद्रस्य दूतीरिंषिता चरामि मह इच्छंती पणयो निधीन्वः।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतरं पयांसि॥२॥

पद पाठ–

इंद्रस्य। दूतीः। इषिता। चरामि।
महः। इच्छंतीं। पणयः। निऽधीन्। वः।
अतिऽस्कदः। भियसा। तत्। नः। आवत्।
तथा। रसायाः। अतरं। पयांसि॥२॥

सायण भाष्य–

अनया तान्सरमा प्रत्युवाच। हे पणय एतन्नामका असुराः इंद्रस्य दूतीः।। सुपां सुलुगिति प्रथमैकवचनस्य सुश्छांदसः।। अहमिषिता तेनैव प्रेषिता सतो चरामि। युष्मदीयं स्थानमागच्छामि। किमर्थं। वो युष्मदीयान्युष्मदीये पर्वतेऽधिष्ठापितान्महो महतो निधीन्बृहस्पतेर्गोनिधीनिच्छंती कामयमाना सती चरामि। किं चातिष्कदः।। स्कंदिर गतिशोषणयोः। भावे क्विप् ।। अतिष्कंदनादतिक्रमणाज्जातेन भियसा भयेन तन्नदीजलं नंः। पूजायां बहुवचनं। मामावत्। अरक्षत्। तथा तेन प्रकारेण रसाया नद्याः पयांस्युदकान्यतरं। तीर्णवत्यस्मि।।

अन्वय–

इन्द्रस्य दूती: इषिता चरामि पणय: व: मह: निधीन् इच्छन्ती। अतिष्कद: भियसा तत् न: आवत् तथा रसाया: पयांसि अतरम्।

हिन्दी अनुवाद–

पणियों के प्रश्न का सरमा उत्तर देती है कि हे पणियो! मैं (इन्द्रस्य)इन्द्र की (दूती:) दूती हूँ और (इषिता)उससे प्रेरित की जाकर (चरामि) विचरण करती हूँ। (पणय:)हे पणियों! (ब:)आपके (सह:)महान् (निधीन्)सम्पत्तियों की (इच्छन्ती)इच्छा करती हुई मैं विचरण करती हूँ। (अतिष्कद:)तुम्हारे द्वारा अतिक्रमण करने के (भियसा)भयसे (तत्)वह नदी का जल(न:)हमारी(आवत्) रक्षा करता है (तथा) इसी प्रकार से मैनें (रसाया:)विशाल जलधारा के (पयांसि)जलों को (अतरम्)तैर कर पार किया है।

भावार्थ –

पणियों के प्रश्न का देवशुनी सरमा ने उत्तर दिया कि वह इन्द्र की दूती है और पणियों की निधि का अन्वेषण करने की इच्छा करती हुई इस स्थान पर आई है। पणि कहीं उसका अतिक्रमण करके उसे नष्ट न कर दें, इस भय से वह विशाल नदी के जल को तैर कर आई है।

संहिता पाठ–

कीदृङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात्।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥३॥

पद पाठ–

कीदृङ्। इंद्रः। सरमे। का। दृशीका।
यस्य। इदं। दूतीः। असरः। पराकात्।
आ। च। गच्छात्। मित्रं। एन। दधाम।
अथ। गवां। गोऽपतिः। नः। भवाति ॥३॥

सायण भाष्य–

तेषां वाक्यं। हे सरमे तव स्थामींद्रःकीदृक। कियत्पराक्रमवान्। का दृशीका ।तस्य कीदृशी दृष्टिः। दृष्टिरूपा सेना कियती। यस्य दूतीर्दूती त्वमिदमस्यदीयं स्थानं पराकादतिदूरादसरः आगमः। इति तामुत्केदानीं ते परस्परमाहुः। एषा सरमा गच्छाच्च। आगच्छतु च॥ गमेर्लेट्याडागमः॥ स्वामी भवाति। भवतु। न ह्येकस्या गोः किंतु बहूनां गवां स्वामी भवतु। वृत्त्यवृत्तिभ्यां स्वामित्वं बाहुल्यं च विवक्ष्यते॥

अन्वय–

सरमे कीदृङ् इन्द्रः का दृशीका , यस्य दूतीः इदं पराकात् असरः। आ गच्छात् च एना मित्रं दधाम। अथ नः गवां गोपतिः भवाति।

हिन्दी अनुवाद–

सरमा का उत्तर सुन कर पणि प्रश्न करते हैं कि (सरमे)हे देवशुनी वह (कीदृग्)कैसा वह (इन्द्रः)इन्द्र है (का)किस प्रकार की (दृशीका)कैसी उसकी शक्ति है। (यस्य) जिस इन्द्र की (दूतीः) दूती बनी हुई तुम (इदं)इस पणियों के स्थान पर (पराकात्)बहुत दूर से (असरः)आ गई हो (आ गच्छात् च) और आई हुई (एनाम्) इस तुमको (मित्रं दधाम) मित्र के रूप में हम धारण करते हैं तुमको अपना मित्र मानते हैं। (अथ)और अब तुम(नः)हमारी (गवां)गौओं के (गोपतिः)गोस्वामी(भवति)होते हो।

भावार्थ –

पणि सरमा से पूछते हैं कि इन्द्र कैसा है और उसकी कितनी शक्ति है, जिसकी दूती बनकर तुम हमारे इस स्थान पर आ गई हो । यह तुम सुदूर स्थान पर आ गई है, तो हम तुमको अपना मित्र मान लें, तुम हमारे द्वारा अपहृत गौओं के स्वामी बनते हो।

संहिता पाठ–

नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स यस्येदं दूतीरसरं पराकात्।
न तं गूहंति स्रवतो गभीरा हता इंद्रेण पणयः शयध्वे॥४॥

पद पाठ–

न। अहं। तं। वेद। दभ्यं। दभत्। सः।
यस्यं। इदं। दूतीः। असरं। पराकात्।

न। तं। गूहंति। स्रवतः। गभीराः।
हताः। इंद्रेण। पणयः। शयध्वे।।४।।

सायण भाष्य-

सरमा वदति। हे पणयः तमिंद्रं दभ्यं हंतव्यमिति न वेद। न जानामि।। दभेरचो यत्।। कथं। स इंद्रो दभत्। सर्वाञ्जनान्दभति। हिनस्त्वेव।। दभेलेर्टि रूपं। वाक्यभेदादनिघातः।। यस्य दूतीर्दूत्यहमिदं युष्मदीयं स्थानं पराकादतिदूरदेशादसरं प्राप्ताभूवं। इंद्रो हिंसितव्यो न भवतीत्यच युक्तिमाह। स्रवतः। स्रवणं स्रवः। तमाचरंति।। आचारार्थे क्विप्। तुगागमः। जसि रूपं।। स्रवणशीला गभीरा गंभीरा नद्यस्तमिंद्रं न गूहंति। न संवृण्वंति। नाच्छादयंति। किंत्वाविष्कुर्वंति। वयं यस्य महिम्ना समुद्रं प्रतिसरामः। तस्मादहिंस्य इत्येनं प्रकटीकुर्वंति।। गुहू संवरणे भौवादिकः।। तस्माद्धि पणयः यूयमिंद्रेण तादृशपराक्रमेण हताः संतः शयध्वे।। शीङ् स्वप्ने। बहुलं छंदसीति शपो लुगभावः।।

अन्वय-

पणयः तम् इन्द्रं दभ्यं अहं न वेद। स दभत् यस्य दूतीः पराकात् इदम् असरम्। गभीराः स्रवतः तं न गूहन्ति। इन्द्रेण हताः पणयः शयध्वे।

हिन्दी अनुवाद-

अब सरमा पुनः पणियों से कहती है -(पणयः)हे पणियो:(तम्)उस (इन्द्रं)इन्द्र को(दभ्यं)दमन किया जाता हुआ (अहं) मैं(न वेद) नहीं जानती हूँ। (स)वह इन्द्र(दभत्)सभी का दमन करता है। (यस्य)जिस इन्द्र की(दूतीः)दूत बन कर (पराकात्)बहुत दूर स्थान से मैं(इदं)इन स्थान पर (असरं)मै आई हूं।(गंभीराः)गहरी(स्रबतः)नदियां (तं)उस स्थान को

(न)नहीं(गूहन्ति)छिपा सकती हैं। हे पणियो:(इन्द्रेण)इन्द्र के द्वारा (हता:)मारे जाकर तुम(शयध्वे) भूमि पर सो जाओगे।

भावार्थ–

अब पणियों को धमका कर सरमा यह कहती है कि इन्द्र का कोई दमन नहीं कर सकता। वह सबका दमन करता है। मैं इन्द्र की दूती बनकर इस स्थान पर बहुत दूर से आयी हूँ। इस स्थान को गहरी नदियाँ भी नहीं छिपा सकतीं। इन्द्र के द्वारा मारे जाकर तुम सो जाओगे।

संहिता पाठ–

इमा गाव: सरमे या ऐच्छ: परिं दिवो अंतान्त्सुभगे पतंती।

कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा संति तिग्मा।।५।।

पद पाठ–

इमा:। गाव:। सरमे। या:। ऐच्छ:।

परिं। दिव:। अंतान्। सुऽभगे। पतंती।

क:। ते। एना:। अव। सृजात्। अयुध्वी।

उत। अस्माकं। आयुधा। संति। तिग्मा।।५।।

सायण भाष्य

क्रुद्धा: पणय: प्रत्यूचु:। हे सुभगे शोभनसौभाग्यवति हे सरमे दिवो द्युलोकस्यांतान्पर्यंतान्परि पतंती कुत्र गावस्तिष्ठंतीति परितो गच्छंती त्वमिमा: परिदृश्यमाना या गाव:।। सब्व्यत्यय।। गा ऐच्छ: कामयसे ता एना गास्ते त्वदीय: कोऽयुध्व्युद्धाव सृजात्। अस्मात्पर्वतादसृजेत्। विनिर्गमयेत्।। सृजेर्लेटि

रूपं। अयुध्वी युधेः त्काप्रत्यये स्त्रात्व्यादयश्चेति निपातितः। नञ्समासत्वाल्ल्यबादेशाभावः। नञः प्रकृतिस्वरत्वं।। उतापि चास्माकं तिग्मा तीक्ष्णान्यायुधायुधानि संति। तस्मादस्माभिर्युद्धकृत्वा को नाम गा आहरति।। ।।४।।

अन्वय-

सरमे सुभगे दिवः अन्तात् परिपतन्ती इमाः याः गावः ऐच्छः एनाः कः ते अयुध्वी अवसृजात्, उत अस्माकम् आयुधाः तिग्माः सन्ति।

हिन्दी अनुवाद-

(सरमे)हे सरमे (सुभगे)सौभाग्य शालिनी तुम सुनो(दिवः)द्युलोक के भी (अन्तात्)पर्यन्त भाग के (परिपतन्ती)परे से भी आती हुई (इमाः)ये (याः)जो (गावः)गौये हैं, इन गौओं को (ऐच्छः)लेना चाहती हो तो (कः)कौन व्यक्ति (ते)तुम्हारे लिये(अयुध्वी)बिना युद्ध किये हुये ही (अवसृजात्)छोड़ देगा। (उत)और (अस्माकं)हम पणियों के भी (आयुधाः)हथियार (तिग्माः)तेज, धार वाले(सन्ति)हैं।

भावार्थ -

सरमा की धमकी सुन कर पणि युद्धकी धमकी देकर कहते हैं- हे सुभगे सरमे! भू प्रदेश तक भी फैली हुई इन गौओं को बिना युद्ध के कौन छोड़ देगा। यदि इन्द्र युद्ध में बहुत कुशल है, तो हम भी उसके लिये तैयार हैं। हमारे भी आयुध तीक्ष्ण हैं। बिना युद्ध में विजय प्राप्त किये इन्द्र इनको लेजा नहीं सकता।

संहिता पाठ-

असेन्याः वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः संतु पापीः।

अधृष्टो व एतवा अस्तु पंथा बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ।।६।।

पद पाठ–

असेन्या। वः। पणयः। वचांसि।

अनिषव्याः। तन्वः। संतु। पापीः।

अधृष्टः। वः। एतवै। अस्तु। पंथाः।

बृहस्पतिः। वः। उभया। न। मृळात्॥६॥

सायण भाष्य–

सा तान्निराह। हे पणयः वो युष्माकं वचांसि पूर्वोक्तानि वचनान्यसेन्यासेन्यानि। सेनार्हाणि न भवंति॥ सेनाशब्दात्तदर्हतीत्यर्थे छंदसि चेति यत्प्रत्ययः। नञा समासः। ययतोश्चातदर्थे। पा.६.२.१५६.। इत्युत्तरपदांतोदात्तत्वं॥ तथा तन्वो युष्मदीयानि शरीराण्यनिषव्या इष्वर्हाणि न संतु पराक्रमराहित्येन॥ पूर्ववत्प्रत्ययः। ओर्गुणः। पा.६.४.१४६.। इति गुणः। स्वरश्च तादृक्। यतः पापीः पापयुक्तानि खलु॥ छंदसीवनिपावितीप्रत्ययः। जसः शः॥ किंच वो युष्मदीयःपंथा मार्ग एतवै गंतुमधृष्टोऽसमर्थोऽस्तु ॥ इण् गतावित्यस्य तुमर्थे तवैप्रत्ययः। तवै चांतश्च युगपत्। पा.६.२.५१.। इति धातोः प्रत्ययस्य च युगपदुदात्तत्वं। तत्र हेतुमाह। वो युष्मदीयानुभयोभयविधान्पूर्वोक्तांस्तन्वो देहान्बृहस्पतिरिंद्रप्रेरितो न मृळात्। न सुखयतु। किंतु बाधेत॥ मृड सुखने। लेट्यडागमः॥

अन्वय–

पणयः वः वचांसि असेन्या तन्वः अनिषव्याः पापीः। अधृष्टः बः पन्थाः एतवैअस्तु। बृहस्पतिः बः उभया न मृळात्।

हिन्दी अनुवाद–

(पणयः)हे पणियोः(व) तुम्हारे (वचांसि)वचन या कथन(असैन्या)युद्ध

करने के योग्य नहीं हैं, सामर्थ्यशाली नहीं हैं और (तन्व:)तुम्हारे शरीर (अनिषव्या:) बाणों के प्रहारों को सहन करने में समर्थ नहीं हैं। वे (पापी:)पापों से भरे हुये हैं। (अधृष्ट:)न धर्षित किया गया (ब:) आप का (पन्था:)मार्ग(एतवै)निकल जाने के लिये (अस्तु)होवे अन्यथा(बृहस्पति:) इन्द्र का गुरु बृहस्पति देवता (ब:)आप पणियों की (उमया)दोनों ही प्रकार से (व मृळात्) सुखी नहीं करेगा।

भावार्थ –

पणियों की धमकी सुन कर देवशुनी सरमा उनको समझाने केढंग से कहती है कि हे पणियो! युद्ध करने के लिये न तो तुम्हारी सेना ही समर्थ है और न तुम्हारे शरीर ही बाणों का प्रहार सहन कर सकते है। जब तक युद्ध नहीं होता तुम यहीं से निकल जा सकते हो। अन्यथा यदि तुम युद्ध की वार्ता करोगे, तो इन्द्र के गुरु वृहस्पति रुष्ट होंगे और तुम्हारे लिये सुखी होने के सब रास्ते बन्द हो जायेंगे।

संहिता पाठ–

अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः।
रक्षंति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगंथ॥७॥

पद पाठ–

अयं। निऽधिः। सरमे। अद्रिऽबुध्नः।
गोभिः। अश्वेभिः। वसुऽभिः। निऽऋष्टः।
रक्षंति। तं। पणयः। ये। सुऽगोपाः।
रेकु। पदं। अलकं। आ। जगंथ ॥७॥

सायण भाष्य-

ते पुनराहु:। हे सरमे अयं निधिरस्मदीय:कोशोऽद्रिबुध्न:।। बन्ध बंधने। बंधेर्ब्रधिबुधी च। उ.३.४.। इति नप्रत्ययो बुध इत्यादेश:।। अद्रिवंधको यस्य तादृश:। तथाहृतैर्गोभिरश्वेश्च वसुभिरात्मीयैर्धनैश्च न्यृष्टो नितरां प्राप्तो भवति।। ऋषि गतौ। क्तप्रत्यये श्वीदितो निषायामितीट्प्रतिषेध:। गतिरनंतर इति गते: प्रकृतिस्वरत्वं।। सुगोपा:।। गुपू रक्षणे। आयप्रत्ययांतात्क्वि-प्यातोलोपधालोपौ।। सुष्ठु ेपायितारो ये पणयस्तेऽसुरास्तं निधिं रक्षंति। पालयंति। रेकु।। रेकृ शंकायां। औणादिक उप्रत्यय:।। शंकितं गोभि: शब्दायमानं पदमस्माभि: पालितं स्थानमलकं व्यर्थमेवा जगंथ। आगतवत्यसि।। गमेर्लिटि रूपं।।

अन्वय-

सरमे अयं निष्टि: अद्रिबुध्न: गोमि: अश्वेमि वसुभि: निऋष्ट:। ये सुगोपा: पणय: ते तं रक्षन्ति रेकु पदम् अलकम् आ जगन्थ।

हिन्दी शब्दार्थ-

पणि पुन: कहते है- हे सरमे: (अयं)यह गौरूप (निधि:)कोष और निधि (अद्रि बुध्न:)पर्वतों द्वारा संरक्षित है, (गोमि:)गौओं द्वारा (अश्वेमि:)और अश्वों द्वारा (वसुमि:)और वसुओं द्वारा (नि ऋष्ट:) व्याप्त है, अर्थात् उनके द्वारा संरक्षित है। (ये)जो (सुगोपा:)अच्छी प्रकार से रक्षा करने वाले रक्षक(पणम:)पणि लोग हैं वे (तं)उस निधि की(रक्षन्ति) रक्षा करते हैं। (रेकुपदं)इस प्रकार इस शंकास्पद स्थान पर तुम (अलकं) व्यर्थ ही (आ जगन्थ) आ गई हो।

भावार्थ –

पणि पुनः सरमा से कहते हैं कि हे सरमेः यह स्थान चारों ओर पर्वतों से बंधा होने के कारण पूर्णतः सुरक्षित है। यहाँ गौओ, अश्वों औरऐश्वर्य से यह पूर्णतः सुरक्षित है। कोष की रक्षा करने वाले वीर पणि इस स्थान की रक्षा करते हैं। तुम व्यर्थ ही इस स्थान पर गई हो यहां तुमको सुख प्राप्त नहीं होगा।

संहिता पाठ–

एह गमन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अंगिरसो नवग्वाः।

त एतमूर्वं वि भजंत गोनामथैतद्वचः पणयो वमन्नित्॥८॥

पद पाठ–

आ। इह। गमन्। ऋषयः। सोमऽशिताः।

अयास्यः। अंगिरसः। नवऽग्वाः।

ते। एतं। ऊर्वं। वि। भजंत। गोनां।

अथ। एतत्। वचः। पणयः। वमन्। इत्॥८॥

सायण भाष्य–

संरमा पुनः प्रत्युवाच। हे पणयः सोमशिताः सोमेन तीक्ष्णीकृताः सोमपानेन मत्ताः॥ शिञ् निशाने। कर्मणि क्तप्रत्ययः। तृतीया कर्मणीति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं॥ तादृशा नवग्वा नवगतयः। यद्वा। अंगिरसां सत्रमासीनानां मध्ये केचन नवसु माःस्वध्यतिष्ठन् ते नवग्वाः। अनेन दशग्वा अप्युपलक्ष्यंते। उभयविधास्ते ऽगिरस ऋषयः तेषां प्रथमोऽयास्य एतन्नामा च त एत इह युष्मदीये स्थान आ गमन्। आगच्छेयुः॥ गमेश्छंदसि

लुङ्लङ्लिट इति सार्वकालिको लुङ् लृदित्वाच्चलेरङ् आगत्य च ते गोनां।। गोः पादांत इति च्छंदसि नुडागमः।। गवामूर्व तं समूहं विं भजंत। विभागं कुर्युः ।। अत्रापि पूर्ववत्सार्वकालिको लुङ्। अथानंतरं पणयो यूयमेतद्वचः पूर्व यद्यर्थमागतासीति यद्वार्थमागतासीति यद्वाक्यमवोचत तद्वाक्यं तदा वमन्निद्वमंतः परित्यजंत एव भवथ।।वमु उद्गिरणे। शतरि सुपां सुलुगिति जसो लुक्। नुमागमः । संयोगांतस्य लोपः। यद्वा। लडिरूपं। स्वरश्छांदसः।।

अन्वय-

सोमशिताः अयास्यः नवग्वाः आङ्गिरसः ऋषयः इह आ गमन् ते गोनाम् एतम् ऊर्वं विभजन्त । अथ एतत् वचः पणयः वमन् इत्।

हिन्दी अनुवाद-

(सोमशिताः)सोम तत्व को जानने वाले या सोमपान करने वाले, (अयास्यः) लोहे के समान सुदृढ(नवग्वाः)नवीन गति वाले (आङ्गिरसः)अग्नि के अंगारों के समान तेजस्वी (ऋषयः)ऋषि गण(इह) इस स्थान पर (आ गमन्)आ गये है। (ते)वे (गोनां) गौओं के (एतत्) इस (ऊर्व) समूह का (वि भजन्त)विमांग करते हैं। (अथ) और इसके बाद (एतत्) तुम्हारे इस (वचः)वचन का कि मै व्यर्थ यहां आई हुं,(पणयः)हेपणियो! (वमन् इत्)छोड्ने वाले हो ओ भाव-सरमा पणियों से पुनः कहती है- हे पणियों ये ऋषिगण यहां आ गये हैं, जो सोमपान करने वाले है, लोहे के समान कठोर हैं, नवीन गति वाले हैं और अग्नि के अङ्गारों के समान दीप्तिशाली हैं। वे इन गौओं का विभाजन करके रहेंगे। अतः हे पणियों तुम यह कहना छोड़ दो कि मैं यहां व्यर्थ ही आई हूॅ।

संहिता पाठ–

एवा च त्वं सरम आजगंथ प्रबाधिता सहसा दैव्येन।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम॥९॥

पद पाठ–

एव । च। त्वं। सरमे। आऽजगंथ।
प्रऽबाधिता। सहसा। दैव्येन।
स्वसारं। त्वा। कृणवै। मा। पुनः। गाः।
अप। ते। गवां। सुऽभगे। भजाम॥ ॥

सायण भाष्य–

तयैवमुक्ते सति पणयः प्रणयवाक्यमाहुः । हे सरमे त्वं दैव्येन देवसंबंधिना सहसा बलेन प्रबाधिता यथा तथा बलपुरं प्राप्यं तत्र स्थिता गा दृष्ट्वा पुनरागच्छेति तेन प्रपीडिता त्वमेवं चेदाजगंथ आगतवत्यसि॥ चशब्दश्चदेर्थे। निपातैर्यद्यदिहंतेति तिडो निघाताभावः। गमेर्लिटि थलि रूपं। सह सुपेत्यच सहेति योगविभागात्समासः। तिङि चोदात्तवतीति गतेर्निघातः। लित्स्वरः॥ तर्हि त्वा त्वां स्वसारं भगिनीं कृणवै। करवै। समूहापेक्षैकवचनं। त्वं तु पुनर्मा गाः। इंद्रादीन्मा गच्छ। अपि तर्हि हे सुभगे सरमे ते त्वदीयानां गवां समूहं पर्वतादपगमय्य भजाम। त्वं च वयं च विभजाम। विभागं करवामेत्यर्थः॥

अन्वय–

सरमे त्वं दैव्येन सहसा प्रबाधिता आ जगन्थ एव त्वां स्वसारं कृणवै पुनः माः गाः सुभगे तेःगवां अप भजाम।

हिन्दी अनुवाद-

पणि पुनः सरमा को अपने पक्ष में लेने के लिये समझाते हुये कहते हैं- (सरमे)हे देवशुनी सरमे (त्वं)तू (दैव्येन)देवताओं के (सहसा)बल और सामर्थ्य से (प्रबाधिता)बाधित होकर (आ जगन्थ एव)आ ही गई हो। (त्वां)तुझको हम (स्वसारं)अपनी बहन (कृणवै) बनाते हैं। (पुनः) तुम फिर यहां से (मा)मत (गाः)जाओ। (सुभगे)हे सौभाग्यशालिनी सरमे। (ते)तेरे लिये (गवां)गौओं का (अपभजाम)बंटवारा कर देते हैं।

भावार्थ-

सरमा के वचनों को सुन कर पणि पुनः सरमा को प्रलोभन देकर अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करते हैं। वे कहते हैं कि दैवी शक्ति से तुम यहां आ गई हो। तुमको हम अपनी बहन बनाते हें तुम अब यहां से मत जाओ। हम तुम्हारे लिये गौओं का बंटवारा कर देते हैं।

संहिता पाठ-

नाहं वेंद भ्रातृत्वं नो स्वंसृत्वमिंद्रों विदुरंगिरसश्च घोराः।
गोकांमा मे अच्छदयन्यदायमपार्त इत पणयो वरींयः॥१०॥

पद पाठ-

न। अहं। वेद। भ्रातृऽत्वं। नो इतिं। स्वसृऽत्वं।
इंद्रः। विदुः। अंगिरसः। च। घोराः।
गोऽकांमाः मे। अच्छदयन्। यत्। आयं।
अपं। अतः। इत। पणयः। वरींयः॥१०॥

सायण भाष्य-

सा तान्प्रत्याचष्टे। हे पणयः अहं भ्रातृत्वं न वेद। न जानामि। तथा

स्वसृत्वं च नो वेद। नैव जानामि। के जानंति। तानाह। इंद्रो घोरा: शत्रूणां भयंकरा अंगिरसश्च विदु:। जानंति। किंचास्मात्स्थानादहं यद्यदायं इंद्रादीन्प्राप्नवं।। अय पय गतौ। लङि रूपं।। तदा मे मदीया गोकामा युष्माभिरपहृता गा: कामयमाना इंद्रादय अच्छदयन्। युष्मदीयं स्थानमाच्छादयंति।। छद अपवारणे।। अत: कारणाद् हे पणय: वरीय उरुतरं गवां वृंदं परित्यज्यापेत। अन्यत्स्थानं प्रति गच्छत। यद्वा। वरीय: प्रभूतमतिदूर देशं गच्छत।। इत। इण गतौ। लोटि रूपं। वरीय:। उरु शब्दादीयसुनि प्रियस्थिरेत्यादिना वरादेश:।।

अन्वय–

अहं भातृत्वं न वेद नोस्वसृत्वं इन्द्र: घोरा अङ्गिरस: च विदु: वत् आयं गोकामा: मे अच्छदयन् अत: पणय: इत: अप, वरीय:।

हिन्दी अनुवाद–

पणियों द्वारा प्रलोभन दिया जाने पर सरया उनको फटकार कर कहती है– हे पणियो !(अहं)मैं(भ्रातृत्वं)तुम्हारे साथ भाई पन की बात को (न वेद) नहीं जानती हूॅ(नो)नाहीं (स्वसृत्वं)बहन होने की बात को जानती हूॅ। इस बात को (इन्द्र:) देवराज इन्द्र और उसके (घोरा:) भयानक (अङ्गिरस:) अङ्गिरस सैनिक (विदु:) जान सकते हैं। (यत्)जब कि (आयं)मैं इन्द्र के पास जाऊंगी, (गोकामा:)गौओं की कामना करने वाले वे इन्द्र आदि देवता (मे) मुझ सरमा को (अच्छदयन्) घेर लेंगे । (अत:) इसलिये(पणय:)हे पणियो! (इत:)इस स्थान से (अप) गौओं को छोड़ कर तुम चले जाओ। (वरीय:)यह बात ही तुम्हारे लिये अच्छी है।

भावार्थ –

पणियों द्वारा प्रलोभन देने की बात सुन कर अप्रसन्न होकर सरमा कहती

है- हे पणियो! मैं न तो भाई पने की और न बहनपने की बात जानती हूँ। मैं तो जब इन्द्र पास पहनूंगी तो देवता मुझको घेर लेंगे। हे पणियो! अच्छा होगा कि तुम इस स्थान को छोङ कर अन्यत्र चले जाओ।

संहिता पाठ-

दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यंतु मिनतीर्ऋतेन।
बृहस्पतिर्या अविंदन्निगूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः॥११॥

पद पाठ-

दूरं। इत। पणयः। वरीयः।
उत्। गावः। यंतु। मिनतीः। ऋतेन।
बृहस्पतिः। याः। अविंदत्। निऽगूळ्हाः।
सोमः। ग्रावाणः। ऋषयः। च। विप्राः॥११॥

सायण भाष्य-

हे पणयः यूयं वरीय उरुतरं दूरं दूरदेशमित। गच्छत। युष्माभिरपहृता गाव ऋतेन सत्येन मिनतीर्मिनत्यो द्वारस्य पिधायकं पर्वतं हिंसत्यो विदारयंत्य उद्यंतु। तस्मादुद्गच्छंतु। यद्वा। मिनतीः॥ व्यत्ययेन कर्मणि शतृ॥ मीयमाना युष्माभिर्वाध्यमानास्ता गावः॥ सुब्व्यत्ययः॥ गा ऋतेन स्तुतिभिर्गतव्येनेंद्रेण सहायेन बृहस्पत्यादय उद्यंतु। पर्वतादुद्गमयतु। निगूढा नितरां स्थापिता या गा बृहस्पतिरविंदत् लप्स्यते तथा सोमस्तदभिषवकारिणो ग्रावाणश्च विप्रा मेधाविन ऋषयोंऽगिरसश्च लप्स्यंते। विद्लृलाभे तौदादिकः। तस्माच्छंदसि लुङ्लङ्लिट इति भविष्यदर्थे लङ्। शे मुचादीनामिति नुमागमः॥

अन्वय-

पणयः दूरं वरीयः इतः गाव ऋतेन मिनतीः उत्यन्तु याः निगूळ्हाः बृहस्पतिः सोमः ग्रावाणः ऋषयः विप्रः च अविन्दन्।

हिन्दी अनुवाद-

(पणयः) हे पणियो! (इतः) यहां से (दूरं वरीयः) दूर के अच्छे स्थान पर आगे चले जाओ। (गावः) तुम्हारे द्वारा हरण की गई गौवे (ऋतेन) जल के माध्यम से (मिनतीः) द्वार के टकने को तोड़ती हुई (उद् यन्तु) निकल जावेंगी। (निगूढ़ा) छिपाई जाकर (याः) जिन बाहर निकलती हुई गौओं को (बृहस्पतिः) इन्द्र के गुरु बृहस्पति देवता ने (सोमः) सोम देवता ने, (ग्रावाणः) अभिषव करने वाले देवताओं ने (ऋषयः) मेधावी ऋषियों ने (विप्राः च) और तत्वज्ञानी विप्रोने (अविन्दन्) जान लिया था।

भावार्थ-

अन्त में सरमा पणियों से उनके भले के लिये कहती हैं कि हे पणियो! यहां से तुम दूर कहीं अच्छे स्थान पर चले जाओ। तुम्हारे द्वारा अपहरण करके छिपाई गई गौएं तो उस स्थान के द्वार को तोड़कर निकल जायेंगी। बृहस्पति, सोम, अभिषव करने वाले, मेधावी ऋषियों और अंगिराओं आदि सभी देवताओं ने जान लिया है और वे उनको प्राप्त कर लेंगे।

ऋषि दयानन्द ने वैदिक संहिताओं में इतिहास और आख्यानों के अस्तित्व का निषेध किया है। उनके अनुसार इन मन्त्रों का आध्यात्मिक और आधिभौतिक अर्थ है। सूर्य की किरणों द्वारा मेघ को छिपा लेना ही पणियों द्वारा इन्द्र की गौओं को अपहरण कर लेना है। इनके अपहरण को खोजने का कार्य सरमा देवशुनी द्वारा किया जाता है। इस सूक्त में इस प्राकृतिक घटना को आलंकारिक रूप में वेदवाणी माध्यमिका, वाग् द्वारा प्रस्तुत किया गया है। पणि कहते हैं कि अन्तरिक्ष जलधारा को याद करके सरमा किस प्रकार रात्रि कैसे बिताती है और उससे किसका हित होता है।

२१. जुहू ब्रह्मजाया

ऋग्वेद–दशम मण्डल सूक्त १०९, मन्त्र १–७

ऋषि –ब्रह्मवादिनी जुहू

देवता– विश्वेदेवा:

छन्दः – ६ तथा ७ अनुष्टुप् शेष त्रिष्टुप्

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका–

तेऽवदन्निति सप्तर्चं दशमं सूक्तं। जुहूर्नाम ब्रह्मवादिन्यृषिः। ब्रह्मपुत्र ऊर्ध्वनाभा नाम वा। षष्ठीसप्तस्यावनुष्टुभा। शिष्टाः पंच त्रिष्टुभः। विश्वे देवा देवता। तथा चानुक्रांतं। तेऽवदन्सप्त जुहूर्ब्रह्मजाया ब्राह्मोवोर्ध्वनाभा वैश्वदेवं द्व्यनुष्टुबंतमिति। गतो विनियोगः॥

संहिता पाठ–

तेंऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन॥१॥

पद पाठ–

ते। अवदन्। प्रथमाः। ब्रह्मऽकिल्बिषे।
अकूपारः। सलिलः। मातरिश्वा।
वीळुऽहराः। तपः। उग्रः। मयःऽभूः।
आपः। देवीः। प्रथमऽजाः। ऋतेन॥१॥

सायण भाष्य–

अत्रेतिहासमाचक्षते। जुह्वरिति वाग्राम। सा ब्रह्मणो जाया। बृहस्पतेर्वाचस्पतित्वादृहस्पतेर्जुहूर्नाम भार्या बभूव। कदाचिदस्य किल्बिषमस्या दौर्भाग्यरूपेणासांचक्रे। अत एव स एनां पर्यत्याक्षीत्। अनंतरमादित्यादयो देवा मिथो विचार्यैनामकिल्बिषां कृत्वा पुनर्बृहस्पतये प्रादुरिति। तदत्र वर्ण्यते। प्रथमा मुख्यास्ते देवा ब्रह्मकिल्बिषे। षष्ठीसमास:। समासस्वर:। ब्रह्मणो बृहस्पते: किल्बिषे पापे जुहुदौर्भाग्यरूपे विषयेऽवदन्। निष्कृत्युपायमवोचन्। वकारपरत्वादत्र प्रकृतिभावाभाव:। के ते। अकूपार:। अत्र यास्क:। आदित्योऽप्यकूपार उच्यतेऽकूपारो भवति दूरपार:। नि. ४.१८। इति। अकुत्सितपारो महागतिरादित्य: सलिलोऽब्देवता वरुणो मातरिश्वा वायुर्वीळुहरा:॥ हरतेरसुनि रूपं हर इति॥ हरति विनाशयति तमांसीति हरस्तेज:। प्रभूततेजस्क:। तप:। तृतीयाया: सु:। तपसा तापनेनोग्र उद्गूर्णोऽग्निर्मयोभू: सुखस्य भावयिता सोमो देवोर्देव्य आप:। कीदृश्य:। ऋतेन सत्यभूतेन ब्रह्मणा प्रथमजा आदितएवोत्पादिता:। एत उपायमुक्त्वा प्रायश्चित्तमप्यकारयन्निति भाव:॥

अन्वय–

ते प्रथमा अकूपार: सलिल: मातरिश्वा वीळूहरा: उग्र: तप: मयोभू: देवी आप: ऋतेन प्रथमजा: ब्रह्मकिल्बिषे अवदन्।

हिन्दी अनुवाद–

(ते) वे (प्रथमा) सर्वप्रथम विराट् की अवस्था के अनन्तर (अकूपार:) आदित्य, (सलित:) सूक्ष्म जल तत्व (मातरिश्वा) वायु (वीळुहरा:) तमस् के विनाशक तेजस (उग्र: तप:) प्रचण्ड ताप (मयोभू:) सुख दाता सोम (देवी: आप:) दिव्य जल (ऋतेन) सृष्टि के नियम के अनुसार (प्रथमजा:) सबसे प्रथम उत्पन्न हुए थे, उन्होंने (ब्रह्मकिल्बिषे) बृहस्पति के दोष के विषय में (अवदन्) कहा।

भावार्थ–

आख्यान है कि बृहस्पति की जुहू नाम की भार्या थी। कभी इसका कोई पाप इसके दुर्भाग्यरूप में था। अकूपार आदि ने इसको विचार करके कहा। सृष्टि की आदिम अवस्था में वाणी अव्यक्त रूप में रहती है। अव्यक्ताधेय के कारण इसका यज्ञ कार्यों में प्रयोग नहीं होता। अकूपार आदि इस वाणी को व्यक्त गुण से सम्पन्न करके व्यवहार योग्य बनाकर बृहस्पति को देते हैं। अव्यक्तावस्था में ब्रह्मजाया इस अवस्था में जुहू कहलाती है। अकूपार आदि अवस्था में वाणी को व्यक्त बनाकर व्यवहार के योग्य बनाते हैं।

संहिता पाठ–

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय॥२॥

पद पाठ–

सोमः। राजा। प्रथमः। ब्रह्मऽजायां।
पुनरिति। प्र। अयच्छत्। अहृणीयमानः।
अनुऽअर्तिता। वरुणः। मित्रः। आसीत्।
अग्निः। होता। हस्तऽगृह्य। आ। निनाय॥२॥

सायण भाष्य–

प्रथमो मुख्यः सोमो राजाहृणीयमाणः। पापापगमनेनालज्जमानः। संस्तामेनामकिल्बिषां ब्रह्मजायां पुनर्बृहस्पतये प्रायच्छत्। ततो वरुणोऽन्वर्तिता॥ ऋतिः सौत्रो धातुर्घृणायां वर्तते। तस्य तृचि रूपं॥ सोममनुमोदयितासीत्। सर्वथां त्वं परिगृहाणेति दयामकर्षीत्। तथा मित्रश्च। अनंतरं होता देवानामह्वाता मनुष्याणां होमनिष्पादको वाग्निर्हस्तगृह्य तां हस्ते गृहीत्वा निनाय। आनैषीत्। प्रादादित्यर्थः॥ हस्तगृह्य। नित्यं हस्ते पाणावुपयमने। पा.१.४.७७.। इति

हस्तशब्दस्य गतिसंज्ञायां ग्रहिणा समासे ल्यप्। एकारलोपश्छांदसः यद्वा। हस्तशब्दात्परस्य गृहेश्छांदसौ समासल्यपौ॥

अन्वय–

प्रथमः राजा सोमः ब्रह्मजायाम् अहृणीयमानः पुनः प्रायच्छत्। वरुणः अन्वर्तिता आसीत् मित्रः आसीत् होता अग्निः हस्त गृह्य आ निनाय

हिन्दी अनुवाद–

(प्रथमः) प्रथम मुख्य (राजा) दीप्तिमान् (सोमः) सोमतत्व (ब्रह्मजायां) बृहस्पति जाया जुहू को ब्रह्म द्वारा उत्पन्न अव्यक्त वाणी को यज्ञ कार्य के योग्य व्यक्त रूप में करके(अहृणीयमानः) बिना किसी संकोच के सम्मुख लाता हुआ (पुनः) फिर बृहस्पति को (प्रायच्छत्) प्रदान कर देता है। (वरुणः) वरुण देवता (अन्वर्तिता) इसका अनुमोदन करने वाला (आसीत्) होता है। (मित्र आसीत्) सूर्य देवता भी इसका अनुमोदन करने वाला होता है। हवि को ग्रहण करने वाला (अग्निः) अग्नि देवता (हस्तगृह्य) हाथ पकड़कर(आनिनाय) आकर बृहस्पति को पकड़ा देता है।

भावार्थ–

सबसे प्रथम अव्यक्त वाणी को यज्ञोपयोगी जुहू बनाकर सोम उसे बृहस्पति के लिये प्रदान करता है। वरुण और मित्र इसका अनुमोदन करते हैं। तदनन्तर हवि का वहन करने वाला अग्नि ब्रह्मजाया जुहू को बृहस्पति के लिये प्रदान करता है।

संहिता पाठ–

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन्।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य॥३॥

पद पाठ–

हस्तेन। एव। ग्राह्यः। आऽधिः। अस्याः।
ब्रह्मऽजाया। इयं। इति। च। इत्। अवोचन्।
न। दूताय। प्रऽह्ये। तस्थे। एषा।
तथा। राष्ट्रं। गुपितं। क्षत्रियस्य॥३॥

सायण भाष्य –

देवा बृहस्पतिमूचुः। हे बृहस्पते अस्या आधिः। आधीयंत आभरणान्यत्रेत्याधिः शरीरं॥ उपसर्गे घाःकिः। पा.३.३.९२। इति किप्रत्ययः॥ अस्याः शरीरं हस्तेनैव ग्राह्यो गृहीतव्यमेव। पुनस्ते देवा इदानीमियं ब्रह्मजायेत्येवावोचन्। अवादिषुः॥ चशब्दश्चेदर्थे। अत एव निपातैर्यद्यदिहंतेति तिङो निघाताभावः। ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि। लुङि ब्रुवो वचिः। अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्डिति च्लेडादेशः। वच उमित्युमागमः। अडागमस्वरः। इदवधारणे॥ एषा ब्रह्मजाया पुरा प्रह्ये॥ हि गतौ वृद्धौ च । कर्मण्यौणादिकः क्विप्। तुगभावश्छांसः। ङिद्वचने संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वादगुणाभावः। उदात्तस्वरितयेर्यण इति सुपः स्वरितत्वं॥ प्रहिताय त्वया भार्यान्वेषणार्थ प्रेषिताय दूताय तथा न तस्थे। स्वात्मानं न प्रकाशयति॥ तिष्ठतेर्लिटि प्रकाशनरथेयाख्ययोश्च। पा.१.३.२३.। इत्यात्मनेपदं। श्लाघहुङस्थाशपां। पा.१.४.३४.। इति दूतस्य संप्रदानसंज्ञा ॥ तत्र दृष्टांतः। यथा क्षत्रियस्य राज्ञो गुपितं रक्षितं राष्ट्रं राज्यं शत्रवे यथा न प्रकाशयति तद्वदसौ दौर्भाग्ययुक्ततया तस्मै स्वात्मानं न प्रकाशितवती। इदानीं तु तद्राहित्येन प्रकाशमानेयं ब्रह्मजायैवेत्यब्रुवन्॥

अन्वय–

अस्याः आधिः हस्तेन एव ग्राह्यः, ब्रह्मजाया इयम् इति अवोचत्

च इत्। एषा प्रह्ये द्ताय तथा न तस्थे, क्षत्रियस्य गुपितं राष्ट्रम्।

हिन्दी अनुवाद-

(अस्याः)इस ब्रह्मजाया की, अव्यक्ता से व्यक्त बनी हुई तथा यज्ञ में प्रयोजनीय बनी हुई जुहू की (आधिः)मनोव्यथा (हस्तेन)हाथ से सरलता से ही(ग्राह्यः)ग्रहण की जाने योग्य है। (ब्रह्मजाया)ब्रह्मजाया (इयं)यह ऐसी है(अबोचत् च इत्)यह बात सब कहते ही है। (एषा)यह (प्रह्यचे)प्रेषित किये गये(दूताय)दूत के लिये (न तस्थे) प्रस्तुत नहीं होती (तथा)उसी प्रकार से जैसे, (क्षत्रियस्य)क्षत्रिय राजा का (गुपितं)गुप्त रूप से रक्षा किया गया(राष्ट्रम्)राष्ट्र या राष्ट्र की योजना किसी के समक्ष प्रकट नहीं होती।

भावार्थ -

अव्यक्त दशा में व्यक्त दशा में आई हुई और यज्ञों में प्रयोजनीय बनी हुई उस जुहू को वाणी से ही वश में किया जा सकता है। यह जुहू अर्थात् यज्ञ के योग्य बनी हुई वाणी उसी प्रकार से प्रकटता को प्राप्त नहीं होती, जैसे कि क्षत्रिय राजा द्वारा रक्षित राष्ट्र का स्वरूप शत्रुओं द्वारा प्रकट नहीं होता।

संहिता पाठ-

देवा एतस्यामवदंत पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्॥४॥

पद- पाठ-

देवाः। एतस्यां। अवदंत। पूर्वे।
सप्तऽऋषयः। तपसे। ये। निऽसेदुः।
भीमा। जाया। ब्राह्मणस्य। उपऽनीता।
दुःऽधां। दधाति। परमे। विऽओमन्॥४॥

सायण भाष्य–

पूर्वे चिरंतना देवा आदित्यादय एतस्यां विषयेऽवदंत। इयं पापरहितेत्यवादिषुः। तथा य सप्तर्षयः। समासस्वरः। सप्तसंख्याका ऋषयस्तपसे तपश्चरणाय निषेदुः निषण्णा बभूवुः। सदेर्लिटि रूपं। उपसर्गेण समासः। यद्योगादनिघातः। तेऽप्यवादिषुः। ततो भीमा शत्रुरूपाणां पापानां भयंकरी सुकृतवत्येषा जाया ब्राह्मणस्य बृहस्पतरुपनीता। समीपे देवैः स्थापिता। णीञ् प्रापणे। कर्मणि क्तः। गतिरनंतर इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वं। तथा हि। तपःप्रभावो दुर्धां दुर्धानामपि परमे व्योमन् व्योमन्युत्तमे स्थाने दधाति। विदधाति खलु। तस्मादेनामपि देवतापरिग्रहरूपस्तपोमहिमा बृहस्पतेरंतिके स्थापयति॥

अन्वय–

देवाः एतस्यां अवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयः ये तपसे निषेदुः। ब्राह्मणस्य उपनीता भीमा जाया दुर्धां परमे व्योमन् दधाति।

हिन्दी अनुवाद–

(देवाः) देवता या विद्वज्जन (एतस्यां) इस ब्रह्मजाया के विषय में (अवदन्त) कहते हैं और (पूर्वे) प्राचीन काल के (सप्त) सात (ऋषयः) ऋषि (ये) जो कि (तप से) कठिन तपोमय कार्य के लिये (निषेदुः) स्थित हुए थे, वे भी इस तथ्य की बात को बताते हैं। (ब्राह्मणस्य) ब्रह्मज्ञान से सम्पन्न बृहस्पति के द्वारा (उपनीता) समीप लाई गई (जाया) यह ब्रह्मजाया जुहू (भीमा) पाप आदि कर्मों के कारण भयानक है और (दूर्धां) दुःख के धारण करने योग्य है, इसको बृहस्पति (परमे) परम (व्योमनि) आकाश में (दधाति) धारण करते हैं।

भावार्थ-

विद्वज्जन और तपस्या में स्थित सात ऋषि अर्थात् मानव शरीर में स्थित तर्क पूर्ण विचार इस तथ्य को प्रतिपादित करते हैं कि यह वाणी, ब्रह्मजाया जुहू बहुत भयानक है और कठिनाई से धारण की जा सकती है। बृहस्पति द्वारा परम आकाश में ही धारण की जा सकती है।

संहिता पाठ-

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमंगं।
तेन जायामन्वविंदद्बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्व१ न देवा॥५॥

पद पाठ-

ब्रह्मऽचारी। चरति। वेविषत्। विषः।
सः। देवानां। भवति। एकं। अंगं।
तेन। जायां। अनु। अविंदत्। बृहस्पतिः।
सोमेन। नीतां। जुह्वं। न। देवाः॥५॥

सायण भाष्य-

एवं स्वपतिर्मामलभतेति जुहूः परोक्षतया वदति। हे देवाः पूर्वं स ब्रह्मचारी जायाभावेन ब्रह्मचारी चरति। अत एव विषः सर्वेषु यज्ञेषु व्याप्तवान्देवान्वेविषत् स्तुतिभिर्हविर्भिश्च व्याप्नुवन् देवानामेकमंगं भवति। जायापती यज्ञस्य द्वे अंगे खलु।! वेविषत्। विष्लृ व्याप्तौ जौहौत्यादिकः। निजां त्रयाणां गुणः श्लौ। पा.७.४.७५। इत्यभ्यासस्य गुणः। शतुर्नाभ्यस्ताच्छतुरिति नुमागमप्रतिषेधः। अभ्यस्तानामादिरित्याद्युदात्तत्वं॥ तेन देवानां परिचरणेन बृहस्पतिर्जायां जुहूनामिकां मामन्वविंदत्।

अनुगम्यालभत। नशब्द उपमार्थे। पूर्वं यथा सोमेन नीतां सोमो ददद्गंधर्वाय। ऋ. १०.८५.४१। इत्यादिक्रमेण नीतां जुह्वं जुहूं यथा लब्धवान् तद्वदिदानीमपि। जुहूं। हु दानादनयो:। अन्येभ्योऽपि दृश्यत इति क्विप्। जुहोतेर्द्वे चेति द्विर्वचनं दीर्घश्च। उदात्तयणो हल्पूर्वादिति विभक्त्युदात्तत्वे प्राप्ते नोङ्धात्वोरिति प्रतिषेध उदात्तस्वरितयोर्यण इति स्वरितत्वं।

अन्वय–

ब्रह्मचारी चरति, विष: वेविषत्। स देवानाम् एकम् अङ्गं भवति। तेन देवा: जायां न सोमेन नीतां जुह्वं बृहस्पति: अनु अविन्दन्।

हिन्दी अनुवाद–

(ब्रह्मचारी) ब्रह्म में विचरण करने वाला ब्राह्मण (चरति) तप का आचरण करता है और (विष:) समस्त यज्ञों को (वेविषत्) अपनी बुद्धि में व्याप्त कर लेता है। (स) वह (देवानां) देवताओं का (एकम्) एक (अङ्गं) भाग (भवति) हो जाता है। (तेन) इसलिये (देवा:) हे विद्वानों! वह (जायां) गृहस्थ आश्रम में पत्नी को उसी प्रकार प्राप्त करता है, (न) जैसे (सोमेन) सोम के द्वारा (नीतां) लाई गई (जुह्वं) जुहू नाम की ब्रह्मजाया को (बृहस्पति:) बृहस्पति (अनु अविन्दत्) प्राप्त करता है।

भावार्थ –

ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ ब्रह्मचारी सर्वत्र विचरण करता है। वह बुद्धि से सभी तथ्यों को विचार कर धारण करता है और देवताओं का एक अङ्ग हो जाता है। तदन्तर वह गृहस्थ में प्रविष्ट होकर उसी प्रकार जाया (पत्नी) को प्राप्त करता है, जैसे कि सोम द्वारा लाई गई जुहू (ब्रह्मजाया) को बृहस्पति प्राप्त करता है।

संहिता पाठ–

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत। राजानः।
सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः॥६॥

पद पाठ–

पुनः। वै। देवाः। अददुः। पुनः। मनुष्याः। उत। राजानः।
सत्यं। कृण्वानाः। ब्रह्मऽजायां। पुनः। ददुः॥६॥

सायण भाष्य–

लाभहेतुमाह। देवा ब्रह्मजायां जुहूंबृहस्पतये पुनरददुः। वैशब्दः प्रसिद्धिवाची। उताप्यर्थे। मनुष्या अपि पुनरददुः। एवं देवमनुष्यै। कृतं दानं सत्यं यथार्थं कृण्वानाः कुर्वाणा राजानोऽपि पुनस्तस्मै ददुः। एवमव्यवहार्यनिमित्तं पापमपि व्यनाशयन्निति भावः।

अन्वय–

देवाः वै पुनः अददुः। मनुष्याः उत पुनः सत्यं कृण्यानाः पुनः ब्रह्मजायां ददुः।

हिन्दी अनुवाद–

(देवाः) देवताओं ने (वै) निश्चय से (पुनः) फिर (अददुः) दिया था। वाणी का प्रचार किया था। (मनुष्याः) मनुष्यों ने (उत) भी और (पुनः) फिर दिया था। वाणी का प्रचार किया था। (राजानः) राजाओं ने भी (सत्यं) यथार्थ सत्य का (कृण्वानाः) प्रचार करते हुये (पुनः) फिर (ब्रह्मजायां) यज्ञ के योग्य व्यक्त वाणी रूप ब्रह्मजाया जुहू को (ददुः) दिया था।

भावार्थ–

यज्ञ के योग्य वाणी को पुनः देवताओं दिया था। पुनः मनुष्यों ने

उस यज्ञ के योग्य वाणी को दिया था। देश के शासक राजाओं ने भी यथार्थ सत्य का पालन करते हुए वाणी (ब्रह्मजायां) बृहस्पति की जाया जुहू को पुनः दिया था।

संहिता पाठ–

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषं।
ऊर्जं। पृथिव्या भक्तायोरुगायमुपासते ।।७।।

पद पाठ–

पुनःऽदाय। ब्रह्मजायां। कृत्वी। देवैः। निऽकिल्बिषं।
ऊर्जं। पृथिव्याः। भक्ताय। उरुऽगायं। उप। आसते।।७।।

सायण भाष्य–

देवैः। सुपां सुपो भवंतीति जसस्तृतीयादेशः। देवा निकिल्बिषं।। अर्थाभावेऽव्ययीभावः। समासस्वरः।। तस्याः किल्बिषाभावं कृत्वी। स्नात्व्यादयश्चेति निपातितः।। कृत्वा ब्रह्मजायां ब्रह्मणो बृहस्पतेर्भार्यां पुनर्दाय पुनर्दत्त्वा।। पुनश्चनसोश्छंदसि गतिसंज्ञा वक्तव्येति। पा. १.४.६०.२। पुनःशब्दस्य गतिसंज्ञायां समासल्यपौ। न ल्यपि। पा० ६.४.६९.। इतीत्वप्रतिषेधः। कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वं।। पृथिव्या ऊर्जं रसभूतमन्नं हवीरूपं भक्ताय। क्तौ यक्। पा० ७.१.४७.। इति यगागमः।। भक्ता विभज्योरुगायं बहुकीर्ति बहुभिः स्तोतव्यं वा बार्हस्पत्यं यज्ञमुपासते। सेवंते।।

अन्वय–

देवैः ब्रह्मजायां निकिल्विषं कृत्वी पुनःदाय पृथिव्या ऊर्ज भक्ताय उरुगायम् उपासते।

हिन्दी अनुवाद–

(देवैः) देवगण (ब्रह्मजायां) यज्ञ के योग्य वाणी ब्रह्मजाया जुहू को (निकिल्विषं) यज्ञ के योग्य दोष रहित व्यक्त (कृत्वी) करके (पुनः दाय) बृहस्पति के लिये पुनः देकर (पृथिव्याः) पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों के लिये (ऊर्जं) अन्न को, बल को, सामर्थ्य को (भक्ताय) सेवनीय हवि के रूप में (उरुगायम्) विस्तृत रूप प्रशंसनीय यज्ञ का (उपासते) सेवन करते हैं।

भावार्थ–

देवगणों ने यज्ञ के अनुपयोगी वाणी को उपयोगी करके ब्रह्मजाया जुहू के रूप में बृहस्पति को प्रदान किया। इससे पृथिवी पर ऊर्जा का संचार हुआ और इसके बाद मनुष्य यज्ञ करने में संलग्न हो गये।

****

२२. वाग् आम्भृणी

ऋग्वेद–दशम मण्डल सूक्त १२५, मन्त्र १–८

ऋषि – वाग् आम्भृणी

देवता– परमात्मा

छन्दः –दूसरा मन्त्र जगती, शेष त्रिष्टुप्

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका–

अहमित्यष्टर्चं त्रयोदशं सूक्तं। अंभृणस्य महर्षेर्दुहिता वाङ्.नाम्नी ब्रह्मविदुषी स्वात्मानमस्तौत्। अतः सर्षिः। सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता। तेन ह्येषा तादात्म्यमनुभवंती सर्वजगद्रूपेण सर्वस्याधिष्ठानत्वेन चाहमेव सर्वं भवामीति स्वात्मानं स्तौति। द्वितीया जगती शिष्टाः सप्त त्रिष्टुभः। तथा चानुक्रांतं। अहमष्टौ वागांभृणी तुष्टावात्मानं द्वितीया जगतीति। गतो विनियोगः॥

संहिता पाठ–

अ॒हं रु॒द्रेभि॒र्वसु॑भिश्चराम्य॒हमा॑दि॒त्यैरु॒त वि॒श्वदे॑वैः।

अ॒हं मि॒त्रावरु॑णो॒भा बि॑भर्म्य॒हमि॑न्द्रा॒ग्नी अ॒हम॒श्विनो॒भा॥१॥

पद पाठ–

अ॒हं। रु॒द्रेभिः॑। वसु॑ऽभिः। च॒रा॒मि॒।

अ॒हं। आ॒दि॒त्यैः॑। उ॒त। वि॒श्वऽदे॑वैः।

अ॒हं। मि॒त्रावरु॑णा। उ॒भा। बि॒भ॒र्मि॒।

अ॒हं। इ॒न्द्रा॒ग्नी इति॑। अ॒हं। अ॒श्विना॑। उ॒भा॥१॥

सायण भाष्य–

अहं सूक्तस्य द्रष्ट्री वागांभृणी यद्ब्रह्म जगत्कारणं तद्रूपा भवंती रुद्रेभी रुद्रैरेकादशभिः। इत्यंभावे तृतीया। तदात्मना चरामि। एवं वसुभिरित्यादौ तत्तदात्मना चरामीति योज्यं। तथा मित्रावरुणा मित्रं च वरुणं च॥ सुपां सुलुगिति द्वितीयाया आकारः॥ उभोभावहमेव ब्रह्मीभूता बिभर्मि। धारयामि। इंद्राग्नी अप्यहमेव धारयामि। उभोभावश्विनाश्विनावप्यहमेव धारयामि। मयि हि सर्व जगच्छुक्तौ रजतमिवाध्यस्तं सन्दृश्यते। माया च जगदाकारेण विवर्तते। तादृश्या मायाया आधारत्वेनासंगस्यापि ब्रह्मण उक्तस्य सर्वस्योत्पत्तिः॥

अन्वय–

अहं रुद्रेभिः वसुभिः चरामि अहम् आदित्यैः उत विश्वदेवैः अहम् उभा मित्रावरुणा बिभर्मि अहम् इन्द्राग्री अहम् उभा अश्विनौ।

हिन्दी अनुवाद–

(अहं) मैं (रुद्रेभिः) रुद्र संज्ञक विद्वानों के साथ और (वसुभिः) वसु नामक विद्वानों के साथ (चरामि) विचरण करती हूं। (अहं) मैं (आदित्यैः) आदित्य नामक विद्वानों (उत) और (विश्वदेवैः) समस्त वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों के साथ अपने कार्यों में विचरण करती हूं। (अहं) मैं (उभा) दोनों (मित्रावरुणा) वायु और जलों को (बिभर्मि) धारण करती हूं, अपने वश में रखती हूं। (अहं) मैं (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि को, विद्युत और अग्नि को धारण करती हूं। (अहं) मैं (उभा) दोनों (अश्विना) अश्विनी देवताओं को भूमि और आकाश को अपने वश में रखती हूं।

भावार्थ–

चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले विद्वान को रुद्र, ३६ वर्ष या ४४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले विद्वान को वसु तथा ४८

वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले विद्वान को आदित्य कहा जाता है।

ऋषि दयानन्द का मन्तव्य है कि अम्भृण शब्द का अर्थ बहुत होता है। अम्भृणी वाक् का अर्थ है- राष्ट्र में बहुत लोगों की वाणी=बहुसम्मति,होती है। राज्य की सर्वोच्च परिषद में सम्पूर्ण शक्ति निहित होती है, उसी का राज्य के सब कार्य कलापों पर अधिकार होता है।

संहिता पाठ-

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगं।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते॥२॥

पद पाठ-

अहं। सोमं। आहनसं। बिभर्मि।
अहं। त्वष्टारं। उत। पूषणं। भगं।
अहं। दधामि। द्रविणं। हविष्मते।
सुप्रऽअव्यें। यजमानाय। सुन्वते॥२॥

सायण भाष्य-

आहनसमाहंतव्यमभिषोतव्यं सोमं यद्वा शत्रूणामाहंतारं दिवि वर्तमानं देवतात्मानं सोममहमेव बिभर्मि। तथा त्वष्टारसुतापि च पूषणं भगं चाहमेव बिभर्मि। तथा हविष्मते हविभिर्युक्ताय सुप्राव्ये शोभनं हविर्देवानां प्रापयित्रे तर्पयित्रे। अवतेस्तर्पणार्थादवितृस्तृतंत्रिभ्य ईः। उ० ३.१५८। इतीकारप्रत्ययः। चतुर्थ्येकवचने यण्युदात्तस्वरितयोर्यणः। स्वरितोऽनुदात्तस्येति सुपः स्वरितत्वं। सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते। शतुरनुम इति चतुर्थ्या उदात्तत्वं। ईदृशाय यजमानाय द्रविणं धनं यागफलरूपमहमेव धारयामि। एतच्च ब्रह्मणः फलदातृत्वं फलमत

उपपत्तेः। ३.२.३८। इत्यधिकरणे भगवता भाष्यकारेण समर्थितं।।

अन्वय–

अहम् आहनसं सोमं बिभर्मि। अहं त्वष्टारं पूषणम् उत भगम्। अहं हविष्मते सुप्राव्ये सुन्वते यज्ञमानाय द्रविणं दधामि।

हिन्दी अनुवाद–

(अहं) मैं (आहनसं) कूट पीसकर अभिषव करने योग्य (सोमं) सोम रस को (बिभर्मि) धारण करती हूं। (अहं) मैं ही (त्वष्टारं) निर्माण करने वाले त्वष्टा देवता को (पूषणम्) पोषण करने वाले पूषा देवता को (उत) और (भगम्) ऐश्वर्य देने वाले भग देवता को मैं ही धारण करती हूं। (अहं) मैं (हविष्मते) हवि प्रदान करने वाले (सुप्राव्ये) देवताओं के लिये हवि पहुंचाने वाले (सुन्वते) सोमरस का अभिषव करने वाले (यजमानाय) यजमान के लिये (द्रविणं) धन को (दधामि) धारण करती हूं।

भावार्थ–

राज्य की सभा में इन सभी तत्वों का उद्‌बोधन करने वाले विद्वानों की उपस्थिति होती है। दैवी पदार्थों की उपासना, संगतिकरण, दान, ऐश्वर्य का धारण राज्य की सभा द्वारा किया जाता है। प्राचीन काल में सोम नामक वनस्पति अति ज्ञानवर्धक, पुष्टिकारक और बलवर्धक समझी जाती थी। कूट पीस और छानकर इसका रस निकाल कर पिया जाता था।

संहिता पाठ–

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानां।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयंतीं।।३।।

पद पाठ–

अ॒हं। रा॒ष्ट्री। सं॒ऽगम॑नी। वसू॑नां।
चि॒कि॒तुषी॑। प्र॒थ॒मा। य॒ज्ञिया॑नां।
तां। मा॒। दे॒वाः। वि। अ॒द॒धुः। पु॒रु॒ऽत्रा।
भूरि॑ऽस्थात्रां। भूरि॑। आ॒ऽवे॒शय॑न्तीं॥३॥

सायण भाष्य–

अहं राष्ट्री। ईश्वरनामैतत्। सर्वस्य जगत ईश्वरी। तथा वसूनां धनानां संगमनी संगमयित्र्युपासकानां प्रापयित्री। चिकितुषी यत्साक्षात्कर्तव्यं परं ब्रह्म तज्ज्ञातवती स्वात्मतया साक्षात्कृतवती। अत एव यज्ञियानां यज्ञार्हाणां प्रथमा मुख्या। यैवंगुणविशिष्टाहं तां मां भूरिस्थात्रां बहुभावेन प्रपंचात्मनावतिष्ठमानां भूरि भूरीणि बहूनि भूतजातान्यावेशयंतीं जीवभावेनात्मानं प्रवेशयंतीं ईदृशीं मां पुरुत्रा बहुषु देशेषु व्यदधुः। देवा विदधति। कुर्वंति। उक्तप्रकारेण वैश्वरूप्येणावस्थानात्। यद्यत्कुर्वंति तत्सर्वं मामेव कुर्वंतीत्यर्थः॥

अन्वय–

अहं राष्ट्री वसूनां संगमनी यज्ञियायां प्रथमा चिकितुषी। देवाः तां मा भूरि आवेशयन्तीं भूरिस्थात्रां पुरुत्रा व्यदधुः।

हिन्दी अनुवाद–

(अहं) मैं (राष्ट्री) सम्पूर्ण राष्ट्र की स्वामिनी (वसूनां) धनों की (संगमनी) प्राप्त कराने वाली और (यज्ञियानां) यजन करने योग्य व्यक्तियों में (प्रथमा) प्रथम (चिकितुषी) ज्ञान से सम्पन्न ब्रह्म को जानने वाली हूं। (ताम्) उन गुणों युक्त उस (मा) मुझको (देवाः) दिव्य गुणों से युक्त विद्वज्जन (भूरि

आवेशयन्तीं) बहुत वस्तुओं को अपने अंदर आवेशित करती हुई (भूरिस्थात्रां) अनेक रूपों में अवस्थित (पुरुत्रा) विभिन्न स्थानों में (व्यदधुः) रखे हुये हैं।

भावार्थ-

सम्पूर्ण राष्ट्र की स्वामिनी वह आम्भृणी वाक् सभी धनों को प्राप्त कराती हैं। यजन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ है और ज्ञान से सम्पन्न है। अनेक स्थानों पर अनेक रूपों में वह स्थित है। विभिन्न स्थानों पर विभिन्न देवताओं की जो पूजा की जाती है, वह वस्तुतः मेरी ही पूजा है।

संहिता पाठ-

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तं।
अमंतवो मां त उप क्षियंति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥४॥

पद पाठ-

मया। सः। अन्नं। अत्ति। यः। विऽपश्यति।
यः। प्राणिति। यः। ईं। शृणोति। उक्तं।
अमंतवः। मां। ते। उप। क्षियंति।
श्रुधि। श्रुत। श्रद्धिऽवं। ते। वदामि ॥४॥

सायण भाष्य-

योऽन्नमत्ति स भोक्तृशक्तिरूपया मयैवान्नमत्ति। यश्च विपश्यति। आलोकयतीत्यर्थः। यश्च प्राणिति श्वासोच्छ्वासादिव्यापारं करीति सोऽपि मयैव। यश्चोक्तं शृणोति॥ श्रू श्रवणे। श्रुवः श्रृ चेति श्रुधातोः श्रृभावः॥य ईदृशीमंतर्यामिरूपेण स्थितां मां न जानंति तेऽमंतवोऽमन्यमाना अजानंत उप क्षियंति। उपक्षीणाः संसारेण हीना भवंति॥ मनेरौणादिकस्तुप्रत्ययः।

नञ्समासे व्यत्ययेनांतोदात्तत्वं। यद्वा। भावे तुप्रत्ययः। ततो बहुव्रीहौ नञ्सुभ्यामित्युत्तरपदांतोदात्तत्वं। माममंतवो मद्विषकयज्ञानरहिता इत्यर्थः। हे श्रुत विश्रुत सखे श्रुधि। मया वक्ष्यमाणं शृणु॥ छांदसो विकरणस्य लुक्। श्रूशृणुपृकटवृभ्य इति हेर्धिभावः॥ तत्किं तच्छ्रोतव्यं। श्रद्धिवं। श्रद्धिवं श्रद्ध तथा युक्तं। श्रद्धायत्नेन लभ्यमित्यर्थः। श्रदंतरोरुपसर्गवद्वृत्तिरिष्यते। पा.१.४.५७.२.। इति श्रच्छब्दस्योपसर्गवद्वर्तमानत्वादुपसर्गे घोः किरिति किप्रत्ययः। मत्वर्थीयो वः॥ ईदृशं ब्रह्मात्मकं वस्तु ते तुभ्यं वदामि। उपदिशामि॥

अन्वय-

यः अन्नम् अत्ति स मया, यः वियश्यति यः प्राणिति याः ई उक्तं शृणो ति। ये माम् अमन्तव, ते उपक्षियन्ति। श्रुत, श्रुधि श्रद्धिवं ते वदामि।

हिन्दी अनुवाद-

इस जगत में या जो भी व्यक्ति(अन्नम्) अन्न को (अत्ति)खाता है, सांसारिक पदार्थो का भोग करता है, (स) वह (मया)मेरे द्वारा भोग करता है। (यः) जो व्यक्ति (विपश्यति)विविध प्रकार से देखता है, (यः)जो व्यक्ति (प्राणिति)श्वास-प्रश्वास लेता है, (यः)जो व्यक्ति(उक्तं)कही गई बात को शब्द को (शृणोति)सुनता है, वह मेरे द्वारा ही सुनता है। (ये)जो व्यक्ति(माम्)मुझको (अभन्तवः)नहीं मानने वाले या जानने वाले हैं(ते)वे व्यक्ति(उपक्षियन्ति)हीनता को प्रास होते हैं। (श्रुत) हे विद्वान पुरुष (श्रुधि)सुनो। (श्रद्धिवं)श्रद्धा से प्रास होने योग्य वचन को मैं (ते)तुमसे (वदामि) कहती हूँ। उपदेश देती हूँ।

भावार्थ -

इस विश्व में, राष्ट में जो खाना, देखना, श्वास लेना, बोलना, सुनना आदि क्रियायें हैं, वे सब वाक् की शक्ति से सम्पन्न होती हं। जो उस शक्ति

को नहीं मानते, नहीं समझते, वे हीनता को प्राप्त होते हैं। यह बात सत्य है और श्रद्धा के योग्य है।

संहिता पाठ–

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधां॥५॥

पद पाठ–

अहं। एव । स्वयं। इदं। वदामि।
जुष्टं। देवेभिः। उत। मानुषेभिः।
यं। कामयें। तंऽतं। उग्रं। कृणोमि। तं।
ब्रह्माणं। तं। ऋषिं। तं। सुऽमेधां ॥५॥

सायण भाष्य–

अहं स्वयमेवेदं वस्तु ब्रह्मात्मकं वदामि। उपदिशामि। देवेभिर्देवैरिंद्रादिभिरपि जुष्टं सेवितं। उतापि च मानुषेभिर्मनुष्यैरपि जुष्टं। ईदृग्वस्त्वात्मिकाहं कामये यं पुरुषं रक्षितुमहं वांछामि तं तं पुरुषमुग्रं कृणोमि। सर्वेभ्योऽधिकं करोमि। तमेव ब्रह्माणं स्रष्टारं करोमि। तमेवर्षिमतींद्रियार्थदर्शिनं करोमि। तमेव सुमेधां शोभनप्रज्ञं च करोमि॥

अन्वय –

अहं स्वयम् एव देवेमिः उत मानुषेभिः जुष्टमिदं वदामि- यं कामये तं तम् उग्रं कृणोमि। तं ब्रह्माणं, तम् ऋषिं, तं सुमेधाम्।

हिन्दी अनुवाद–

(अहं) मैं(स्वयम् एव) अपने आप ही (देवेभिः)देवताओं, विद्वानों

द्वारा (उत)और (मानुषेभिः)मनुष्यों द्वारा (जुष्टं)प्रेषित(इदं)यह बात (वदामि)कहती हूँ उपदेश करती हूँ। (यं)जिसकी(कामये)गुण, कर्म और स्वभाव से कामना करती हूँ। (तंतम्) इस व्यक्ति को (उग्रं)प्रचण्ड, बलशाली और सर्वश्रेष्ठ (कृणोमि)बना देती हूँ और (तं)उस व्यक्ति को (ब्रह्माणं)सृष्टि का उत्पादक ब्रह्मा (तं)उस व्यक्ति को (ऋषिं) भूत-भविष्य का द्रष्टा ऋषि और (तं)उस व्यक्ति को (सुमेधाम्) उत्तम बुद्धि वाला बना देती हूँ।

भावार्थ –

देवताओं और मनुष्यों द्वारा सेवित यह उस प्रभु रूपी भगवान ने ही आदिष्ट किया है। वाक की कृपा से मनुष्य को बल, शक्ति और श्रेष्ठता प्राप्त होती है। वाक् की कृपा से ही मनुष्य का गुण कर्म स्वभाव श्रेष्ठ होता है। वही ब्रह्मा को सृष्टि निर्माण का सामर्थ्य,भूत- भविष्य दर्शन की शक्ति और उत्तम बुद्धि प्रदान करती है।

संहिता पाठ–

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हंतवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥६॥

पद पाठ–

अहं। रुद्राय। धनुः। आ। तनोमि।
ब्रह्मऽद्विषे। शरवे। हंतवै। ऊं इति।
अहं। जनाय। सऽमदं। कृणोमि।
अहं। द्यावापृथिवी इति। आ। विवेश ॥६॥

सायण भाष्य–

पुरा त्रिपुरविजयसमये रुद्राय रुद्रस्य। षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। महादेवस्य

धनुश्चापमहमा तनोमि। ज्ययाततं करोमि। किमर्थं। ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणानां द्वेष्टारं शरवे शरुं हिंसकं त्रिपुरनिवासिनमसुरं हंतवै हंतुं हिंसितुं।। हंतेस्तुमर्थे सेसेनिति तवैप्रत्ययः। अंतश्च तवै युगपदित्याद्यंतयोर्युगपदुदात्तत्वं। शृ हिंसायामित्य-स्माच्छृस्वृस्निहीत्यादिनोप्रत्ययः। क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी। उशब्दः पूरकः। अहमेव समदं। समानं माद्यंत्यस्मिन्निति समत्संग्रामः। स्तोतृजनार्थं शत्रुभिः सह संग्राममहमेव कृणोमि। करोमि। तथा द्यावापृथिवी दिवं च पृथिवीं चांतर्यामितयाहमेवा विवेश। प्रविष्टवती।।

अन्वय-

ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवै रुद्राय अहं धनुः आ तनोमि। अहं जनाय समदं कृणोमि। अहं धावा पृथिवी आ विवेश।

हिन्दी अनुवाद-

(ब्रह्मद्विषे) ब्रह्म, वेदों और ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले, (शरवे) हिंसक असुर के (हन्तवै) मारने के लिये (रूद्राय)दुष्टों को रुलान वाले महादेव के लिये (धनुः आ तनोमि) धनुष की प्रत्यञ्चा को चढ़ाती है। (अहं) मैं ही (जनाय) अपने मनुष्यों को उनका कल्याण करने के लिये (समदं) युद्ध करने के उत्साह से युक्त (कृणोमि) करती हूं। (अहं) मैं ही (धावा पृथिवी) द्यु लोक और पृथिवी लोक में (आ विवेश) व्याप्त हो रही है।

भावार्थ-

ब्रह्म, वेदों या ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले हिंसक असुरों का वध करने के लिये बाण अस्त्रों को उठाने के लिये, युद्ध करने का उत्साह मनुष्यों में भरती है। द्यु लोक और पृथिवी लोक में जब स्थानों पर वह व्याप्त रहती है।

संहिता पाठ–

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वं१तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।।७।।

पद पाठ–

अहं। सुवे। पितरं। अस्य। मूर्धन्।
मम। योनिः। अप्ऽसु। अंतरिति। समुद्रे।
ततः। वि। तिष्ठे। भुवना। अनु। विश्वा।
उत। अमूं। द्यां। वर्ष्मणा। उप। स्पृशामि ।।७।।

सायण भाष्य–

द्यौः पितेति श्रुतेः पिता द्यौः। पितरं दिवमहं सुवे। प्रसुवे। जनयामि। आत्मन आकाशः संभूतः। तै० आ. ८.१। इति श्रुतेः। कुत्रेति तदाह। अस्य परमात्मनो मूर्धन्मूर्धन्युपरि। कारणभूते तस्मिन्हि वियदादिकार्यजातं सर्वं वर्तते तंतुषु पट इव। मम च योनिः कारणं समुद्रे। समुद्द्रवंत्यस्माद्भूतजातानीति समुद्रः परमात्मा। तस्मिन्नप्सु व्यापनशीलासु धीवृत्तिष्वंतर्मध्ये यद्ब्रह्म चैतन्यं तन्मम कारणमित्यर्थः। यत ईदृग्भूताहमस्मि ततो हेतोर्विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातान्यनु प्रविश्य वि तिष्ठे। विविधं व्याप्य तिष्ठामि। समवप्रविभ्यः स्थ इत्यात्मनेपदं। उतापि चामूं द्यां विप्रकृष्टदेशेऽवस्थितं स्वर्गलोकं। उपलक्षणमेतत्। एतदुपलक्षितं कृत्स्नं विकारजातं वर्ष्मणा कारणभूतेन मायात्मकेन मदीयेने देहेनोप स्पृशामि। यद्वा। अस्य भूलोकस्य मूर्धन्मूर्धन्युपर्यहं पितरमाकाशं सुवे। समुद्रे जलधावप्सूदकेष्वंतर्मध्ये मम योनिः कारणभूतोऽम्भृणाख्य ऋषिर्वर्वते। यद्वा। समुद्रेऽतरिक्षेऽप्स्वम्मयेषु देवशरीरेषु मम कारणभूतं ब्रह्म चैतन्यं वर्तते। ततोऽहं कारणत्मिका सती सर्वाणि भुवनानि व्याप्नोमि। अन्यत्समानं।।

अन्वय–

अहम् अस्य मूर्धन् पितरं सुवे। मम योनिः अप्सु अन्तः समुद्रे। ततः विश्वा भुवना अनु वितिष्ठे उत अमूं द्यां वर्ष्मणा उपस्पृशामि।

हिन्दी अनुवाद–

(अहं) मैं वाक् (अस्य) इस ब्रह्म के (मूर्धन्) शिरोस्थानीय द्यु लोक को अथवा ब्रह्म के सिर पर आकाश को (पितरं) पालन करने वाली शक्ति को (सुवे) उत्पन्न करती हूं या स्थापित करती हूं। (मम) मेरा (योनिः)स्थान (अप्सु अन्तः) आकाश में, अथवा जलों के भीतर है (समुद्रे) और समुद्र में है। (ततः) इसलिये (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकों के (अनु) मध्य में मैं (वितिष्ठे) विशेष रूप से स्थित रहती हूं। (उत) और (अमुं) इस (द्यां) द्यु लोक को मैं (वर्ष्मणा) व्याप्त होने वाले कारण रूप शरीर से (उपस्पृशामि) स्पर्श करती हूं।

भावार्थ–

इस राष्ट्र के मस्तक पर सर्वश्रेष्ठ पद पर इसका पालन करने वाला राजा रहता है। यह वाक् शक्ति अन्तरिक्ष आकाश में व्याप्त रहती है। सारे भुवनों में वह व्याप्त रहती है और गौरव से आकाश का स्पर्श करती है।

संहिता पाठ–

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव॥८॥

पद पाठ–

अहं। एव। वातःऽइव। प्र। वामि।
आऽरभमाणा। भुवनानि। विश्वा।

प॒रः। दि॒वा। प॒रः। ए॒ना। पृथि॒व्या।

ए॒तावती। म॒हि॒ना। सं। ब॒भूव ॥८॥

सायण भाष्य–

विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि कार्याण्यारभमाणा कारणरूपेणोत्पादयंत्यहमेव परेणानधिष्ठिता स्वयमेव प्र वामि। प्रवर्ते। वात इव यथा वातः परेणाप्रेरितः सन् स्वेच्छयैव प्रवाति तद्वत्। उक्तं सर्वं निगमयति। परो दिवा। पर इति सकारांत परस्तादित्यर्थे वर्तते यथाध इत्यधस्तादर्थे। तद्योगे च तृतीया सर्वत्र दृश्यते। दिव आकाशस्य परस्तात्। एना पृथिव्या। द्वितीयाटौःस्वेन इतीदम एनादेशः अस्याः पृथिव्याः परः परस्तात्। द्यावापृथिव्योरुपादानमुपलक्षणं। एतदुपलक्षितात्सर्वाद्विकार-जातात्परस्ताद्वर्तमानासंगोदासीनकूटस्थब्रह्मचैतन्यरूपाहं महिना महिम्नैतावती सं बभूव। एतच्छब्देनोक्तं सर्वं परामृश्यते। एतत्परिमाणमस्याः। यत्तदेतेभ्यः परिमाणे। पा. ५.२.३९.। इति वतुप्। आ सर्वनाम्न इत्यात्वं।। सर्वजगदात्मनाहं संभूतास्मि। महच्छब्दादिमनिच् टेरिति टिलोपः। ततः तृतीयायामुदात्तनिवृत्तिस्वरेण तस्या उदात्तत्वं। छांदसो मलोपः।।

अन्वय–

अहम् एव विश्वा भुवनानि आरभमाणा वातः इव प्रवामि। दिवा परः एना पृथिव्या परः महिना एतावती सं बभूव।

हिन्दी अनुवाद–

(अहं) मैं (एव) ही (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) भुवनों को, लोकों के प्रपञ्च भूत महाभूतों को (आरभमाणा) आरम्भ करती हुई, उत्पन्न करती हुई (वातः इव) वायु के समान (प्रवामि) प्रवृत्त होती हूं। वायु के समान सर्वत्र

व्याप्त हो जाती हूं। (दिवा परः) द्यु लोक, अन्तरिक्ष से भी परे और (एना) इस (पृथिव्या परः) इस पृथिवी से भी परे (महिना) अपनी महिमा से (एतावती) इतने बड़े परिमाण वाली मैं (सं बभूव) हो जाती हूं।

भावार्थ–

इस मन्त्र द्वारा ब्रह्म का निर्माण करने वाली वाग् का सामर्थ्य विदित होता है कि वह पंच महाभूतात्मक लोकों की रचना करने में समर्थ है और वायु के समान सर्वत्र व्याप्त है। उसकी महिमा द्युलोक और पृथिवी लोक से भी अधिक विस्तृत और गौरवशाली है।

****

२३. रात्री भारद्वाजी

ऋग्वेद-दशम मण्डल सूक्त १२७, मन्त्र १-८

ऋषि - रात्री भारद्वाजी
देवता- रात्रिस्तव
छन्दः - गायत्री

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका-

रात्रीत्यष्टर्चं पंचदशं सूक्तं सोभरिपुत्रस्य कुशिकस्यार्षं। यद्वा। भारद्वाजस्य सुता रात्र्याख्यास्य सूक्तस्यर्षिका। गायत्रं रात्रिदेवताकं। तथा चानुक्रांतं। रात्री कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजी रात्रिस्तवं गायत्रमिति। दुःस्वप्नदर्शन उपोषितेन कर्त्रा पायसेन होतव्यं। तत्रैतत्सूक्तं करणत्वेन विनियुक्तं। तथा चारण्यके श्रूयते। स यद्येतेषां किंचित्पश्येदुपोष्य पायसं स्थालीपाकं श्रपयित्वा रात्रीसूक्तेन प्रत्यृचं हुत्वा। ऐ०आ० ३.२.४.। इति।

संहिता पाठ-

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य१'क्षभिः।
विश्वा अधि श्रियोऽधित॥१॥

पद पाठ-

रात्री। वि। अख्यत्। आऽयती। पुरुऽत्रा। देवी। अक्षऽभिः।
विश्वाः। अधि। श्रियः। अधित ॥१॥

सायण भाष्य-

आयत्यागच्छंती॥ आङ्पूर्वादितेः शतर्यदादित्वाच्छपो लुक्। इणो यणिति

यणादेश:। उगितश्चेति डीप् शतुरनुम इति नद्या उदात्तत्वं। अक्षभिरक्षिस्थानीयै: प्रकाशमानैर्नक्षत्रै:।। छंदस्यापि दृश्यत इत्यक्षिशब्दस्यानङादेश:।। यद्वा। अक्षभिरंजकैस्तेजोभि:। पुरुत्रा बहुषु देशेषु देवी देवनशीला।। देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्य इत्यादिना पुरुशब्दात्सप्तम्यर्थे त्राप्रत्यय:।। रात्रीयं रात्रिदेवता व्यख्यत्। विचष्टे। विशेषेण पश्यति। रात्रेश्चाजसाविति ङीप्। ख्यातेश्छांदसे लुङ्यस्यतिवक्तीत्यादिना च्लेरङादेश:।। अपि चैषा विश्वा: सर्वा: श्रिय: शोभा अध्यधित। अधिधारयति।। दधातेर्लुङि स्थाघ्वोरिच्चेतीत्वं। सिच: कित्त्वं। ह्रस्वादंगादिति सिचो लोप:।।

अन्वय-

आयती अक्षभि: पुरुत्रा देवी रात्री वि अख्यत् विश्वा: श्रिय: अधि अधित।

हिन्दी अनुवाद-

(आयती) आती हुई (अक्षभि:) नक्षत्रों से (पुरुत्रा) अनेक स्थानों से (देवी) दीप्तिशाली (रात्री) यह रात्रि (वि अख्यत्) विशेष रूप से प्रकाशित होती है। (विश्वा:) समस्त (श्रिय:) शोभाओं को (अधि अधित) यह धारण करती है।

भावार्थ-

आती हुई यह रात्रि नक्षत्रों से अनेक स्थानों पर दिव्य रूप से विशेष रूप से प्रकाशित होती है। यह समस्त शोभाओं को और सौन्दर्य को धारण करती है।

संहिता पाठ-

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्यु१द्वत:।
ज्योतिषा बाधते तम: ।।२।।

पद पाठ–

आ। उ॒रु। अ॒प्रा॒ः। अम॑र्त्या। नि॒ऽवत॑ः। दे॒वी। उ॒त्ऽवत॑ः।
ज्योति॑षा। बा॒ध॒ते॒। तम॑ः॥२॥

सायण भाष्य–

अमर्त्या मरणरहिता देवी देवनशीला रात्रिरुरु विस्तीर्णमंतरिक्षमाप्राः। प्रथमतस्तमसापूरयति॥ प्रा पूरणे आदादिकः। लङि व्यत्ययेन मध्यमः॥ तथा निवतो नीचीनाल्लँतागुल्मादीनुद्वत उत्थितान्वृक्षादींश्च स्वकीयेन तेजसावृणोति। तदनंतरं तत्तमोऽधकारं ज्योतिषा ग्रहनक्षत्रादिरूपेण तेजसा बाधते। पीडयति॥

अन्वय–

अमर्त्या देवी उरु आ अप्राः निवतः उद्वतः तम ज्योतिषा बाधते।

हिन्दी अनुवाद–

(अमर्त्या) मरण से रहित (देवी) दिव्य गुण सम्पन्न रात्रि (उरु) अन्तरिक्ष को (आ अप्राः)अन्धकार से व्याप्त किये हुए है। वह (निवतः)नीचे होने वाले लता गुल्म आदि पदार्थों को और (उद्वतः)ऊपर की ओर उठे हुए वृक्ष आदि पदार्थों को घेरे हुए है तथा (तमः) अन्धकार को (ज्योतिषा) चन्द्रमा नक्षत्र आदि की कान्ति से (बाधते) बाधित करती है।

भावार्थ–

मरण रहित रात्रि विस्तृत अन्तरिक्ष को प्राप्त किये हुए है। यह सभी ऊंचे-नीचे स्थानों को अंधकार से ढक लेती है। रात्रि के अन्धकार में आकाश में चन्द्रमा नक्षत्र आदि का प्रकाश अन्धकार को बाधित करता है।

संहिता पाठ–

निरु॒ स्वसा॑रमस्कृतो॒षसं॑ दे॒व्याय॒ती।
अपेदु॑ हासते॒ तम॑ः ॥३॥

पद पाठ–

निः। ऊं इतिं। स्वसांरं। अकृत। उषसं। देवी। आऽयती।
अपं। इत्। ऊं। इतिं। हासते। तमंः॥३॥

सायण भाष्य–

आयत्यागच्छंती देवी देवनशीला रात्रिः स्वसारं भगिनीमुषसं निरकृत। निष्करोति। प्रकाशेन संस्करोति। निवर्तयतीत्यर्थः। तस्यामुषसि जातायां नैशं तमोऽपेद्धासते। अपैव गच्छति। ओहाङ्गतौ। लेट्यडागमः। सिब्बहुलमिति सिप्॥

अन्वय–

आयती देवी स्वसारम् उषसं निः अकृत। तम. अप इत् हासते।

हिन्दी अनुवाद–

(आयती) आती हुई (देवी) दिव्य गुण सम्पन्न रात्रि (स्वसारं) अपनी बहन (उषसम्) उषा को (निः अकृत) प्रकाश से संस्कृत करती है। उस समय (तमः) अन्धकार (अप इत्) दूर जाता हुआ (हासते) क्षीण होता जाता है।

भावार्थ–

कल्पना की गई कि रात्रि बड़ी बहन है और उषा उसकी छोटी बहन है। रात्रि का समय व्यतीत होने पर उषा जो कि प्रकाश से सम्पन्न है, उदित होती है और अन्धकार क्षीण होता जाता है।

संहिता पाठ–

सा नों अद्य यस्यां वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि।
वृक्षे न वसतिं वयंः॥४॥

पद पाठ–

सा। नः। अद्य। यस्यांः। वयं। नि। ते। यामंन्। अविक्ष्महि।
वृक्षे। न। वसतिं। वयंः॥४॥

सायण भाष्य –

अद्यास्मिन्काले नोऽस्माकं सा रात्रिदेवता प्रसीदतु यस्या रात्रेर्यामन्यामनि प्राप्तौ सत्यां वयं न्यविक्ष्महि निविशामहे सुखेन गृह आस्महे॥ विशेर्लङि नेर्विशः। पा० १.३.१७। इत्यात्मनेपदं। छांदसः शपो लुक्॥ तत्र दृष्टान्तः वयः पक्षिणो वृक्षे नीडाश्रये वसतिं रात्रौ निवासं कुर्वंति तथा निवसाम इत्यर्थः॥

अन्वय–

यस्या ते यामन् वयं नि अविक्ष्महि न वयः वृक्षे वसति न सा अद्य।

हिन्दी अनुवाद –

(यस्याः) जिस (ते)तुझ रात्रि के (यामन्) प्रहरों में (वयं) हम (नि अविक्ष्मति) उसी प्रकार घर में सुख से निवास करते हैं, (न) जिस प्रकार कि (वयः) पक्षी (वृक्षे) वृक्ष पर (वसतिं) निवास करते हैं, (सा) वह रात्रि (अद्य) आज सुखकारी है।

भावार्थ–

जिस रात्रि के आने पर हम जिस प्रकार अपने घरों में सुख से निवास करते हैं, जिस प्रकार पक्षी वृक्षों पर सुख से निवास करते हैं, वह रात्रि आज हमारे लिये सुखकारी है।

संहिता पाठ –

नि ग्रामासोअविक्षत नि पद्वंतो नि पक्षिणः।

नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥५॥

पद पाठ–

नि। ग्रामा॑सः। अ॒वि॒क्ष॒त॒। नि। प॒त्ऽव॑न्तः। नि । प॒क्षिण॑ः।
नि। श्ये॒नास॑ः। चि॒त्। अ॒र्थिन॑ः॥५॥

सायण भाष्य –

ग्रामासो ग्रामाः। अत्र गामशब्दो जनसमूहे वर्तते यथा ग्राम आगत इति। सर्वे जना न्यविक्षत। तस्यां रात्रावागतायां निविशंते। शेरते॥ निपूर्वाद्विशतेश्छांदसे लुङि पूर्ववदात्मनेपदं। शल। इगुपधादनिटः वसः। पा०३.१.४५। वसस्याचि। पा० ७.३.७२। इत्यकारलोपः॥ तथा पद्वंतः पादयुक्ता गवाश्वादयश्च निविशंते। तथा पक्षिणः पक्षोपेताश्च निविशंते। अर्थिनः । अर्तेरर्थे गमनं। शीघ्रगमनयुक्ताः। श्येनासश्चिच्छ्येना अपि तस्यां रात्र्यां निविशंते। एषा रात्रिः सर्वाणि भूतजातान्यहनि संचारेण श्रांतानि स्वयमागत्य सुखयतीत्यर्थः॥

अन्वय –

ग्रामासः निअविक्षत पद्वन्तः नि पक्षिणः अर्थिनः श्येनास चित् नि।

हिन्दी अनुवाद –

जिस रात्रि के आ जाने पर (ग्रामासः) ग्राम के सारे लोग (निअविक्षत) सो जाते हैं, (पद्वन्तः) पैरों वाले पशु (नि) सो जाते हैं, (पक्षिणः) पंखों वाले पक्षी (नि) सो जाते हैं, (अर्थिनः) शीघ्र गति वाले (श्येनासः) श्येन पक्षी (चित्) भी (नि) सो जाते हैं।

भावार्थ–

रात्रि के आ जाने पर संसार के सारे प्राणी सो जाते हैं, ग्रामों में रहने

वाले सारे मनुष्य, पशु और पक्षी सो जाते हैं, यहां तक कि श्येन पक्षी भी सो जाते हैं। यह रात्रि सबको सुख देने वाली हो।

संहिता पाठ–

यावया वृक्यं१ वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये।
अथा नः सुतरा भव ॥६॥

पद पाठ–

यवय । वृक्यं । वृकं । यवय । स्तेनं। ऊर्म्ये।
अथ। नः। सुऽतरा। भव ॥६॥

सायण भाष्य–

हे ऊर्म्ये। रात्रिनामैतत्। रात्रे वृक्यं वृकस्य स्त्रियं वृकं चास्मान्हिंसंतं यवय। अस्मत्तः पृथक्कुरु। अस्मान्वाधितुं यथा न प्राप्नोति तथा। स्तेनं तस्करं च यवय। अस्मत्तो वियोजय। अथानंतरं नोऽस्माकं सुतरा सुखेन तरणीया क्षेमकरी भव॥

अन्वय –

ऊर्म्ये वृक्यं वृकं यवय स्तेनं यवय। अथ नः सुतरा भव।

हिन्दी अनुवाद–

(ऊम्ये) सुख देने वाली हे रात्रि! (वृक्यं)मादा भेड़िया और (वृकं) नर भेड़िया को (यवय) हमसे दूर रखो। (स्तेनं) चोर, तस्कर आदि को (यवय) हमसे दूर रखो। (अथ) और (नः) हमारे लिये (सुतरा) अच्छी प्रकार व्यतीत होने वाली, समय को तरा देने वाली (भव) हो जाओ।

भावार्थ–

रात्रि के सुखद होने की प्रार्थना की गई है। रात में हिंसक जंगली पशु भेड़िये आदि न आयें और चोर, डाकू आदि न आयें। रात्रि हमारे लिये सुखद हो।

संहिता पाठ–

उप मा पेपिंशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित।

उष ऋणेव यातय ।।७।।

पद पाठ–

उप । मा । पेपिंशत् । तमः । कृष्णं । विऽअक्तं । अस्थित । उषः। ऋणाऽईव । यातय ।।७।।

सायण भाष्य –

पेपिशद्भृशं पिंशत् सर्ववस्तुष्वाश्लिष्टं तमोऽधकारं कृष्णं कृष्णवर्णं व्यक्तं विशेषेण स्वभासा सर्वस्यांजक स्पष्टरूपं वा ईदृशं नैशं तमो मामुपास्थित। उपागच्छत।। संगतकरण आत्मनेपदं ।। हे उष उषोदेवते त्वमृणेवर्णानीव तत्तमो यातय। अपगमय। स्तोतृणामृणानि यथा धनप्रदानेनापाकरोषि तथा तमोऽप्यसारयेत्यर्थः।।

अन्वय –

पेपिशत् कृष्णं व्यक्तं तमः मा उप अस्थित। उषः ऋणा इव यातय।

हिन्दी अनुवाद –

(पेपिशत्) अपने में सबको लिपटा लेने वाला (कृष्णं) काले रंग का (व्यक्तं) स्पष्ट रात्रि का (तमः) अन्धकार (मा उप अस्थित) मेरे पास उपस्थित हो गया है। यह (उषः) उषा (ऋणा इव) एक ऋणी के समान अन्धकार को (यातय) भगा देती है।

भावार्थ–

सबको लपेट लेने वाला काला अन्धकार स्पष्ट रूप से सामने आ गया है। परन्तु यह उषा उस अन्धकार को एक ऋणी के समान भगा देती है।

संहिता पाठ–

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः।

रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥८॥

पद पाठ–

उप । ते । गाःऽइव । आ । अकरं । वृणीश्व । दुहितः। दिवः।

रात्रि । स्तोमं। न । जिग्युषे ॥८॥

सायण भाष्य –

हे रात्रि रात्रिदेवते ते त्वां गा इव पयसो दोग्ध्रीर्धेनुरिवोपेत्याकरं। स्तुतिभिरभिमुखीकरोमि।। करोतेश्छांदसे लुङि कृमृदृरुहिभ्य इति च्लेरङादेशः।। दिवो दुहितर्द्योतमानस्य सूर्यस्य पुत्रि यद्वा द्विवसस्य तनये।। परमपि च्छंदसि। पा० २.१.२.६। इति परस्य षष्ठ्यंतस्य पूर्वामंत्रितांगवद्भा-वात्पदद्वयसमुदायस्याष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वं।। त्वत्प्रसादाज्जिग्युषे शत्रूञ्जिग्युषो मम स्तोमं न स्तोत्रमिव हविरपि वृणीष्व। त्वं भजस्व।। जयतेर्लिटः क्वसुः।

सन्लिटोर्जेरित्यभ्यासादुत्तरस्य जकारस्य कुत्वं। षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्येति चतुर्थी। वसोः संप्रसारणमिति संप्रसारणं॥

अन्वय –

रात्रि गाः इव त्ते उप आकरम्। दिवः दुहितः जिग्युषे स्तोमं न वृणीष्व।

हिन्दी अनुवाद –

(रात्रि) इस रात्रि को (गाः इव) गौओं के समान (त्ते) तेरे (उप आकरम्) समक्ष उपस्थित करता हूं। (दिवः) प्रकाशमान सूर्य की (दुहितः) पुत्री यह रात्रि (जिग्युषे) भ्रमणशील मुझ यजमान के (स्तोमं) स्तोत्र के समान हवि को (वृणीष्व) तुम प्राप्त करो।

भावार्थ–

दूध देने वाली गौओं के समान यजमान रात्रि के समक्ष अपने को प्रस्तुत करता है। वह रात्रि प्रकाशमान सूर्य की पुत्री है और यजमान के स्तोत्र के समान हवि को स्वीकार करती है।

****

२४. श्रद्धा कामायनी

ऋग्वेद दशम मण्डल सूक्त १५१, मन्त्र १-५

ऋषि-श्रद्धा कामायनी

देवता- श्रद्धा

छन्द: -अनुष्टप्

सूक्त की सायणकृत पूर्वभूमिका-

श्रद्धयेति पंचर्चं त्रयोविशं सूक्तमानुष्टुभं श्रद्धादेवत्यं। कामगोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका। तथा चानुक्रम्यते। श्रद्धया श्रद्धा कामायनी श्राद्धमानुष्टुभं त्विति।। लैंगिको विनियोग:।।

संहिता पाठ-

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।।१।।

पद पाठ-

श्रद्धया। अग्निः। सं। इध्यते। श्रद्धया। हूयते। हविः।
श्रद्धां। भगस्य। मूर्धनि। वचसा। आ। वेदयामसि।।१।।

सायण भाष्य -

पुरुषगतोऽभिलाषविशेष: श्रद्धा। तया श्रद्धयाग्निर्गार्हपत्यादि: समिध्यते। संदीप्यते। यदा हि पुरुषे श्रद्धाग्निगोचर आदरातिशयो जायते तदैव पुरुषोऽग्नीन्प्रज्वालयति नान्यदा। श्रद्धयैव हवि: पुरोडाशादिहविश्च

हूयते। आहवनीये प्रक्षिप्यते। यद्वा। अस्य सूक्तस्य द्रष्ट्र्या श्रद्धाख्ययाग्निः समिध्यते। श्रद्धामुक्तलक्षणायाः श्रद्धाया अभिमानिदेवतां भगस्य भजनीयस्य धनस्य मूर्धनि प्रधानभूते स्थानेऽवस्थितां वचसा वचनेन स्तोत्रेणा वेदयामसि। अभितः प्रख्यापयामः।। इदंतो मसिः।।

अन्वय –

श्रद्धया अग्निः समिध्यते। श्रद्धया हविः हूयते। श्रद्धां भगस्य मूर्धनि। वचसा आ वेदयामसि।

हिन्दी अनुवाद –

(श्रद्धया) श्रद्धा के द्वारा (अग्निः) गार्हपत्य, प्राजापत्य और दक्षिणा ये तीन अग्नियां (समिध्यते) प्रज्ज्वलित की जाती हैं। (श्रद्धया) श्रद्धा के द्वारा (हविः) पुरोडाश आदि हवियां (हूयते) आहुत की जाती हैं। (श्रद्धां) श्रद्धा को (भगस्य) धन के, ऐश्वर्य के (मूर्धनि) प्रधान स्थान पर (वचसा) वाणी से, इस स्तोत्र से (आ वेदयामसि) चारों ओर प्रसिद्ध करते हैं।

भावार्थ–

यज्ञ करते हुए श्रद्धा से अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए। श्रद्धा से आहुति देनी चाहिए। श्रद्धा को ही सबसे प्रधान स्थान दिया जाता है। श्रद्धा से स्तुति करने पर ही सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

संहिता पाठ–

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि।।२।।

पद पाठ–

प्रि॒यं । श्र॒द्धे॒ ! दद॑तः । प्रि॒यं । श्र॒द्धे॒ । दिदा॑सतः।

प्रि॒यं । भो॒जेषु॑ । यज्व॑ऽसु । इ॒दं । मे॒ । उ॒दि॒तं । कृ॒धि॒ ॥२॥

सायण भाष्य–

हे श्रद्धे ददतश्चरुपुरोडाशादीनि प्रयच्छतो यजमानस्य प्रियमभीष्टफलं कुरु। दिदासतो दातुमिच्छतश्च हे श्रद्धे प्रियं कुरु। मे मम संबंधिषु भोजेषु भोक्तृषु भोगार्थिषु यज्वसु कृतयज्ञेषु जनेषु चेदमुदितमुक्तं प्रियं कृधि। कुरु॥

अन्वय –

श्रद्धे ददतः प्रियम्, श्रद्धे दिदासतः प्रियम्, मे भोजेषु यज्वसु इदम् उदितम् प्रियं कृधि।

हिन्दी अनुवाद –

(श्रद्धे) हे श्रद्धे! (ददत:) देने वाले यजमान का (प्रियम्) प्रिय करो। (श्रद्धे) हे श्रद्धे (दिदासत:) तुम दक्षिणा देने की इच्छा करने वाले यजमान का (प्रियं) प्रिय सम्पन्न करो। (ये) जो (भोजेषु) दक्षिणा देने वाले (यज्वसु) यज्ञ करने वाले यजमानों के प्रति (इदं) इस (उदितं) मेरे द्वारा कहे गये (प्रियं) वचन का (कृधि) तुम पालन करो।

भावार्थ–

जो यजमान श्रद्धा द्वारा दान देता है, जो यह यजमान श्रद्धा द्वारा दान की इच्छा करता है, श्रद्धा सब प्रकार से उसका प्रिय आचरण करती है।

संहिता पाठ–

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।

एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥३॥

पद पाठ–

यथा । देवाः । असुरेषु । श्रद्धां । उग्रेषु । चक्रिरे।

एवं । भोजेषु। यज्वऽसु । अस्माकं । उदितं । कृधि ॥३॥

सायण भाष्य –

देवा इंद्रादयोऽसुरेषूद्गूर्णबलेषु यथा श्रद्धां चक्रिरे अवश्यमिमे हंतव्या इत्यादरातिशयं कृतवंतः एवं श्रद्धावत्सु भोजेषु भोक्तृषु भोगार्थिषु यज्वसु यष्टृष्वस्मत्संबंधिषु तेषूदितं तैरुक्तं प्रार्थितं फलजातं कृधि। कुरु॥

अन्वय –

देवा यथा उग्रेषु असुरेषु श्रद्धां चक्रिरे, एवं अस्माकं भोजेषु यज्वसु उदितं कृधि।

हिन्दी अनुवाद –

(देवाः) इन्द्र आदि देवताओं ने (यथा) जिस प्रकार से (उग्रेषु) उग्र बल से सम्पन्न (असुरेषु) असुरों के प्रति (श्रदां) श्रद्धा को (चक्रिरे) किया था, (एवं) उसी प्रकार से (भोजेषु) दक्षिणा देने वाले (यज्वसु) यज्ञ करने वाले यजमानों के प्रति (अस्माकं) हमारे द्वारा (उदितं) कहे गये। इस प्रिय वचन का भी, हे श्रद्धे! (कृधि) तुम पालन करो।

भावार्थ–

देवता भी उग्र बलवान् पुरुषों पर विश्वास करते हैं। यज्ञ करने और दक्षिणा देने वाले यजमानों को श्रद्धा के द्वारा सदा प्रिय किया जाता है।

संहिता पाठ–

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्य१याकूत्या श्रद्धया विंदते वसु।।४।।

पद पाठ–

श्रद्धां । देवाः । यजमानाः । वायुऽगोपाः । उप । आसते ।
श्रद्धां । हृदय्यया । आऽकूत्या । श्रद्धया । विंदते । वसु ।।४।।

सायण भाष्य –

देवा यजमाना मनुष्याश्च वायुगोपा वायुर्गोपा रक्षिता येषां ते तादृशाः संतः श्रद्धां देवीमुपासते। प्रार्थयंते। हृदव्यया। हृदये भवा हृदव्या। तथाविधयाकूत्या संकल्परूपया क्रियया श्रद्धामेव परिचरंति सर्वे जनाः। कुत इत्यत आह। यतः कारणाच्छ्रद्धया हेतुभूतया वसु धनं विंदते लभते श्रद्धावाञ्जनः। तत इत्यर्थः।।

अन्वय –

देवाः यजमानाः वायुगोपाः श्रद्धाम् उपासते। हृदय्यया आकूत्या श्रद्धाम्। श्रद्धया वसु विन्दते।

हिन्दी अनुवाद –

(देवाः) इन्द्र आदि देवता और (यजमानाः) यज्ञ करने वाले मनुष्य

(वायुगोपा:) वायु द्वारा रक्षित किये जाकर (श्रद्धां) श्रद्धा की (उपासते) उपासना करते हैं। (हृदय्यया) हृदय में उत्पन्न होने वाले (आकूत्या) संकल्प रूप क्रिया के द्वारा वे (श्रद्धां) श्रद्धा की उपासना करते हैं। (श्रद्धया) श्रद्धा के द्वारा ही देवता और मनुष्य (वसु) धन को (विन्दते) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ–

श्रद्धावान् देवताओं और मनुष्यों की वायु सदा रक्षा करती है। सब श्रद्धा की उपासना करते हैं और श्रद्धा से ही धन प्राप्त होता है।

संहिता पाठ–

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥५॥

पद पाठ–

श्रद्धां । प्रातः । हवामहे । श्रद्धां। मध्यंदिनं । परि।
श्रद्धां । सूर्यस्य । निऽम्रुचि। श्रद्धे। श्रत्। धापय । इह। नः ॥५॥

सायण भाष्य –

श्रद्धां देवीं प्रातः पूर्वाह्वे हवामहे। तथा मध्यंदिनं परि॥ अत्रपरेः कर्मप्रवचनीयत्वं। मध्यंदिनं परिलक्ष्य। मध्यंदिन इत्यर्थः। मध्याह्वेऽपि तां श्रद्धामाह्वयामहे। सूर्यस्य सर्वस्य प्रेरकस्यादित्यस्य निम्रुच्यस्तमयवेलायां सायंसमयेऽपि तामेव श्रद्धामाह्वयामहे। ईदृग्रुपे हे श्रद्धे नोऽस्मानिह लोके

कर्मणि वा श्रद्धापय। श्रद्धावतः कुरु॥

अन्वय –

प्रातः श्रद्धां हवामहे, श्रद्धां मध्यंदिनं परि। सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धाम्। श्रद्धे इह नः श्रत् धापय।

हिन्दी अनुवाद –

हम (प्रातः) प्रातः वेला में (श्रद्धां) श्रद्धा का (हवामहे) आवाहन करते हैं। उसके लिये आहूति देते हैं। (श्रद्धां) श्रद्धा का (मध्यं दिनं) मध्याह्न में आवाहन करते हैं। (सूर्यस्य) सूर्य के (निम्रुचि) अस्त हो जाने पर श्रद्धा का आवाहन करते हैं। (श्रद्धे) हे श्रद्धे (इह) यहां (नः)हमारे अन्दर (श्रत्) सत्य का (धापम) आधान करो।

भावार्थ–

प्रातः मध्याह्न और सायं तीनों समयों में श्रद्धा का आवाहन करना चाहिए यह श्रद्धा ही सत्य का आधान करती है।

****

२५. इन्द्रमातरः

ऋग्वेद दशम मण्डल १५३ सूक्त, मन्त्र १-५

ऋषि - इन्द्रमातरः

देवता- इन्द्र

छन्दः -गायत्री

सूक्त की सायणकृत पूर्वभूमिका-

इंखयंतीरिति पंचर्चं गायत्रमैंद्र द्वितीयं सूक्तं। देवानां स्वसृभूता इंद्रमातरो नामर्षिकाः। तथा चानुक्रांत। ईंखयंतीर्देवजामय इंद्रमातरो गायत्रमिति। द्वितीये पर्यायि प्रशास्तुः शस्त्र इदं सूक्तं। सूचितं च। ईंखयंतीरहं दां पाता सुतं। आ० ६.४.। इति॥ महाव्रतेऽपि प्रातःसवनिके ब्रह्मशस्त्र एतत्सूक्तं॥

संहिता पाठ-

ईंखयंतीरपस्युव इंद्रं जातमुपासते।
भेजानासः सुवीर्यम् ॥१॥

पद पाठ-

ईंखयंतीः । अपस्युवः । इंद्रं । जातं । उप । आसते।
भेजानासः । सुऽवीर्यम् ॥१॥

सायण भाष्य -

ईंखयंतीर्गच्छंत्यः स्तुत्यादिभिरिंद्रं प्राप्नुवत्योऽपस्युवोऽपः कर्मात्मन इच्छंत्य इंद्रमातरोऽस्य सूक्तस्य द्रष्ट्र्यो जातं प्रादुर्भूतमिंद्रमुपासते। परिचरंति।

सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं धनं च भेजानासः। तस्मादिंद्रात्संभक्तवत्यो भवंति॥

अन्वय –

उपस्युवः सुवीर्यम् भेजानासः जातम् इन्द्रम् ईङ्खयन्तीः उपासते।

हिन्दी अनुवाद –

(उपस्युवः) कर्म करने के स्वभाव वाली (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य और पराक्रम को (भेजानासः) सेवन करती हुई कर्म करने और पराक्रम के स्वभावशाली प्रजा में (जातं) प्रसिद्ध (इन्द्रं) राजा इन्द्र को (ईङ्खयन्तीः) प्राप्त करती हुई (उपासते) इसकी उपासना करती हैं।

भावार्थ–

इस राजा-प्रजा के परस्पर व्यवहार का संकेत वेद देते हैं। प्रजा को कर्मशील और पराक्रमी होना चाहिए। राजा को पराभवकारी सामर्थ्यशाली और प्रजा के लिये सुप्राप्य होना चाहिये। ऐसे राजा की सब प्रजाजन उपासना करते हैं।

संहिता पाठ–

त्वमिंद्र बलादधि सहसो जात ओजसः।

त्वं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

पद पाठ–

त्वं । इंद्र । बलात् । अधि। सहसः । जातः । ओजसः।

त्वं । वृषन् । वृषा । इत् । असि ॥२॥

सायण भाष्य –

हे इन्द्र त्वं सहसः परेषामभिभावुकाद्बलादधि जातोऽसि। अधिः

पंचम्यर्थानुवादकः। वृत्रादिवधहेतुभूताद्बलाद्धेतोस्त्वं प्रख्यातो भवसीत्यर्थः। अपि चौजसः। ओजो नाम बलहेतु हृदयगतं धैर्यं। तस्मादपि त्वं जातोऽसि। हे वृषन्वर्षितः त्वं वृषदसि। कामनां वर्षितेव भवसि॥

अन्वय –

इन्द्र त्वम् बलात् सहसः ओजसः अधि जातः असि। वृषन् त्वं वृषा इत् अधि असि।

हिन्दी अनुवाद –

हे (इन्द्र) हे राजन्! (त्वं) तुम (बलात्) बल के कारण (सहसाः) दूसरों का अभिभव करने वाले सामर्थ्य के कारण और (ओजसः) तेजस्विता के कारण (अधि) सबसे उत्कृष्ट (जातः) असि हो गये हो। (वृषन्) हे बलवाम् इन्द्र (त्वं) तुम (वृषा इत्) बलवान् और सुखदाता (असि) हो।

भावार्थ–

राजा अपने बल, पराभयकारी सामर्थ्य और तेजस्विता के कारण सबसे उत्कृष्ट हो जाता है। वह बल सम्पन्न और प्रजाजनों के लिये सुख की वर्षा करने वाला होता है।

संहिता पाठ–

त्वमिंद्रासि वृत्रहा व्य१'तरिंक्षमतिरः।

उद्यानमस्तभ्ना ओजसा॥३॥

पद पाठ–

त्वं। इंद्र। असि। वृत्रऽहा। वि। अंतरिंक्षं। अतिरः।

उत्। द्यां। अस्तभ्नाः। ओजसा ॥३॥

संहिता पाठ–

हे इंद्र त्वं वृचहासि। शचूणां हंता भवसि। अंतरिक्षं मध्यमस्थानं च व्यतिर:। आवारकापनोदनेन प्रावर्धय:। द्यां द्युलोकं चौजसा बलेनोदस्तभ्ना:। ऊर्ध्यमस्तंभी:। यथाधो न पतति तथोपर्यवस्थापितवानित्यर्थ:।।

अन्वय–

इन्द्र त्वं वृत्रहा असि। अन्तरिक्षम् अतिर:। ओजसा द्याम उत् अस्तभ्ना:।

हिन्दी अनुवाद–

(इन्द्र) हे इन्द्र देवता या राजन्! (त्वं) तुम (वृत्रहा) वृच का, दुष्टों का वध करने वाले हो। (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक के (अतिर:) आवरण को तिरोहित कर देते हो, दूसरों के आवरण को हटा देते हो। (ओजसा) अपने तेज से (द्यां) द्युलोक को (उत् अस्तभ्ना:) ऊपर उठाये हुये हो। प्रकाश पुञ्ज को सर्वत्र प्रसरित कर देते हो।

भावार्थ–

राजा प्रजा का रक्षक दुष्ट व्यक्तियों का विनाश करता है और राज्य में सर्वत्र प्रकाश का प्रसारण करता है।

संहिता पाठ–

त्वमिंद्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वो:।
वज्रं शिशान: ओजसा।।४।।

पद पाठ–

त्वं । इंद्र । सऽजोषसं । अर्कं । बिभर्षि । बाह्वो:।
वज्रं । शिशान: । ओजसा ।।४।।

सायण भाष्य-

हे इंद्र त्वं सजीषसं सह प्रीयमाणमंर्क स्तुत्यं वज्रमात्मीयमायुधमोजसा बलेन शिशानों निश्यंस्तीक्ष्णीकुर्वन्बाह्वोर्हस्तयोर्बिभर्षि। धारयसि शचूणां वधार्थ।।

अन्वय-

इन्द्र त्वम् सजोषसम् अर्कं वज्रम् ओजसा शिशानः बाह्वोः विभर्षि।

हिन्दी अनुवाद-

(इन्द्र) हे इन्द्र, हे राजन्! (त्वम्) तुम (सजोसम्) साथ रहने वाले (अर्कं) सूर्य को, सेनापति को (वज्र) वज्र को तीक्ष्ण दृढ आयुध को (ओजसा) तेज से पराक्रम से (शिशानः) तीक्ष्ण करते हुये (बाह्वोः) भुजाओं (विभर्षि) में धारण करते हो।

भावार्थ-

राजा अपने साथ सेनापति को लेकर आयुधों से अपने पराक्रम को तीक्ष्ण करता हुआ भुजाओं में धारण करता है।

संहिता पाठ-

त्वमिंद्राभि॒भूर॑सि॒ विश्वा॑ जा॒तान्योज॑सा।
स विश्वा॒ भुव॒ आभ॑वः ।।५।।

पद पाठ-

त्वं। इं॒द्र॒। अ॒भि॒ऽभूः। अ॒सि॒। विश्वा॑। जा॒तानि॑। ओज॑सा।
सः। विश्वा॑ः। भुव॑ः। आ। अ॒भ॒व॒ः ।।५।।

सायण भाष्य–

हे इंद्र त्वं विश्वा सर्वाणि जातानि जनिमंति भूतान्योजसा बलेनाभिभूरभिभविता भवसि। तथा स तादृशस्त्वं विश्वा भुवः सर्वा भूमीः प्राप्तव्यानि सवाण्यपि स्थानान्याभवः। अभितः प्राप्नोः।। भू प्राप्तौ।।

अन्वय–

इन्द्र त्वं विश्वा जातानि ओजसा अभिभूः असि। सः विश्वाः भुव आभवः।

हिन्दी अनुवाद–

(इन्द्र) हे इन्द्र, राजन् (त्वं) तुम (विश्वा) सम्पूर्ण (जातानि) राष्ट्र में उत्पन्न पदार्थो को (अभिभूः असि) अभिभूत किये हुये हो, अपने अधिकार में किये हो। (सः) वह इन्द्र राजा (विश्वाः) सम्पूर्ण (भुवः) भूमियों को (आभवः) अपने अधिकार में किये रहता है।

भावार्थ –

राज्य की सभी वस्तुओं पर राजा का अधिकार रहता है। वह राज्य की सम्पूर्ण भूमि का शासक होता है।

****

२६. शची पौलोमी

ऋग्वेद दशम मण्डल १५९ सूक्त, मन्त्र १-६

ऋषि-शची पौलोमी
देवता-शची पौलोमी
छन्दः -त्रिष्टुप्

सूक्त की सायणकृत पूर्वभूमिका-

उदसाविति षड्चमष्टमं सूक्तमानुष्टुभं। पुलोमतनया शची स्वात्मानमनेनास्तौत्। अतः सैवर्षिः सैव देवता। तथा चानुक्रांतं। उदसौ षट् पौलोमी शच्यात्मानं तुष्टावानुष्टुभमिति।। विनियोगो लिंगादवगंतव्यः।। आप स्तंवस्तु सपत्नीनाशने सूर्योपस्थान इदं सूक्तं विनियुक्तवान्। सूत्र्यते हि। एतेवैन कामेनोत्तरेणानुवाकेन सदादित्यमुपतिष्ठते। आप.गृ. ९.९.। इति। अत्रैतेनेति प्रकृतं मपत्नीबाधनं परामृश्यते।।

संहिता पाठ-

उद॒सौ सूर्यो॑अगा॒दुद॒यं मा॑म॒को भग॑ः।
अ॒हं तद्वि॑द्व॒ला पति॑म॒भ्य॑साक्षि विषास॒हिः।।

पद पाठ-

उत्। अ॒सौ। सूर्यः॑। अ॒गा॒त्।
उत्। अयं। मा॒म॒कः। भर्गः।
अ॒हं। तत्। वि॒द्व॒ला। पतिं॑।
अ॒भि। अ॒सा॒क्षि॒। वि॒ऽस॒स॒हिः ।।१।।

सायण भाष्य–

असौ द्युलोकस्य सूर्य उदगात्। उदयं प्राप्तवान्। मामको मदीयो भगो भजनीयोऽयमिंद्रश्च सूर्यात्मनोदगात्। यद्वा। मामको भगो मदीयमिदं सौभाग्यमुदगात्। तदुद्यतं सूर्यस्य तेजो विद्वला ज्ञातवती यद्वा पतिं भर्तारं विद्वला लब्धवत्यहं विषासहिर्विशेषेणाभिभविची सत्यभ्यसाक्षि। अभ्यभूवं। सपत्नीरिति शेषः।। सहतेरभिभवार्थस्य लुड्येतद्रूपं।। यद्वा। विषासहिः सपत्नीनामभिभवित्री सती पतिमभ्यसाक्षि। भर्तारमप्यभ्यभूवं। यथा मय्येव वशीकृतश्चिरं वर्तते तथाकर्षमित्यर्थः।।

अन्वय–

असौ सूर्यः उत् अगात् अयं मामकः भगः। अहं तत् पतिं विद्वला विसासहि असि असाक्षि।

हिन्दी अनुवाद–

(असौ) यह (सूर्य) (उद्अगात्)उदित हो गया है। (अयं) यह (मामकः) मेरे से सम्बन्धित (भगः)ऐश्वर्य या सौभाग्य है। (अहं) मैनें (तत् पतिं) अपने उस पति को, पालक सूर्य को (विद्वला) पा लिया है जो (विसासहि) शत्रुओं का विनाश करने वाली होकर (अभि असाक्षि) उनका पराभव कर सकता हूँ।

भावार्थ–

राष्ट्र के राजा की स्वामिनी रानी, अपने पति को शत्रुओं को पराभव करने वाला देखकर कह रही है कि यह सूर्य उदित हो गया है और मैं शत्रुओं का पराभव करने वाली हो गई है।

संहिता पाठ –

अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥२॥

पद पाठ–

अ॒हं । के॒तुः । अ॒हं । मू॒र्धा।
अ॒हं । उ॒ग्रा । वि॒ऽवाच॑नी ।
मम॑ । इत् । अनु॑ । क्रतु॑म्। पति॑ः।
से॒हा॒नायाः। उ॒प॒ऽआच॑रेत् ॥२॥

सायण भाष्य–

अहं केतुः केतयित्री सर्वस्य ज्ञात्री भवामि। अहं मूर्धा सर्वेष्ववयवेषु शिर इव प्रधानभूता च भवामि। अहमुग्रोद्गूर्णा सती विवाचनी विशेषेण पतिं वाचयित्री भवामि। क्रोधाविष्टमपि पतिं मयि सर्वदा प्रियवचनयुक्तं करोमीत्यर्थः। सेहानायाः सपत्नीनामभिभवित्र्या ममेन्ममैव क्रतुं कर्म बुद्धिं वानुलक्ष्य पतिः पालयिता भर्तोपाचरेत्। उपागच्छेत् । नान्यासां पत्नीनां॥

अन्वय –

अहं केतुः, अहं मूर्धा, अहम् उग्रा विवाचनी सेहानायाः मम क्रतुं इत् अनु पतिः उपाचरेत्।

हिन्दी अनुवाद –

राजा की रानी कहती है– (अहं) मैं ही (केतुः) यज्ञ रूप सबको ज्ञान देने वाली हूं। (अहं) मैं ही (मूर्धा) सबकी मस्तक स्थानीय विचार शक्ति हूं। (अहम्) मैं ही (उग्रा) प्रचण्ड अभिभव करने वाली होकर (विवाचनी) विशेष रूप से विवेचन करने वाली हूं। (सेहानायाः) सपत्नी का अभिभव करने वाली होकर (मम) मुझ पत्नी के (क्रतुं) कर्म या बुद्धि के (इत्) ही (अनु) अनुकूल होकर (पतिः) मेरे राजा पति (उपाचरेत्) अपना व्यवहार करते हैं।

भावार्थ–

राजा की प्रधान रानी ही सबको ज्ञान देने वाली, विचार देने वाली,

प्रचण्ड कर्म करने वाली तथा सब विषयों का विवेचन करने वाली होती है। वह सपत्नी का दमन करती है। उसका पति राजा उसके कर्म और बुद्धि के अनुरूप व्यवहार करता है।

संहिता पाठ–

मम॑ पु॒त्राः शत्रु॒हणोऽथो॑ मे दु॒हि॒ता वि॒राट्।
उ॒ताहम॑स्मि सं॒ज॒या पत्यौ॑ मे॒ श्लोक॑ उ॒त्त॒मः ॥३॥

पद पाठ –

मम॑ । पु॒त्राः । श॒त्रु॒ऽहनः॑।
अथो॒ इति॑। मे॒ । दु॒हि॒ता । वि॒ऽराट्।
उ॒त । अ॒हम् । अ॒स्मि॒ । सं॒ऽज॒या।
पत्यौ॑ । मे॒ । श्लोक॑ः । उ॒त्ऽत॒मः ॥३॥

सायण भाष्य –

ममैव पुत्रास्तनयाः शत्रुहणः शत्रूणां सपत्नानां हंतारो भवंति। अथो अपि च मे मदीया दुहिता पुत्री विराड्विशेषेण राजमाना भवति। उतापि चाहं संजया सम्यग्जेत्री सपत्नीनामस्मि। ता अभिभवामि। अतो हेतोः पत्यौ भर्तरींद्रे मे मम श्लोक उपश्लोकनीयं यश उत्तम उद्गततममतिशयेनोत्कृष्टं विद्यते॥

अन्वय –

मम पुत्राः शत्रुहणः अथ मे दुहिता विराट् , उत अहम् सञ्जया अस्मि। पत्यौ मे उत्तमः श्लोकः।

हिन्दी अनुवाद –

रानी कहती है– (मम) मेरे (पुत्राः) पुत्र (शत्रुहणः) शत्रुओं का विनाश

करने वाले हैं। (अथो) और (मे) मेरी (दुहिता) पुत्री (विराट्) विशेष रूप से कान्ति सम्पन्न है। (अहम्) मैं (सञ्जया) स्वयं विजय करने वाली (अस्मि) हूं। (पत्यौ) मेरे पति में, (मे) मेरी (उत्तमः) सर्वश्रेष्ठ (श्लोकः) कीर्ति है।

भावार्थ–

इस मन्त्र द्वारा राष्ट्र की रानी एवं अपने परिवार के ऐश्वर्य–पराक्रम का गान करती है। अपने पुत्रों, पुत्री स्वयं अपने और अपने पति के गौरव और पराक्रम का उसने वर्णन किया है।

संहिता पाठ–

येनेंद्रो हविषा कृत्व्यभवद्युम्न्युत्तमः।
इदं तदक्रि देवा असपत्ना किलाभुवं ॥४॥

पद पाठ–

येन । इंद्रः । हविषा । कृत्वी।
अभवत् । द्युम्नी । उत्ऽतमः।
इदं । तत् । अक्रि। देवाः।
असपत्ना किल । अभुवं ॥४॥

सायण भाष्य –

येन हविषेंद्रो मम भर्ता कृत्वी कर्मणां कर्ताभवत् भवति। तथा द्युम्नी। द्युम्नं द्योतमानं यशोऽन्नं वा। तद्वानुत्तम उत्कृष्टतमश्च येन हविषा भवति। हे देवाः स्तोतार ऋत्विजः तदिदं हविरक्रि। अकारि। जयार्थिभिर्भवद्भिः क्रियतां। यद्वा। हे यष्टव्या देवाः तदिदं हविरक्यहमपि॥ करोतेर्लुडीटि मंत्रे घसेति च्लेर्लुक्। अतएव कारणादहमसपत्ना किल शत्रुरहिता खल्वभुवं। अभूवं ॥

छांदसो ह्रस्वः।।

अन्वय –

येन हविषा इन्द्रः कृत्वी अभवत् उत्तमः द्युम्नी । देवाः इदं तत् अक्रि असपत्ना किल अभुवम्।

हिन्दी अनुवाद –

(येन) जिस (हविषा) छवि के द्वारा (इन्द्रः) इन्द्र राजा (कृत्वी) कर्म करने में कुशल (अभवत्) हो जाता है और (उत्तमः) श्रेष्ठ (द्युम्नी) यशस्वी तथा कान्तिमान् हो जाता है, (देवाः) देवताओं ने विद्वानों ने (इदं) यह (तत्) वह कार्य (अक्रि) किया जो (असपत्ना) शत्रुओं से रहित (किल) निश्चल से मैं (अभुवम्) हो गई हूं।

भावार्थ–

देवताओं और विद्वज्जनों ने मेरे राजा को इतना कर्मशील, तेजस्वी और कान्तिमान बनाकर इतना कार्य किया कि मैं शत्रुरहित हो गई हूं।

संहिता पाठ–

असपत्ना सपत्नघ्नी जयंत्यभिभूवरी।

आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव ।।५।।

पद पाठ–

असपत्ना । सपप्नऽघ्नी।

जयंती। अभिऽभूवरी।

आ । अवृक्षं । अन्यासां । वर्चः।

राधः। अस्थेयसांऽइव ।।५।।

सायण भाष्य –

असपत्नाशत्रुका भवामि। कुत इत्यत आह। सपत्नघ्नी शत्रूणां हंत्री अत एव जयंती जयं प्राप्नुवत्यभिभूवर्यभिभवित्री।। भवतेरन्येभ्योऽपि दृश्यत इति क्वनिप्। वनो र चेति ङीब्रेफौ।। ईदृश्यहमन्यासां सपत्नीनां वर्चस्तेजो राधो धनं चावृक्षं। आ समंतादवृक्षं। अवृश्चिषं । अच्छिदं।। व्रश्चेर्लुङ्यदित्त्वा-दिडभावे संयोगादिलोपे छांदसं संप्रसारणं।। तत्र दृष्टान्तः। अस्थेयसामिवा-स्थिरतराणां शत्रूणां यथा धनमप्रयत्नेन वृश्च्यते तथेत्यर्थः।। स्थिरशब्दादीयसुनि प्रियस्थिरेत्यादिना स्थादेशः।।

अन्वय –

असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्ती अभिभूवरी अस्थेयसाम् इव अन्यासाम् वर्चः राधः अवृक्षम्।

हिन्दी अनुवाद –

(असपत्ना) शत्रुओं से रहित और (सपत्नघ्नी) शत्रुओं का और सौतों का विनाश करने वाली (जयन्ती) शत्रुओं को जीतने वाली (अभिभूवरी) भूमि पर स्थायित्व रखने वाली (अस्थेयसाम् इव) अस्थिर शत्रुओं के समान (अन्यासां) अन्य सपत्नियों के (वर्चः) तेज को और(राधः) धनों को मैंने (अवृक्षम्) काट दिया है।

भावार्थ–

राजा की प्रधान महिषी अपने आलोचकों से कहती हैं कि मैं शत्रुओं से रहित और शत्रुओं का विनाश करने वाली हूं। जिस प्रकार अस्थिर शत्रुओं का अभिभव करती हूं, उसी प्रकार मैंने सपत्नियों के तेज और धन का विनाश कर दिया है।

संहिता पाठ-

सम॑जैषमि॒मा अ॒हं स॒पत्नी॑रभि॒भूव॑री।
यथा॒ह॒म॒स्य वी॒रस्य॑ वि॒राजा॑नि॒ जन॑स्य च ॥६॥

पद पाठ-

सं । अ॒जै॒षं॒ । इ॒माः । अ॒हं ।
स॒ऽपत्नीः॑ । अ॒भि॒ऽभूव॑री।
यथा॑ । अ॒हं । अ॒स्य । वी॒रस्य॑।
वि॒ऽराजा॑नि । जन॑स्य । च॒ ॥६॥

सायण भाष्य -

अभिभूवर्यभिभवित्र्यहमिमाः सपत्नीः समजैषं। सम्यगभ्यभूवं। यथा येन प्रकारेणाहमस्य वीरस्येंद्रस्य तदीयपरिजनस्य च विराजानि विशेषेण राजमाना भवानि। तथा समजैषमित्यर्थः।

अन्वय -

अभिभूवरी अहम् इमाः सपत्नीः समजैषम्। यथा अहम् अस्य वीरस्य जनस्य विराजानि।

हिन्दी अनुवाद-

(अभिभूवरीं) सबका अभिभव करने वाली (अहं) मैं इस राष्ट्र की राज्ञी (इमाः) इन (सपत्नीः) सौतों को, शत्रुओं को (समजैषम्) अच्छी प्रकार जीत लूं। (यथा) जिससे कि (अस्य) इस (वीरस्य जनस्य) वीर राजा की (विराजानि) विशेष प्रभावशालिनी राजमाता बन जाऊं।

भावार्थ-

राष्ट्र की राज्ञी इस मन्त्र द्वारा आकांक्षा प्रकट करती है कि वह अपने सभी शत्रुओं को, सपत्नियों को जीते ले और अपने वीर पुत्रों पर शासन करने वाली विशेष राजमाता के पद को सुशोभित करे।

२७. सार्पराज्ञी

ऋग्वेद दशम मण्डल सूक्त १८९ मन्त्र १-३

ऋषि- सार्पराज्ञी

देवता- सार्पराज्ञी अथवा सूर्य

छन्दः - गायत्री

सूक्त की सायणकृत पूर्व भूमिका-

आयं गौरिति तृचमष्टात्रिंशं सूक्तं गायत्रं। सार्पराज्ञी नामर्षिका। सैव देवता सूर्यो वेति। तथा चानुक्रांतं। आयं गौः सार्पराज्ञ्यात्मदैवतं सौर्यं वेति। अविवाक्येऽहनि मानसग्रह एतत्सूक्तं शंसनीयं। सूत्रितं च। आयं गौः। पृश्निरक्रमीदित्युपांशु तिस्रः पराचीः शस्त्वा। आ० ८.१३.। इति।

संहिता पाठ-

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः॥१॥

पद पाठ-

आ । अयं । गौः । पृश्निः । अक्रमीत्।
असदत्। मातरं । पुरः।
पितरं। च। प्रऽयन्। स्व१रिति स्वः॥१॥

सायण भाष्य-

गौर्गमनशीलः पृश्निः प्राष्टवर्णः प्राप्ततेजा अयं सूर्य आक्रमीत्।

आक्रांतवान्। उदयाचलं प्राप्तवानित्यर्थः। आक्रम्य च पुरः पुरस्तात्पूर्वस्यां दिशि मातरं सर्वभूतजातस्य निर्मात्रीं पृथिवीमसदत्। आसीदति। प्राप्नोति॥ सदेश्छांदसो लुङ् । लृदित्त्वाच्लेरङादेशः॥ ततः पितरं पालकं द्युलोकं चशब्दादंतरिक्षं च प्रयन् प्रकर्षेण शीघ्रं गच्छन् स्वः स्वरणः शोभनगमनो भवति। यद्वा। पितरं स्वर्गलोकं प्रयन्वर्तते॥

अन्वय–

अयं गौरः प्रश्निः आ अक्रमीत्। मातरं पुरः असदत्। च पितरं स्वः प्रयन्।

हिन्दी अनुवाद –

(अयं) यह (गौ) पृथिवी(पृश्निः)आकाश में (अक्रमीत) भ्रमण करती है। (मातरं)अन्तरिक्ष में जल को (पुरः) आगे लिये हुये (असदत्) आगे गति करती है (च) और (पितरं) पिता रूप (स्वः) सूर्य की (प्रयन्) परिक्रमा करती है।

भावार्थ–

इस मन्त्र द्वारा नक्षत्रों की गति का वर्णन किया गया है। यह पृथिवी अन्तरिक्ष में गति करती है। पृथिवी स्थिर नहीं है। इसके चारों ओर जल विद्यमान है। यह सूर्य की परिक्रमा करती हुई आगे और आगे गति करती रहती है।

संहिता पाठ–

अ॒न्तश्चरति रोच॒नास्य प्रा॒णादपान॒ती।
व्यख्यन्महि॒षो दिवं ॥२॥

पद पाठ–

अ॒न्तरिति। च॒रति॒। रो॒च॒ना।

अस्य। प्राणात्। अपऽअनती।
वि। अख्यत्। महिषः दिवं॥२॥

सायण भाष्य-

अस्य सूर्यस्य रोचना रोचमाना दीप्तिरंतः शरीरमध्ये मुख्यप्राणात्मना चरति। वर्तते। किं कुर्वती। प्राणादपानती। मुख्यप्राणस्य प्राणाद्याः पंच वृत्तयः। तत्र प्राणनं नाडीभिरूर्ध्वं वायोर्निर्गमनं। तथाविधात्प्राणात्प्राणनादनंतरमपानती। अपाननं नाडीभिरवाङ्मुखं वायोर्नयनं। तत्कुर्वती। अपपूर्वादनितेर्लटः शतृ। अदादित्वाच्छपो लुक्। उगितश्चेति ङीप्। शतुरनुम इति नद्या उदात्तत्वं। यद्वा। अंतर्द्यावापृथिव्योर्मध्येऽस्य सूर्यस्य रोचना रोचमाना दीप्तिश्चरति। गच्छति। रुच दीप्तौ। अनुदात्तेतश्च हलादेरिति युच्॥ किं कुर्वती। प्राणात्प्राणनादुदया-नंतरमपानती। सायंसमयेऽस्तं गच्छंती। ईदृश्या दीप्त्या युक्तः। अत एव महिषो महान्सूर्यो दिवमंतरिक्षमुदयास्तमययोर्मध्ये व्यख्यत्। विचष्टे। प्रकाशयति॥ महेरविमह्योष्टिषच्। उ० १.४६। इत्यौणादिकष्टिषच्प्रत्ययः। चक्षिङः ख्याञ्। छांदसे लुङ्यस्यतिवक्तीत्यादिना च्लेरङादेशः॥

अन्वय-

अस्य रोचना प्राणात् अपानती अन्तः चरति। महिषः दिवम् वि अख्यत्।

हिन्दी अनुवाद -

(अस्य) इस सूर्य की (रोचना) प्रकाशवान् दीप्ति (प्राणात् अपानती) प्राण वायु से अपान वायु तक शारीरिक क्रियाओं को करती हुई (अन्तः) प्राणियों के शरीरों के अंदर (चरति) गति करती है। (महिषः) महान् सूर्य (दिवं) द्यु लोक को (वि अख्यत्) विशेष रूप से प्रकाशित करता है।

भावार्थ–

सूर्य की गति प्राणियों के शरीर के अन्दर प्राण–अपान वायुओं की गति को संचरित करती है। सूर्य की गति के कारण प्राणी के शरीर में प्राण–अपान वायुओं को संचय होता है और शरीर गति करते हैं। सूर्य महान है और द्युलोक को भी वही प्रकाशित करता है।

संहिता पाठ–

त्रिंशद्धाम वि राजति । वाक्तंगाय धीयते।
प्रति वस्तोरह द्युभिः॥३॥

पद पाठ–

त्रिंशत्। धाम । वि । राजति।
वाक् । पतंगाय । धीयते।
प्रति । वस्तोः। अह। द्युऽभिः॥३॥

सायण भाष्य–

त्रिंशद्धाम धामानि स्थानानि। वचनव्यत्ययः। वस्तोर्वासरस्याहोरात्र-स्यावयवभूतानि। अहशब्दोऽवधारणे। द्युभिः सूर्यस्य दीप्तिभिरेव वि राजति। विराजंते। विशेषेण दीप्यंते। व्यत्ययेनैकवचनं। मुहूर्तान्यत्र धामान्युच्यंते। पंचदश रात्रेः पंचदशाहः। पतंगाय। पतति गच्छतीति पतंगः सूर्यः। तस्मै श्रुतिरूपा वाक्प्रति धीयते। प्रतिमुखं स्तोतृभ्यः क्रियते। यद्वा। वस्तोरहनि त्रिंशद्धामानि। घटिकाभिप्रायमेतत्। त्रिशद्धटिकाः॥ अत्यंतसंयोगे द्वितीया। एतावंतं कालं द्युभिर्दीप्तिभिरसौ सूर्यो वि राजति। विशेषेण दीप्यते। तस्मिंश्च समये वाक् त्रयीरूपा तस्मै सूर्यरूपाय पतंगाय प्रति धीयते। प्रतिमुखं

धार्यते। स्तूयते सूर्यः सर्वत इत्यर्थः। श्रूयते हि। ऋग्भिः पूर्वाह्ले दिवि देव ईयते यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह इत्यादि। तै० ब्रा० ३.१२.९.१.॥ यदा त्विदं सूक्तं सर्पराज्ञ्या आत्मस्तुतिः तद्वा सूर्यात्मना स्तूयत इत्यवगंतव्यं।

अन्वय-

वस्तोः त्रिंशत् धाम अह द्युमिः विराजति, वाक् पतंगाय प्रति धीयते।

हिन्दी अनुवाद -

(वस्तोः) दिन और रात्रि के भाग (तिंशत्) तीस (धाम) स्थान मुहूर्त होते हैं, वे (अह) निश्चय से (द्युभिः) सूर्य की कान्तियों से (विराजति) विशेष रूप से प्रकाशित, शोभित होते हैं। (वाक्) वे वाणी अर्थात् स्तोत्र (पतंगाय) सूर्य के लिये (प्रतिधीयते) स्तोताओं द्वारा धारण की जाती है।

भावार्थ-

दिन और रात के तीस प्रहर या धाम होते हैं जो कि सूर्य के द्वारा प्रकाशित होते हैं। स्तोता यजमान अपनी स्तुतियों से सूर्य की स्तुति करते हैं।

****

मन्त्रानुक्रमणिका

६६	उक्ष्णो हि मे पञ्चदश	३०१	१०.८६.१४
६७	उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो	३२६	१०.१०७.२
६८	उत्तराहमुत्तर उत्तरेद्	३१९	१०.१४५.३
६९	उत्तानपर्णे सुभगे	३१८	१०.१४५.२
७०	उदसौ सूर्यो अगात्	४१०	१०.१५९.१
७१	उदीर्ष्वात् पतिवती	१६२	१०.१२.२१
७२	उदीर्ष्वातो विश्वावसो	१६३	१०.१२.२२
७३	उद्व ऊर्मिः शम्या हंतु	४४	३.३३.१२
७४	उप तेऽघांसहमानाम्	३२२	१०.१४५.६
७५	उपते गा इवाकरं	३९५	१०.१२७.८
७६	उप मा पेपिशत्तमः	३९४	१०.१२७.७
७७	उपोप मे परामृश	१५	२.१२६.७
७८	उवे अंब सुलाभिके	२९१	२.८६.७
७९	उशंति या ते अमृतास एतत्	११२	१०.१०.३
८०	ऋकसामाभ्याममिहितौ	१५०	२०.८५.११
८१	एत वां स्तोममश्विना व कर्म	२१६	१०.३९.१४
८२	एतद्ववो जरितर्मापिमृष्ठा	३३	३.३३.८
८३	एते शमीभिः सुशमी अभूवन्	१०६	१०.२८.१२
८४	एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति	९६	१०.२८.६
८५	एवा वयं पयसा पिन्चमामा	२५	३.३३.४
८६	एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रम्	९८	१०.२८.७
८७	एवा च त्वं सरम आ जगन्थ	३५६	१०.१०८.९
८८	एह गमन्नृषयः सोमशिता	३५४	१०.१०८.८

८९	ओचित्सरवायं सरव्या	१०८	१०.१०.१
९०	ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो	३८८	१०.१२७.२
९१	ओषु स्वसारः कारवे शृणोत	३५	३.३३.९
९२	कथा त एतदहमा चिकेतम्	९५	१०.२८.५
९३	कदा सूनुः पितरं जात इच्छात्	२७१	१०.९५.१२
९४	कन्या वारपायती	५२	८.९१.१
९५	किमयं त्वां वृषाकपिः	२८६	१०.८६.३
९६	किमिच्छन्ती सरमे प्रेदमानद्	३४३	१०.१०८.१
९७	किमेता वाचा कृणवा	२५६	१०.९५.२
९८	किं भ्राता सद्यनाथं भवाति	१२४	१०.१०.११
९९	किं सुवाहो स्वंगुरे	२९२	१०.८६.८
१००	कीदृङिन्द्रः सरमे कादृशीका	३४६	१०.१०८.३
१०१	कुविच्छकत् कुवित्करत्	५७	८.९१.४
१०२	कुह स्विद् दोषा कुह वस्तोरश्विना	२२१	१०.४०.२
१०३	को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः	११६	१०.१०.६
१०४	कुह स्वि कुह वस्तो	२२१	१०.४०.२
१०५	खे रथस्य खेऽनसः	६१	८.९१.७
१०६	गर्भे नुनौ जनिता दम्पती	११५	१०.१०.५
१०७	गृभ्णामि ते सौभगत्वाय् हस्तम्	१८१	१०.८५.३६
१०८	चित्तिरा उपवर्हणम्	१४५	१०.८५.७
१०९	चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धियः	१९८	१०.३९.२
११०	जनिष्ठ योषा पतयत्कनीनको	२३१	१०.४०.९
१११	जीवं रुदन्ति वि मयंते	२३३	१०.४०.१०

१८३	भूर्जज्ञ उत्तानपदो	२४६	१०.७२.४
१८४	भोजमश्वा सृष्ठुवाहो वदन्ति	३४०	१०.१०७.११
१८५	भोजा जिग्यु: सुरभिं योनिमग्रे	३३६	१०.१०७.९
१८६	भोजायाश्वं सं सृजन्त्याशु	३३८	१०.१०७.१०
१८७	मनो अस्या अन आसीद्	१४८	१०.८५.१०
१८८	मनीषिभि: पवते पूर्व्य: कवि:	८५	९.८६.२०
१८९	मम पुत्रा: शत्रुहणो	४१३	१०.१५९.३
१९०	मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति	३७८	१०.१२५.४
१९१	मा विदन् परिपन्थिनो	१७६	१०.८५.३२
१९२	यत् त्वा देवा प्रपिवंति	१४२	१०.८५.५
१९३	यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे	४००	१०.१५१.३
१९४	यदयातं शुभस्पती	१५४	१०.८५.१५
१९५	यदश्विना पृच्छमानौ	१५३	१०.८५.१४
१९६	यदंग त्वा भरता: संतेरेयु:	३९	३.३३.११
१९७	यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्	२६७	१०.९५.९
१९८	यदुदंचो वृषाकपे	३१२	१०.८६.२२
१९९	यद्देवा: अद: सलिले	२४८	१०.७२.६
२००	यद् देवा यतयो यथा	२५०	१०.७२.७
२०१	यद्विरूपाचरं मर्त्येषु	२७८	१०.९५.१६
२०२	यमस्य मा यम्य काम आगन्	११८	१०.१०.७
२०३	यमिमं त्वं वृषाकपिम्	२८७	२.८६.४
२०४	यावया वृक्यं वृकम्	३९३	१०.१२७.६
२०५	या सूजूर्णि श्रेणि: सुम्न आपि	२६२	१०.९५.६

२२९	विश्वो ह्यन्यो अरिराजगाम	८८	१०.२८.१
२३०	वि हि स्रोतोरसृक्षत	२८३	१०.८६.१
२३१	वृषभो न तिग्मशृंगो	३०२	१०.८६.१५
२३२	वृषाकपायि रेवति	२९९	१०.८६.१३
२३३	वृषा मतीनां पवते विचक्षण:	८४	९.८६.१९
२३४	शतधारं वायुमर्कं स्वर्विवदम्	३२९	१०.१०७.४
२३५	शश: क्षुरं प्रत्यंचं जगार	१०१	१०.२८.९
२३६	शुची ते चक्रे यात्या	१५१	१०.८५.१२
२३७	श्रद्धयाग्नि: समिध्यते	३९७	१०.१५१.१
२३८	श्रद्धां देवा यजमाना	४०१	१०.१५१.४
२३९	श्रद्धां प्रातर्हवामहे	४०२	१०.१५१.५
२४०	सचा यदासु जहतीष्वकम्	२६५	१०.९५.८
२४१	सत्येनोत्तभिता भूमि:	१३७	१०.८५.१
२४२	सप्तभि: पुत्रैरदिति:	२५२	१०.७२.९
२४३	समजैषमिमा अहम्	४१६	१०.१५९.६
२४४	समस्मिञ्जायमान आसत	२६४	१०.९५.७
२४५	समञ्जन्तु विश्वे देवा	१९४	१०.८५.४७
२४६	समिद्धो अग्न आहुत	७०	५.२८.५
२४७	समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिर	६४	५.२८.१
२४८	समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने	६८	५.२८.४
२४९	समिध्यमानो अमृतस्य राजसि	६६	५.२८.२
२५०	सम्राज्ञी श्वसुरे भव	१९३	१०.८५.४६
२५१	स रोरुवद् वृषभ स्तिग्मशृंगो	९०	१०.२८.२

डा. कृष्णकुमार -एक परिचय

जन्म तिथि - १० फरवरी १९२५

जन्म स्थान- मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश

परिवार-

डा. कृष्ण कुमार के आदरणीय पिता स्व. श्री भूषणशरण मुरादाबाद नगर के सम्भ्रान्त अग्रवाल परिवार के थे। सार्वजनिक सेवा में संलग्न रहकर उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में कृष्ण मंदिर को भी सुशोभित किया। लेखक के बड़े भाई श्री राजकुमार ने भी स्वतन्त्रता संग्राम में जेल यात्रा की। माता श्रीमती रामप्यारी धार्मिक प्रवृत्ति की गृहिणी थीं। श्रीमान् भूषणशरण जी ने अपने जीवनकाल में ही इस भारत की भूमि की स्वतन्त्रता के सुख का अनुभव करके १० अक्टूबर १९४८ में विधि के विधान का पालन करते हुए स्वर्गलोक के लिये प्रयाण कर दिया।

डा. कृष्णकुमार ने बीसलपुर निवासिनी श्रीमती दमयन्ती देवी को अपनी जीवनसंगिनी बनाया। इनके तीन पुत्र-प्रदीप कुमार, आलोक कुमार और मयंक कुमार तथा एक पुत्री मंजुला कुमारी हुये।

शिक्षा -

भारतीय स्वतन्त्रता के अनुरागी श्री भूषणशरण ने अपने पुत्र कृष्णकुमार को सरकारी विद्यालय से उठाकर सन् १९३१ में राष्ट्रीय शिक्षा संस्था गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में प्रविष्ट कराया। १४ वर्षों तक अध्ययन करके यहां से प्रथम श्रेणी में स्नातक उपाधि ग्रहण करके (१९४५) इन्होंने प्रथम श्रेणी में ही एम.ए.(संस्कृत) उत्तीर्ण कर (१९५५)पीएच.डी. (१९६४) और डी.लिट. (१९८१) उपाधियां प्राप्त कीं। आपकी यह शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, आगरा विश्वविद्यालय, संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी और गढ़वाल विश्वविद्यालय में हुई। आपकी अध्ययनप्रियता तथा लेखन शैली के कारण गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने आपको विद्या मार्तण्ड उपाधि से सम्मानित किया।

अध्यापन -

डा. कृष्ण कुमार के अध्यापन के कार्यस्थल रहे। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, सनातन धर्म कालेज मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश के विभिन्न राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय और गढ़वाल विश्वविद्यालय। १९८५ में गढ़वाल विश्वविद्यालय से संस्कृत विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त होकर तथा इस प्रकार कुमायूं और गढ़वाल के उच्च शिक्षा क्षेत्र में बीस वर्षों से भी अधिक कार्य करके विद्यानुरागी आपने संस्कृत के प्राचीन केन्द्र हरिद्वार को ही विशेषतः वानप्रस्थाश्रम को अपनी सरस्वती-साधना का केन्द्र बनाकर स्वयं को लेखन, अध्यापन और शोध में ही समर्पित कर दिया।

शोध एवं अन्य प्रशासनिक कार्य–

लगभग ३० वर्षों तक प्रवक्ता, विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय में संस्कृत के संयोजक, अकादमिक काउन्सिल के सदस्य, समय-समय पर प्रधानाचार्य पद, विभिन्न संस्थाओं का निरीक्षण, परीक्षा आदि कार्यों का कार्यभार आदि के अतिरिक्त निम्न अकादमिक तथा शोध कार्य।

(१) लगभग ६० शोध छात्रों को शोध निर्देशन और १०० से भी अधिक शोध परीक्षण

(२) १०० के लगभग शोध-लेख तथा रेडियो वार्ताएं।

शोध योजनायें–

(१) केदारखण्ड पुराण का सम्पादन, अनुवाद और विवेचनात्मक अध्ययन
(२) संस्कृत रूपकों में जन्तुओं और वनस्पतियों की स्थिति
(३) प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास
(४) प्राचीन भारत की राजनीतिक एवं प्रशासनिक संस्थायें
(५) प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति
(६) गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख और उनका ऐतिहासिक महत्व
(७) प्राचीन भारत का संविधान एवं न्याय व्यवस्था

लेखन –

विभिन्न विषयों पर निम्न ग्रन्थ प्रकाशित हैं।

(क) प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहास–

(१) भारतीय संस्कृति के आधार तत्व
(२) वैदिक साहित्य का इतिहास
(३) संस्कृत साहित्य का इतिहास
(४) गढ़वाल के प्रमुख तीर्थ
(५) गढ़वाल के संस्कृत अभिलेख
(६) गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख और उनका ऐतिहासिक महत्व
(७) प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास
(८) प्राचीन भारत की राजनीतिक एवं प्रशासनिक संस्थायें
(९) प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति
(१०) प्राचीन भारतीय का संविधान एवं न्याय व्यवस्था

(ख) समालोचनात्मक ग्रन्थ–

(११) पं० अम्बिका दत्त व्यास- एक अध्ययन
(१२) संस्कृत-नाटक-सूक्ति-तरंगिणी
(१३) संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश
(१४) संस्कृत नाटकों का वानस्पति पर्यावरण
(१५) संस्कृत नाटकों का जीव-जगत्

(ग) अलंकार शास्त्रीय ग्रन्थ-

(१६) अलंकारशास्त्र का इतिहास
(१७) ध्वन्यालोक व्याख्या
(१८) छन्दोऽलंकार प्रकाश
(१९) काव्यशास्त्रविमर्शः (संस्कृत)
(२०) काव्यशास्त्रविमर्श (हिन्दी)

(घ) वैदिक साहित्य-

(२१) वैदिक साहित्य का इतिहास
(२२) ऋग्सूक्तसंग्रह
(२३) ऋक्सूक्तसुधाकर
(२४) चतुर्वेदसूक्तसुधाकर
(२५) वैदिक सूक्त संग्रह
(२६) ऋषिका (नारी ऋषि) दृष्ट ऋग्वेद मन्त्रों की व्याख्या

(ङ) काव्य-व्याख्या-ग्रन्थ -

(२७) अभिज्ञान शाकुन्तलम्
(२८) प्रियदर्शिका नाटिका
(२९) प्रतिमा नाटक
(३०) रघुवंशम्
(३१) किरातार्जुनीयम्
(३२) शिवराजविजय
(३३) कुन्दमाला
(३४) कुसुमलक्ष्मी
(३५) हर्षचरितम्

(च) काव्यानुवाद -

(३६) मेघदूतानुशीलनम्
(३७) चौरपञ्चाशिका

(छ) ग्रन्थविवरणी-

(३८) संस्कृत पाण्डुलिपियों की ग्रन्थ विवरणी भाग-१
(३९) संस्कृत पाण्डुलिपियों की ग्रन्थ विवरणी भाग-२
(४०) संस्कृत पाण्डुलिपियों की ग्रन्थ विवरणी भाग-३

(ज) पुराण -

(४१) केदारखण्ड पुराण- प्रथम खण्ड
(४२) केदारखण्ड पुराण- द्वितीय खण्ड
(४३) केदारखण्ड पुराण- तृतीय खण्ड
(४४) केदारखण्ड पुराण- चतुर्थ खण्ड

(झ) मौलिक संस्कृत काव्य रचना-

(४५) उदयनचरितम् (संस्कृत उपन्यास)
(४६) तपोवनवासिनी (संस्कृत उपन्यास)
(४७) विधिपौरुषम् (संस्कृत उपन्यास)
(४८) अस्ति-कश्चिद-वागर्थीयम् (संस्कृत नाटक)
(४९) वत्साधिपति:

(ञ) हिन्दी कथा साहित्य-

(५०) प्राचीन कथायें
(५१) तपोवनवासिनी
(५२) भाग्य और पुरुषार्थ
(५३) वत्सराज उद्यन
(५४) प्राचीन लोक कथायें
(५५) वत्साधिपति

(ट) चिकित्सागन्थ -

(५६) विष विज्ञान
(५७) पोषण के लिये खनिज और विटामिन
(५८) अन्त:स्रावी ग्रन्थियां
(५९) विषैली वनस्पतियां

पुरस्कार -

डा. कृष्णकुमार को अपने लेखन तथा संस्कृत-सेवा कार्यों के लिये अनेक पुरस्कार मिले हैं। इनमें निम्न मुख्य हैं-

(क) उ०प्र० संस्कृत संस्थान -

विशिष्ट पुरस्कार। (२) बाणभट्ट पुरस्कार - तपोवनवासिनी। व्यास पुरस्कार- विधि पौरुषम्। संस्कृत उपन्यास प्रतियोगिता- प्रथम पुरस्कार उदयनचरितम्। संस्कृत नाटकों का जीवजगत्।

(ख) उ०प्र० हिन्दी संस्थान-

विष विज्ञान। गढ़वाल के प्राचीन अभिलेख।

(ग) संस्कृत अकादमी दिल्ली-

नाटक लेखन पुरस्कार-अस्ति-कश्चिद्-वाग्विशेष:। तपोवनवासिनी लघु कथायें प्रथम पुरस्कार

(घ) उत्तरांचल संस्कृत अकादमी-

भागीरथी पुरस्कार।

****